तीन खंडों में प्रकाशित
मोहन राकेश की समग्र कहानिया

—१—
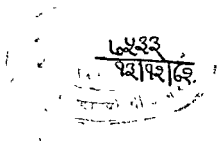
क्वार्टर

क्वार्टर

मोहन राकेश

पन्द्रह कहानियाँ

भूमिका

सन् १९६७ से १९६९ के बीच मेरी लिखी छियालीस कहानियों का प्रकाशन चार जिल्दों में हुआ था। विचार था कि इस तरह प्राय: सभी कहानियां एक जगह उपलब्ध हो सकेंगी। परन्तु चारों जिल्दों के अलग-अलग समय पर प्रकाशित होने के कारण बाद की जिल्दें आने तक पहले की जिल्दों के संस्करण लगभग समाप्त हो गए जिससे उन्हें एक साथ एक सेट के रूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। क्योंकि पहले के प्रकाशित अलग-अलग संग्रह भी अब उपलब्ध नहीं थे, इसलिए बहुत-से पाठकों के पत्र आने लगे कि अमुक-अमुक कहानियों की तलाश उन्हें कहां से करनी चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि पूरी कहानियों को एक-साथ तीन जिल्दों में प्रकाशित करने की वर्तमान योजना से इस जिज्ञासा का समाधान हो जाएगा। जो पाठक विशेष रूप से मेरे पहले कहानी-संग्रह 'इन्सान के खण्डहर' की कहानियां पढ़ना चाहते रहे हैं, उन्हें भी अन्यत्र कहीं उन कहानियों को नहीं खोजना होगा। वे सब कहानियां भी (कुछ सम्पादित रूप में) इन तीन जिल्दों की तिरपन कहानियों में सम्मिलित कर दी गई हैं। इनके अतिरिक्त इधर की लिखी 'क्वार्टर' तक की कहानियां भी। आरम्भिक रूप से कौन कहानी किस संग्रह में प्रकाशित हुई थी, इसका ब्योरा एक तालिका में दे दिया गया है।

'नये बादल' तथा 'एक और जिंदगी' शीर्षक संग्रहों की भूमिकाएं अपने

समय-संदर्भ में इस विकसित होती विधा के साथ मेरे सम्वन्ध को रेखांकित करती थीं। परन्तु आज के संदर्भ में जबकि कहानी-नयी कहानी की चर्चा पत्र-पत्रिकाओं के स्तम्भों से आगे कई एक पुस्तकों का विषय वन चुकी है, उन भूमिकाओं की वह प्रासंगिकता नहीं रही। इसका एक अर्थ यह भी है कि एक लेखक का वास्तविक कथ्य उसकी रचना है, वास्तविक प्रासंगिकता भी उसके इसी कथ्य की होती है। शेप सब यात्रा का गुबार है जो धीरे-धीरे वैठ जाता है। इसके अतिरिक्त इस विधा की सम्भावनाओं तथा इसके साथ अपनी आज की प्रयोगशीलता के सम्वन्ध को लेकर कई-एक प्रश्न मन में हैं जो मेरे आज के लेखन को निर्धारित कर रहे हैं। परन्तु वे सब एक व्यक्ति-लेखक द्वारा अपने ही लिए अपने सामने रखे गए प्रश्न हैं जिन्हें सामान्य प्रश्नों के रूप में प्रस्तावित करने का मुझे कोई आग्रह नहीं है।

अपनी कथा-यात्रा का संक्षिप्त विवरण मैंने 'मेरी प्रिय कहानियां' शीर्षक संकलन की भूमिका में दिया है जिसे वहां से देखा जा सकता है।

मोहन राकेश

आर-८०२
न्यू राजेन्द्र नगर
नई दिल्ली-६०

क्रम

वह दूर से दिखाई देती आकृति मिस पाल ही हो सकती थी।

फिर भी विश्वास करने के लिए मैंने अपना चश्मा ठीक किया। निःसन्देह, वह मिस पाल ही थी। यह तो खैर मुझे पता था कि वह उन दिनों कुल्लू में ही कहीं रहती है, पर इस तरह अचानक उससे भेंट हो जाएगी, यह नहीं सोचा था। और उसे सामने देखकर भी मुझे विश्वास नहीं हुआ कि वह स्थायी रूप से कुल्लू और मनाली के बीच उस छोटे-से गांव में रहती होगी। जब वह दिल्ली से नौकरी छोड़कर आई थी, तो लोगों ने उसके बारे में क्या-क्या नहीं सोचा था!

बस रायसन के डाकखाने के पास पहुंचकर रुक गई। मिस पाल डाकखाने के बाहर खड़ी पोस्टमास्टर से कुछ बात कर रही थी। हाथ में वह एक थैला लिए थी। बस के रुकने पर न जाने किस बात के लिए पोस्टमास्टर को धन्यवाद देती हुई वह बस की तरफ मुड़ी। तभी मैं उतरकर उसके सामने पहुंच गया। एक आदमी के अचानक सामने आ जाने से मिस पाल थोड़ा अचकचा गई, मगर मुझे पहचानते ही उसका चेहरा खुशी और उत्साह से खिल गया।

"रणजीत तुम?" उसने कहा, "तुम यहां कहां से टपक पड़े?"

"मैं इस बस से मनाली से आ रहा हूं।" मैंने कहा।

"अच्छा ! मनाली तुम कब से आए हुए थे ?"

"आठ-दस दिन हुए, आया था। आज वापस जा रहा हूं।"

"आज ही जा रहे हो ?" मिस पाल के चेहरे से आधा उत्साह गायब हो गया, "देखो, कितनी बुरी बात है कि आठ-दस दिन से तुम यहां हो और मुझसे मिलने की तुमने कोशिश भी नहीं की। तुम्हें यह तो पता ही था कि मैं आजकल कुल्लू में हूं।"

"हां, यह तो पता था, पर यह नहीं पता था कि कुल्लू के किस हिस्से में हो। अब भी तुम अचानक ही दिखाई दे गई, नहीं मुझे कहां से पता चलता कि तुम इस जंगल को आबाद कर रही हो ?"

"सचमुच बहुत बुरी बात है," मिस पाल उलाहने के स्वर में बोली, "तुम इतने दिनों से यहां हो और मुझसे तुम्हारी भेंट हुई आज जाने के वक्त···।"

ड्राइवर ज़ोर-ज़ोर से हॉर्न बजाने लगा। मिस पाल ने कुछ चिढ़कर ड्राइवर की तरफ देखा और एकसाथ झिड़कने और क्षमा मांगने के स्वर में कहा, "बस जी एक मिनट। मैं भी इसी बस से कुल्लू चल रही हूं। मुझे कुल्लू की एक सीट दे दीजिए। थैंक यू। थैंक यू वेरी मच !" और फिर मेरी तरफ मुड़कर बोली, "तुम इस बस से कहां तक जा रहे हो ?"

"आज तो इस बस से जोगिन्दरनगर जाऊंगा। वहां एक दिन रहकर कल सुबह आगे की बस पकड़ूंगा।"

ड्राइवर अब और ज़ोर से हॉर्न बजाने लगा। मिस पाल ने एक बार क्रोध और बेबसी के साथ उसकी तरफ देखा और बस के दरवाज़े की तरफ बढ़ती हुई बोली, "अच्छा, कुल्लू तक तो हम लोगों का साथ है ही, और बात कुल्लू पहुंचकर करेंगे। मैं तो कहती हूं कि तुम दो-चार दिन यहीं रुको, फिर चले जाना।"

बस में पहले ही बहुत भीड़ थी। दो-तीन आदमी वहां से और चढ़ गए थे, जिससे अन्दर खड़े होने की जगह भी नहीं रही थी। मिस पाल दरवाज़े में अन्दर जाने लगी तो कण्डक्टर ने हाथ बढ़ाकर उसे रोक दिया। मैंने कण्डक्टर से बहुतेरा कहा कि अन्दर मेरे वाली जगह खाली है, मिस साहब वहां बैठ [illegible] और मैं भीड़ में किसी तरह खड़ा होकर चला जाऊंगा, मगर कण्डक्टर [illegible] ज़िद पर अड़ा तो अड़ा ही रहा कि और सवारी वह नहीं ले सकता।

मैं अभी उससे बात कर ही रहा था कि ड्राइवर ने बस स्टार्ट कर दी। मेरा सामान बस में था, इसलिए मैं दौड़कर चलती बस में सवार हो गया। दरवाज़े से अन्दर जाते हुए मैंने एक बार मुड़कर मिस पाल की तरफ देख लिया। वह उस तरह अचकचाई-सी खड़ी थी जैसे कोई उसके हाथ से उसका सामान छीनकर भाग गया हो और उसे समझ न आ रहा हो कि उसे अब क्या करना चाहिए।

बस हल्के-हल्के मोड़ काटती कुल्लू की तरफ बढ़ने लगी। मुझे अफसोस होने लगा कि मिस पाल को बस में जगह नहीं मिली तो मैंने ही क्यों न अपना सामान वहां उतरवा लिया। मेरा टिकट जोगिन्दरनगर का था, पर यह ज़रूरी नहीं था कि उस टिकट से जोगिन्दरनगर तक जाऊं ही। मगर मिस पाल से भेंट कुछ ऐसे आकस्मिक ढंग से हुई थी और निश्चय करने के लिए समय इतना कम था कि मैं यह बात उस समय सोच भी नहीं सका था। थोड़ा-सा भी समय और मिलता, तो मैं ज़रूर कुछ देर के लिए वहां उतर जाता। उतने समय में तो मैं मिस पाल से कुशल-समाचार भी नहीं पूछ सका था, हालांकि मन में उसके सम्बन्ध में कितना-कुछ जानने की उत्सुकता थी। उसके दिल्ली छोड़ने के बाद लोग उसके बारे में जाने क्या-क्या बातें करते रहे थे। किसीका ख्याल था कि उसने कुल्लू में एक रिटायर्ड अंग्रेज मेजर से शादी कर ली है और मेजर ने अपने सेब के बगीचे उसके नाम कर दिए हैं। किसीकी सूचना थी कि उसे वहां सरकार की तरफ से वजीफा मिल रहा है और वह करती-कराती कुछ नहीं, बस घूमती और हवा खाती है। कुछ ऐसे लोग भी थे जिनका कहना था कि मिस पाल का दिमाग खराब हो गया है और सरकार उसे इलाज के लिए अमृतसर पागलखाने में भेज रही है। मिस पाल एक दिन अचानक अपनी लगी हुई पांच सौ की नौकरी छोड़कर चली आई थी, इससे लोगों में उसके बारे में तरह-तरह की कहानियां प्रचलित थीं।

जिन दिनों मिस पाल ने त्यागपत्र दिया, मैं दिल्ली में नहीं था। लम्बी छुट्टी लेकर बाहर गया था। मगर मिस पाल के नौकरी छोड़ने का कारण मैं काफी हद तक जानता था। वह सूचना विभाग में हम लोगों के साथ काम करती थी और राजेन्द्रनगर में हमारे घर से दस-बारह घर छोड़कर रहती थी। दिल्ली में भी उसका जीवन काफी अकेला था, क्योंकि दफ्तर के ज़्यादातर

लोगों से उसका मनमुटाव था और वाहर के लोगों से वह मिलती बहुत कम
थी। दफ्तर का वातावरण उसे अपने अनुकूल नहीं लगता था। वह वहां एक
एक दिन जैसे गिनकर काटती थी। उसे हर एक से शिकायत थी कि व॰
घटिया किस्म का आदमी है, जिसके साथ उसका उठना-बैठना नहीं हो सकता।

"ये लोग इतने ओछे और वेईमान हैं," वह कहा करती, "इतनी छोटी
और कमीनी वातें करते हैं कि मेरा इनके बीच काम करते हर वक्त दम घुटता
रहता है। जाने क्यों ये लोग इतनी छोटी-छोटी वातों पर एक-दूसरे से लड़ते
हैं और अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए एक-दूसरे को कुचलने की कोशिश करते
रहते हैं!"

मगर उस वातावरण में उसके दुःखी रहने का मुख्य कारण दूसरा था, जिसे
वह मुह से स्वीकार नहीं करती थी। लोग इस वात को जानते थे, इसलिए
जान-बूझकर उसे छेड़ने के लिए कुछ न कुछ कहते रहते थे। बुखारिया तो रोज
ही उसके रंग-रूप पर कोई न कोई टिप्पणी कर देता था।

'क्या वात है मिस पाल, आज रंग वहुत निखर रहा है!"

दूसरी तरफ से जोरावरसिंह वात जोड़ देता, "आजकल मिस पाल पहले
से स्लिम भी तो हो रही हैं।"

मिस पाल इन संकेतों से वुरी तरह परेशान हो उठती और कई वार ऐसे
मौके पर कमरे से उठकर चली जाती। उसकी पोशाक पर भी लोग तरह-तरह
की टिप्पणियां करते रहते थे। वह शायद अपने मुटापे की क्षतिपूर्ति के लिए
ही वाल छोटे कटवाती थी, वग़ैर वांह की कमीजें पहनती थी और वनाव-
सिंगार से चिढ़ होने पर भी रोज़ काफी समय मेक-अप पर खर्च करती थी
मगर दफ्तर में दाखिल होते ही उसे किसी न किसीके मुंह से ऐसी वात सुनने
को मिल जाती थी, "मिस पाल, इस नई कमीज़ का डिज़ाइन वहुत अच्छा है
आज तो गजव ढा रही हो तुम!"

मिस पाल को इस तरह की हर वात दिल में चुभ जाती थी। जितनी दे
वह दफ्तर में रहती, उसका चेहरा गम्भीर वना रहता। जब पांच वजते, तो व
इस तरह अपनी मेज़ से उठती जैसे कई घंटे की सज़ा भोगने के वाद उसे छु
मिली हो। दफ्तर से उठकर वह सीधी अपने घर चली जाती और अगले दि
सुवह दफ्तर के लिए निकलने तक वहीं रहती। शायद दफ्तर के लोगों से

आ जाने की वजह से ही वह और लोगों से भी मेल-जोल नहीं रखना चाहती थी। मेरा घर पास होने की वजह से, या शायद इसलिए कि दफ्तर के लोगों में एक मैं ही था जिसने उसे कभी शिकायत का मौका नहीं दिया था, वह कभी शाम को हमारे यहां चली आती थी। मैं अपनी बुआ के पास रहता था और मिस पाल मेरी बुआ और उनकी लड़कियों से काफी घुल-मिल गई थी। कई बार घर के कामों में वह उनका हाथ भी बटा देती थी। किसी दिन हम उसके यहां चले जाते थे। वह घर में समय बिताने के लिए संगीत और चित्रकला का अभ्यास करती थी। हम लोग पहुंचते तो उसके कमरे से सितार की आवाज आ रही होती या वह रंग और कूचियां लिए किसी तसवीर में उलझी होती। मगर जब वह इन दोनों में से कोई भी काम न कर रही होती तो अपने तख्त पर बिछे मुलायम गद्दे पर दो तकियों के बीच लेटी छत को ताक रही होती। उसके गद्दे पर जो झीना रेशमी कपड़ा बिछा रहता था, उसे देखकर मुझे बहुत चिढ़ होती थी। मन करता था कि उसे खींचकर बाहर फेंक दूं। उसके कमरे में सितार, तबला, रंग, कैनवस, तसवीरें, कपड़े तथा नहाने और चाय बनाने का सामान इस तरह उलझे-बिखरे रहते थे कि बैठने के लिए कुरसियों का उद्धार करना एक समस्या हो जाती थी। कभी मुझे उसके झीने रेशमी कपड़े वाले तख्त पर बैठना पड़ जाता तो मुझे मन में बहुत ही परेशानी होती। मन करता कि जितनी जल्दी हो वहां से उठ जाऊं। मिस पाल अपने कमरे के चारों तरफ खोज-कर जाने कहां से एक चायदानी और तीन-चार टूटी प्यालियां निकाल लेती और हम लोगों को 'फर्स्ट क्लास कॉफीमियन कॉफी' पिलाने की तैयारी करने लगती। कभी वह हम लोगों को अपनी बनाई तसवीरें दिखाती और हम तीनों—मैं और मेरी दोनों बहनें—अपना अज्ञान छिपाने के लिए उनकी प्रशंसा कर देते। मगर कई बार वह हमें बहुत उदास मिलती और ठीक ढंग से बात भी न करती। मेरी बहनें ऐसे मौके पर उससे चिढ़ जातीं और कहतीं कि वे उसके यहां फिर नहीं जाएंगी। मगर मुझे ऐसे अवसर पर मिस पाल से ज्यादा सहानुभूति होती।

आखिरी बार जब मैं मिस पाल के यहां गया, मैंने उसे बहुत ही उदास देखा था। मेरी उन दिनों एपेंडेसाइटिस का आपरेशन हुआ था और मैं कई दिन अस्प-ताल में रहकर आया था। मिस पाल उन दिनों रोज अस्पताल में खबर पूछने

आती रही थी। बूआ अस्पताल में मेरे पास रहती थीं पर खाने-पीने का सामान इकट्ठा करना उनके लिए मुश्किल था। मिस पाल सुबह-सुबह आकर सब्जियां और दूध दे जाती थी। जिस दिन मैं उसके यहां गया, उससे एक ही दिन पहले मुझे अस्पताल से छुट्टी मिली थी और मैं अभी काफी कमजोर था। फिर भी उसने मेरे लिए जो तकलीफ उठाई थी, उसके लिए मैं उसे धन्यवाद देना चाहता था।

मिस पाल ने दफ्तर से छुट्टी ले रखी थी और कमरा बन्द किए अपने गद्दे पर लेटी थी। मुझे पता लगा कि शायद वह सुबह से नहाई भी नहीं है।

"क्या बात है, मिस पाल? तबियत तो ठीक है?" मैंने पूछा।

"तबीयत ठीक है," उसने कहा, "मगर मैं नौकरी छोड़ने की सोच रही हूं।"

"क्यों? कोई खास बात हुई है क्या?"

"नहीं, खास बात क्या होगी? बात बस इतनी ही है कि मैं ऐसे लोगों के बीच काम कर ही नहीं सकती। मैं सोच रही हूं कि दूर के किसी खूबसूरत-से पहाड़ी इलाके में चली जाऊं और वहां रहकर संगीत और चित्रकला का ठीक से अभ्यास करूं। मुझे लगता है, मैं खामखाह यहां अपनी ज़िन्दगी बरबाद कर रही हूं। मेरी समझ में नहीं आता कि इस तरह की ज़िन्दगी जीने का आखिर मतलब ही क्या है? सुबह उठती हूं, दफ्तर चली जाती हूं। वहां सात-आठ घंटे खराब करके घर आती हूं, खाना खाती हूं और सो जाती हूं। यह सारा का सारा सिलसिला मुझे बिलकुल बेमानी लगता है। मैं सोचती हूं कि मेरी ज़रूरतें ही कितनी हैं? मैं कहीं भी जाकर एक छोटा-सा कमरा या शैक लूं तो थोड़ा-सा ज़रूरत का सामान अपने पास रखकर पचास-साठ या सौ रुपये में गुजारा कर सकती हूं। यहां मैं जो पांच सौ लेती हूं, वे पांच के पांच सौ हर महीने खर्च हो जाते हैं। किस तरह खर्च हो जाते हैं, यह खुद मेरी समझ में नहीं आता। पर अगर ज़िन्दगी इसी तरह चलती है, तो क्यों मैं खामखाह दफ्तर जाने-आने का भार ढोती रहूं? बाहर रहने में कम से कम अपनी स्वतन्त्रता तो होगी। मेरे पास कुछ रुपये पहले के हैं, कुछ मुझे प्राविडेंट फण्ड के मिल जाएंगे। इतने में एक छोटी-सी जगह पर मेरा काफी दिन गुजारा हो सकता है। मैं ऐसी जगह रहना चाहती हूं जहां यहां की-सी गन्दगी न हो और लोग इस तरह की छोटी हरकतें न करें। [illegible] में जीने के लिए इन्सान को कम से कम इतना तो महसूस होना चाहिए

कि उसके आसपास का वातावरण उजला और साफ है, और वह एक मेढक की तरह गंदले पानी में नहीं जी रहा।"

"मगर तुम यह कैसे कह सकती हो कि जहां भी तुम जाकर रहोगी, वहां हर चीज वैसी ही होगी जैसी तुम चाहती हो? मैं तो समझता हूं कि इन्सान जहां भी चला जाए, अच्छी और बुरी दोनों तरह की चीजें उसे अपने आसपास मिलेंगी ही। तुम यहां के वातावरण से घबराकर कहीं और जाती हो, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि वहां का वातावरण भी तुम्हें ऐसा ही नहीं लगेगा? इसलिए मेरे ख्याल में नौकरी छोड़ने की बात तुम गलत सोचती हो। तुम यहीं रहो और अपना संगीत और चित्रकला का अभ्यास करती रहो। लोग जैसी बातें करते हैं, करने दो।"

पर मिस पाल की वितृष्णा इससे कम नहीं हुई। "तुम नहीं समझते, रणजीत," वह बोली, "यहां ऐसे लोगों के बीच और रहूंगी, तो मेरा दिमाग बिलकुल खोखला हो जाएगा। तुम नहीं जानते कि मैं जो तुम्हारे लिए सुबह दूध और सब्जियां लेकर जाती रही हूं, उसे लेकर भी ये लोग क्या क्या बातें करते रहे हैं। जो लोग अच्छे-से-अच्छे काम का ऐसा कमीना मतलब लेते हों उनके बीच आदमी रह ही कैसे सकता है? मैंने यह सब बहुत दिन सह लिया है, अब और मुझसे नहीं सहा जाता। मैं सोच रही हूँ जितनी जल्दी हो सके यहां से चली जाऊं। बस यही एक बात तय नहीं कर पा रही कि जाऊं कहां। अकेली होने से किसी अनजान जगह जाकर रहते डर लगता है। तुम जानते ही हो कि मैं ..." और बात बीच में छोड़कर वह उठ खड़ी हुई, "अच्छा, तुम्हारे लिए कुछ चाय-वाय तो बनाऊं। तुम अभी अस्पताल से निकलकर आए हो और मैं हूं कि अपनी ही बात किए जा रही हूं। तुम्हें अभी कुछ दिन घर पर आराम करना चाहिए। अभी से इस तरह चलना-फिरना ठीक नहीं।"

"मैं चाय नहीं पिऊंगा," मैंने कहा, "मैं तुम्हें कुछ समझा तो नहीं सकता, सिर्फ इतना कह सकता हूं कि तुम लोगों की बातों को जरूरत से ज्यादा महत्व दे रही हो। मेरा यह भी ख्याल है कि लोग वास्तव में उतने बुरे नहीं हैं जितना कि तुम उन्हें समझती हो। अगर तुम इस नजर से सोचो कि ..."

"इस बात को रहने दो," मिस पाल ने मेरी बात बीच में काट दी, "मैं इन लोगों से दिल से नफरत करती हूं। तुम इन्हें इन्सान समझते हो? मुझे तो

ऐसे लोगों से अपना पिंकी ज़्यादा अच्छा लगता है। यह उन सबसे कहीं ज़्यादा सभ्य है।"

पिंकी मिस पाल का छोटा-सा कुत्ता था। वह कुछ देर उसे गोदी में लिए उसके बालों पर हाथ फेरती रही। मैंने पहले भी कई बार देखा था कि वह उस कुत्ते को एक बच्चे की तरह प्यार करती है और उसे खाना खिलाकर बच्चों की तरह ही तौलिये से उसका मुंह पोंछती है। मैं कुछ देर बाद वहां से उठकर चला, तो मिस पाल पिंकी को गोदी में लिए मुझे बाहर दरवाज़े तक छोड़ने आई।

"अंकल को टा टा करो," वह पिंकी की एक अगली टांग हाथ से हिलाती हुई बोली, "टा टा, टा टा !"

मैं लम्बी छुट्टी से वापस आया, तो मिस पाल त्यागपत्र देकर जा चुकी थी। वह अपने बारे में लोगों को इतना ही बताकर गई थी कि वह कुल्लू के किसी गांव में बसने जा रही है। बाकी बातें लोगों की कल्पना ने अपने-आप जोड़ दी थीं।

बस व्यास के साथ-साथ मोड़ काट रही थी और मेरा मन हो रहा था कि लौटकर रायसन चला जाऊं। मैं मनाली में दस दिन अकेला रहकर ऊब गया था, और मिस पाल थी कि कई महीनों से वहां रहती थी। मैं जानना चाहता था कि वह अकेली वहां कैसा महसूस करती है और नौकरी छोड़ने के बाद उसने क्या-क्या कुछ कर डाला है। यूं एक अपरिचित स्थान पर किसी पुराने परिचित से मिलने और बात करने का भी अपना आकर्षण होता है। बस जब कुल्लू पहुंचकर रुकी, तो मैंने अपना सामान वहां उतरवा कर हिमाचल राज्य परिवहन के दफ्तर में रखवा दिया और रायसन के लिए वापसी की पहली बस पकड़ ली। बस ने पन्द्रह-बीस मिनट में मुझे रायसन के बाज़ार में उतार दिया। मैंने वहां एक दुकानदार से पूछा कि मिस पाल कहां रहती हैं।

"मिस पाल कौन है, भाई ?" दुकानदार ने अपने पास बैठे युवक से पूछा।

"वह तो नहीं, वह कटे बालों वाली मिस ?"

"हां-हां, वही होगी।"

दुकान में और भी चार-पांच व्यक्ति थे। उन सबकी आंखें मेरी तरफ़

गई। मुझे लगा जैसे वे मन में यह तय करना चाह रहे हों कि कटे वालों वाली मिस के साथ मेरा क्या रिश्ता होगा।

"चलिए, मैं आपको उसके यहां छोड़ आता हूं," कहकर युवक दुकान से उतर आया। सड़क पर मेरे साथ चलते हुए उसने पूछा, "क्यों भाई साहब यह मिस क्या अकेली ही है या ··?"

"हां अकेली ही है।"

कुछ देर हम लोग चुप रहकर चलते रहे। फिर उसने पूछा, "आप उसके क्या लगते हैं?"

मुझे समझ नहीं आया कि मैं उसको क्या उत्तर दूं। पल-भर सोचकर मैंने कहा, "मैं उसका रिश्तेदार नहीं हूं। उसे वैसे ही जानता हूं।"

सड़क से बायीं तरफ थोड़ा ऊपर को जाकर हम लोग एक खुले मैदान में पहुंच गए। मैदान चारों तरफ से पेड़ों से घिरा था और बीच में पांच-छह जाली-दार कॉटेज बने थे, जो बड़े-बड़े मुर्गी-खानों जैसे लगते थे। लड़का मुझे बताकर कि उनमें पहला कॉटेज मिस पाल का है, वहां से लौट गया। मैंने जाकर कॉटेज का दरवाज़ा खटखटाया।

"कौन है?" अन्दर से मिस पाल की आवाज़ सुनाई दी।

"एक मेहमान है मिस, दरवाज़ा खोलो।"

"दरवाज़ा खुला है, आ जाइए।"

मैंने दरवाज़ा धकेलकर खोल लिया और अन्दर चला गया। मिस पाल ने एक चारपाई पर अपना गद्दा लगा रखा था और उसी तरह दो तकियों के बीच लेटी थी जैसे दिल्ली में अपने तख्त पर लेटी रहती थी। सिरहाने के पास एक खुली हुई पुस्तक रखी थी—बर्ट्रेण्ड रसेल की 'कांक्वेस्ट ऑफ् हेपीनेस'। मैं देख-कर तय नहीं कर सका कि वह पुस्तक पढ़ रही थी या लेटी हुई सिर्फ छत की तरफ देख रही थी। मुझे देखते ही वह चौंककर बैठ गई।

"अरे तुम···?"

"हां, मैं। तुमने सोचा भी नहीं होगा कि गया आदमी फिर वापस भी आ सकता है।"

"बहुत अजीब आदमी हो तुम! वापस आना था, तो उसी समय क्यों नहीं उतर गए!"

"बजाय इसके कि शुक्रिया अदा करो जो सात मील जाकर वापस चला आया हूं···।"

"शुक्रिया अदा करती अगर तुम उसी समय उतर जाते और मुझे बस में अपनी सीट ले लेने देते।"

मैंने ठहाका लगाया और बैठने के लिए जगह ढूंढ़ने लगा। वहां भी चारों तरफ वही बिखराव और अव्यवस्था थी जो दिल्ली में उसके घर दिखाई दिया करती थी। हर चीज़ हर दूसरी चीज़ की जगह काम में लाई जा रही थी। एक कुरसी ऊपर से नीचे तक मैले कपड़ों से लदी थी। दूसरी पर कुछ रंग बिखरे थे और एक प्लेट रखी थी जिसमें बहुत-सी कीलें पड़ी थीं।

"बैठो, मैं झट से तुम्हारे लिए चाय बनाती हूं," मिस पाल व्यस्त होकर उठने लगी।

"अभी मुझसे बैठने को तो कहा नहीं, और चाय की फ़िक्र पहले से करने लगीं?" मैंने कहा, "मुझे बैठने की जगह बता दो और चाय-वाय रहने दो। इस वक़्त तुम्हारी 'बोहीमियन चाय' पीने का ज़रा मन नहीं है।"

"तो मत पियो। मुझे कौन झंझट करना अच्छा लगता है! बैठने की जगह मैं अभी बनाए देती हूं।" और कपड़े-अपड़े हटाकर उसने एक कुरसी खाली कर दी। बायीं तरफ एक बड़ी-सी मेज़ थी, पर उसपर भी इतनी चीज़ें पड़ी थीं कि कहीं कुहनी रखने तक की जगह नहीं थी। मैंने बैठकर टांगें फैलाने की कोशिश की तो पता चला कपड़ों के ढेर के नीचे मिस पाल ने अपने बनाए ग्ला[illegible] रख रखे हैं। मिस पाल फिर से अपने बिस्तर में तकियों के सहारे बैठ गई थी। गद्दे पर उसने वही झीना रेशमी कपड़ा बिछा रखा था, जिसे देखकर मुझे चिढ़ हुआ करती थी। मेरा उस समय भी मन हुआ कि उस कपड़े को निकालकर फाड़ दूं या कहीं आग में झोंक दूं। मैंने सिगरेट सुलगाने के लिए मेज़ से दियासलाई की डिबिया उठाई मगर खोलते ही वापस रख दी। डिबिया में दियासलाइयां नहीं थीं, गुलाबी-सा रंग भरा था। मैंने चारों तरफ नज़र दौड़ाई मगर और डिबिया कहीं दिखाई नहीं दी।

"दियासलाई किचन में होगी, मैं अभी लाती हूं," कहती हुई मिस पाल [illegible] उठी और कमरे से चली गई। मैं उतनी देर आसपास देखता रहा। मुझे [illegible] [illegible] दिन की याद हो आई जिस दिन मैं मिस पाल के घर देर तक बैठा [illegible]

बातें करता रहा था। पिंकी से मिस पाल के 'टा टा' कराने की बात याद आने पर मैं हँस दिया।

तभी मिस पाल दियासलाई की डिबिया लिए आ गई। मेरा अकेले में हँसना शायद उसे बहुत अस्वाभाविक लगा। वह सहसा गम्भीर हो गई।

"किसी ने कुछ पिला-विला दिया है क्या ?" उसने मज़ाक और शिकायत के स्वर में कहा।

"मैं अपने इस तरह लौटकर आने की बात पर हँस रहा हूँ।" और जैसे अपने को ही अपने झूठ का विश्वास दिलाने के लिए मैंने अपनी हँसी की नकल की और कहा, "मैं सोच भी नहीं सकता था कि इस अनजान जगह पर अचानक तुमसे भेंट हो जाएगी ? और तुम्हींने कहां सोचा होगा कि जो आदमी बस में आगे चला गया था, वह घण्टा-भर बाद तुम्हारे कमरे में बैठा तुमसे बात कर रहा होगा।"

और विश्वास करके कि मैंने अपने हँसने के कारण की व्याख्या कर दी है, मैंने पूछा, "तुम्हारा पिंकी कहां है ? यहां दिखाई नहीं दे रहा।"

मिस पाल पहले से भी गम्भीर हो गई। मुझे लगा कि उसका चेहरा अब काफी रूखा लगने लगा है। आंखों में लाली भर रही थी, जैसे कई रातों से वह ठीक से सोई न हो।

"पिंकी को यहां आने के बाद एक रात सरदी लग गई थी," उसने अपनी उसास दबाकर कहा, "मैंने उसे कितनी ही गरम चीजें खिलाईं, पर वह दो दिन में चलता बना।"

मैंने विषय बदल दिया। उससे शिकायत करने लगा कि वह जो अपने बारे में बिना किसी को ठीक बताए दिल्ली से चली आई, यह उसने ठीक नहीं किया।

"दफ्तर में अब भी लोग मिस पाल की बात करके हँसते होंगे!" उसने ऐसे पूछा जैसे वह स्वयं उस मिस पाल से भिन्न हो, जिसके बारे में वह सवाल पूछ रही थी। पर उसकी आंखों में यह जानने की बहुत उत्सुकता भर रही थी कि मैं उसके सवाल का क्या जवाब देता हूँ।

"लोगों की बातों को तुम इतना महत्त्व क्यों देती हो ?" मैंने कहा। "लोग ऐसी बातें इसलिए करते हैं कि उनके जीवन में मनोरंजन के दूसरे साधन बहुत

कम होते हैं। जब वह व्यक्ति चला जाता है, तो चार दिन में यह भूल जाते हैं
कि संसार में उसका अस्तित्व था भी या नहीं।"

कहते-कहते मुझे एहसास हो आया कि मैंने यह कहकर गलती की है। मिस
पाल मुझसे यही सुनना चाहती थी कि लोग अब भी उसके बारे में उसी तरह
बात करते हैं और उसी तरह उसका मज़ाक उड़ाते हैं—यह विश्वास उसके लिए
अपने वर्तमान को सार्थक समझने के लिए ज़रूरी था।

"हो सकता है तुम्हारे सामने बात न करते हों," मिस पाल बोली, "क्योंकि
उन्हें पता है कि हम लोग···अम्···अ···मिल रहे हैं। नहीं तो वे कमीने लोग
बात करने से बाज़ आ सकते हैं?"

अच्छा था कि मिस पाल ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया। उसने समझा
कि मैं झूठमूठ उसे दिलासा देने की कोशिश कर रहा हूं।

"हो सकता है बात करते भी हों," मैंने कहा, "पर तुम अब उन लोगों की
बात क्यों सोचती हो? कम-से-कम तुम्हारे लिए तो उन लोगों का अब अस्तित्व
ही नहीं है।"

"मेरे लिए उन लोगों का अस्तित्व कभी था ही नहीं," मिस पाल ने मुंह
बिचका दिया, "मैं उनमें से किसी को अपने पैर के अंगूठे के बराबर भी नहीं
समझती थी।"

आंखों से लग रहा था जैसे अब भी उन लोगों को अपने पास देख रही है
और उसे खेद हो कि वह ठीक से उनसे प्रतिशोध क्यों नहीं ले पा रही।

"तुम्हें पता है कि रमेश का फिर लखनऊ ट्रांसफर हो गया है?" मैंने बात
बदल दी।

"अच्छा, मुझे पता नहीं था!"

पर उसने उस सम्बन्ध में और जानने की उत्सुकता प्रकट नहीं की। मैं फिर
भी उसे रमेश के ट्रांसफर का किस्सा विस्तार से सुनाने लगा। मिस पाल
हां करती रही। पर यह साफ था कि वह अपने अन्दर ही कहीं खो गई है।

मैं रमेश की बात कह चुका, तो कुछ क्षण हम दोनों चुप रहे। फिर मिस
पाल बोली, "देखो, मैं तुमसे सच कहती हूं रणजीत, मुझे वहां उन लोगों
[illegible] पल काटना असम्भव लगता था। मुझे लगता था, मैं नरक
[illegible] हूं। तुम्हें पता ही है, मैं दफ्तर में किसी से बात करना भी पसन्द

करती थी।"

मैं सुबह मनाली से बिना नाश्ता किए चला था, इसलिए मुझे भूख लग आई थी। मैंने बात को रोटी के प्रकरण पर ले आना उचित समझा। मैंने उससे पूछा कि उसने खाने की क्या व्यवस्था कर रखी है—खुद बनाती है, या कोई नौकर रख रखा है।

"तुम्हें भूख तो नहीं लगी ?" मिस पाल अब दफ्तर के माहौल से बाहर निकल आई, "लगी हो, तो उधर मेरे साथ किचन में चलो। जो कुछ बना है, इस वक्त तो तुम्हें उसी में से थोड़ा-बहुत खा लेना होगा। शाम को मैं तुम्हें ठीक से बनाकर खिलाऊंगी। मुझे तुम्हारे आने का पता होता, तो मैं इस वक्त भी कुछ और चीज बना रखती। यहां बाजार में तो कुछ मिलता ही नहीं। किसी दिन अच्छी सब्जी मिल जाए, तो समझो बड़े भाग्य का दिन है। कोई दिन होता है जिस दिन एकाध अण्डा मिल जाता है।···शाम को मैं तुम्हारे लिए मछली बनाऊंगी। यहां की ट्राउट बहुत अच्छी होती है। मगर मिलती बहुत मुश्किल से है।"

मुझे खुशी हुई कि मैंने सफलतापूर्वक बात का विषय बदल दिया है। मिस पाल बिस्तर से उठकर खड़ी हो गई थी। मैंने भी कुर्सी से उठते हुए कहा, "आओ, चलकर तुम्हारा रसोईघर तो देख लूं। इस समय मुझे कसकर भूख लगी है, इसलिए जो कुछ भी बना है वह मुझे ट्राउट से अच्छा लगेगा। शाम को मैं जोगिन्दरनगर पहुंच जाऊंगा।"

मिस पाल दरवाजे से बाहर निकलती हुई सहसा रुक गई।

"तुम्हें शाम को जोगिन्दरनगर ही पहुंचना है तो लौटकर क्यों आए थे ? यह बात तुम गांठ में बांध लो कि आज मैं तुम्हें यहां से नहीं जाने दूंगी। तुम्हें पता है इन तीन महीनों में तुम मेरे यहां पहले ही मेहमान आए हो ? मैं तुम्हें आज कैसे जाने दे सकती हूं ?·· तुम्हारे साथ कुछ सामान-आसान भी है या ऐसे ही चले आए थे ?"

मैंने उसे बताया कि मैं अपना सामान हिमाचल राज्य परिवहन के दफ्तर में छोड़ आया हूं और उनसे कह आया हूं कि दो घंटे में मैं लौट आऊंगा।

"मैं अभी पोस्टमास्टर से वहां टेलीफोन करा दूंगी। कल तक तुम्हारा सामान यहां ले आएंगे। तुम कम से कम एक सप्ताह यहां रहोगे। समझे ? मुझे

पता होता कि तुम मनाली में आए हुए हो तो मैं भी कुछ दिन के लिए वहां चली आती। आजकल तो मैं यहां···खैर···तुम पहले उधर तो आओ, नहीं भूख के मारे ही यहां से भाग जाओगे।"

मैं इस नई स्थिति के लिए तैयार नहीं था। उस सम्बन्ध में बाद में बात करने की सोचकर मैं उसके साथ रसोईघर में चला गया। रसोईघर में कमरे जितनी अराजकता नहीं थी, शायद इसलिए कि वहां सामान ही बहुत कम था। एक कपड़े की आराम कुर्सी थी, जो लगभग खाली ही थी—उस पर सिर्फ नमक का एक डिब्बा रखा हुआ था। शायद मिस पाल उसपर बैठकर खाना बनाती थी। खाना बनाने का और सारा सामान एक टूटी हुई मेज़ पर रखा था। कुर्सी पर रखा हुआ डिब्बा उसने जल्दी से उठाकर मेज़ पर रख दिया और इस तरह मेरे बैठने के लिए जगह कर दी।

फिर मिस पाल ने जल्दी-जल्दी स्टोव जलाया और सब्ज़ी की पतीली उस-पर रख दी। कलछी साफ नहीं थी, वह उसे साफ करने के लिए बाहर चली गई। लौटकर उसे कलछी को पोंछने के लिए कोई कपड़ा नहीं मिला। उसने अपनी कमीज़ से ही उसे पोंछ लिया और सब्ज़ी को हिलाने लगी।

"दो आदमियों का खाना है भी या दोनों को ही भूखे रहना पड़ेगा?" मैंने पूछा।

"खाना बहुत है," मिस पाल झुककर पतीली में देखती हुई बोली।

"क्या-क्या है?"

मिस पाल कलछी से पतीली में टटोलकर देखने लगी।

"बहुत कुछ है। आलू भी हैं, बैंगन भी हैं और शायद···शायद बीच में एकाध टींडा भी है। यह सब्ज़ी मैंने परसों बनाई थी।"

"परसों?" मैं ऐसे चौंक गया जैसे मेरा माथा सहसा किसी चीज़ से टकरा गया हो। मिस पाल कलछी चलाती रही।

"हर रोज तो नहीं बना पाती हूं," वह बोली। रोज बनाने लगूं तो बस खाना बनाने की ही हो रहूं। और अम्···अ···अपने अकेली के लिए रोज बनाने का उत्साह भी तो नहीं होता। कई बार तो मैं सप्ताह-भर का खाना एक-साथ [illegible] लेती हूं और फिर निश्चिन्त होकर खाती रहती हूं। कहो तो तुम्हारे लिए [illegible] ताजा बना दूं।"

"तो चपातियां भी क्या परसों की ही बना रखी हैं ?" मैं अनायास कुर्सी से उठ खड़ा हुआ।

"आओ, इधर आकर देख लो, खा सकोगे या नहीं।" वह कोने में रखे हुए बेंत के सन्दूक के पास चली गई। मैं भी उसके पास पहुंच गया। मिस पाल ने सन्दूक का ढकना उठा दिया। सन्दूक में पच्चीस-तीस खुश्क चपातियां पड़ी थीं। सूखकर उन सबने कई तरह की आकृतियां धारण कर ली थीं। मैं सन्दूक के पास से आकर फिर कुर्सी पर बैठ गया।

"तुम्हारे लिए ताजा चपातियां बना देती हूं," मिस पाल एक अपराधी की तरह देखती हुई बोली।

"नहीं-नहीं, जो कुछ बना रखा है वही खाएंगे," मैंने कहा। मगर अपनी इस भलमनसाहत के लिए मेरा मन अन्दर-ही-अन्दर कुढ़ गया।

मिस पाल सन्दूक का ढक्कन बन्द करके स्टोव के पास लौट गई।

"सब्जी तीन दिन से ज्यादा नहीं चलती," वह बोली, "बाद में मैं जैम, प्याज और नमक से काम चलाती हूं। यहां अलूचे बहुत मिल जाते हैं, इसलिए मैंने बहुत-सा अलूचे का जैम बना रखा है। खाकर देखो, अच्छा जैम है।··· ठहरो, तुम्हें प्लेट देती हूं।"

वह फिर जल्दी से बाहर चली गई और कमरे से कीलोंवाली प्लेट खाली करके ले आई।

'गिलास में अम् ··अ", वह आकर बोली, "सरसों का तेल रखा है। पानी तुम प्याली में ही ले लोगे या ··?"

ट्राउट मछली ··खाना खाते समय और खाना खा चुकने के बाद भी मिस पाल के दिमाग पर ट्राउट मछली की बात ही सवार रही। जैसे भी हो, शाम को वह ट्राउट मछली बनाएगी। उसके हठ की वजह से मैंने उससे कह दिया था कि मैं अगले दिन सुबह तक वहां रह जाऊंगा। मिस पाल ने आगे का फैसला अगले दिन पर छोड़ दिया था। उसे शाम के लिए कई और चीजों का इन्तजाम करना था, क्योंकि ट्राउट मछली आसानी से तो नहीं बन जाती। पहली चीज घी चाहिए था। डिब्बे में घी नाममात्र को ही था। प्याज और मसाला भी घर में नहीं था। मिट्टी का तेल भी चाहिए था। खाने के बाद हम लोग घूमने के लिए निकले तो पहले वह मुझे साथ बाजार में ले गई। हटवार के पास भी घी नहीं

था। उसके लिए मिस पाल ने पोस्टमास्टर से अनुरोध किया कि वह अपने घर से उसे शाम के लिए आधा सेर घी भिजवा दे, अगले दिन कुल्लू से लाकर लौटा देगी। उससे उसने यह भी कहा कि वह अपने घर के थोड़े-से फ्रेंच बीन भी उतरवाकर उसे भेज दे, और कोई मछलीवाला उधर से गुज़रे तो उसके लिए सेर-भर ट्राउट ले रखे।

"सब्बरवाल साहब, मैं आपको बहुत तकलीफ देती हूं," वह चलने से पहले सात-आठ बार उसे धन्यवाद देकर बोली, 'मगर देखिए, मेरे मेहमान आए हुए हैं, और यहां ट्राउट के अलावा कोई अच्छी चीज़ मिलती नहीं। देखती हूं, अगर वाली मुझे मिल जाए तो मैं उससे कहूंगी कि वह मुझे दरिया से एक मछली पकड़ दे। मगर वाली का कोई भरोसा नहीं। आप ज़रूर मेरे लिए ले रखिएगा। मैंने मिसेज़ एटकिन्सन को भी कहला दिया है। उन्होंने भी ले ली तो मैं आज और कल दोनों दिन बना लूंगी। ध्यान रखिएगा। कई बार मछलीवाला आवाज़ नहीं लगाता और ऐसे ही निकल जाता है। थैंक यू, थैंक यू वेरी मच!"

मेरे सामान के लिए उसने कुल्लू फोन भी करा दिया। अब सड़क पर चलती हुई वह सुबह के नाश्ते की बात करने लगी।

"रात को तो ट्राउट हो जाएगी, मगर सुबह नाश्ता क्या बनाया जाए? डबल रोटी यहां नहीं मिलेगी, नहीं तो मैं तुम्हें शहद के टोस्ट ही बनाकर खिलाती। अच्छा खैर, देखो . . ।"

सड़क पर खुली धूप फैली थी और भेड़ों और पशम के बकरों का रेवड़ हमारे आगे-आगे चल रहा था। साथ दो कुत्ते जीभ लपलपाते हुए पहरेदारी करते जा रहे थे। सामने से एक जीप के आ जाने से रेवड़ में खलबली मच गई। बकरीवाले भेड़ों को पहाड़ की तरफ धकेलने लगे। एक भेड़ का बच्चा ढलान से फिसल गया और नीचे से सिर उठाकर मिमियाने लगा। किसी बकरीवाले का ध्यान उसकी तरफ नहीं गया तो मिस पाल सहसा परेशान हो उठी "ए भाई, देखो वह बच्चा नीचे जा गिरा है। 'बकरीवाले, एक बच्चा नीचे गड्ढे में गिर गया है, उसे उठा लाओ। ए भाई!"

एक दिन पहले वर्षा हुई थी, इसलिए व्यास खूब चढ़ा हुआ था। [illegible] ढ़ानों से फिसलता और कटता हुआ पानी शोर करता हुआ बह रहा था। [illegible] रस्सा पार करने का झूला था। झूले की चर्खियां घूम रही थीं, रस्सियां [illegible]

हो रही थी और झूला दो व्यक्तियों को लिए हुए इस पार से उस पार जा रहा था। सहसा झूले में बैठे हुए दोनों व्यक्ति 'ही-ही-ही-ही' करके हंसने लगे, जैसे किसी को चिढ़ा रहे हों। फिर उनमें से एक ने जोर से छींक दिया। झूला उस पार पहुंच गया और वे व्यक्ति उसी तरह हंसते और छींकते हुए उससे उतर गए। झूला छोड़ दिया गया, और उसकी रस्सियां इस सिरे से उस सिरे तक आधी गोलाइयों में फैल गईं। जो व्यक्ति उधर उतरे थे, वे उस किनारे से फिर एक बार जोर से हंसे। तभी झूला खींचनेवालों में एक लड़का मचान से उतरकर हमारे पास आ गया। वह ऐसे बात करने लगा जैसे अभी-अभी कोई दुर्घटना होकर हटी हो।

'मिस साहब," उसने कहा, "यह वही सुदर्शन है, जिसने आपके कुत्ते को कुछ खिलाया था। यह अब भी शरारत करने से बाज नहीं आता।"

उन व्यक्तियों के हंसने और छींकने का मिस पाल पर उतना असर नहीं हुआ था जितना उस लड़के की बात का हुआ। उसका चेहरा एकदम से उतर गया और आवाज खुश्क हो गई।

"यह उधर के गांव का आदमी है न?" उसने पूछा।

"हां, मिस साहब!"

"तुम पोस्टमास्टर को बताना। वे अपने-आप इसे ठीक कर लेंगे।"

"मिस साहब, यह हमसे कहता है कि यह मिस साहब···!"

"तुम इस वक्त जाओ अपना काम करो," मिस पाल उसे झिड़ककर बोली "पोस्टमास्टर से कहना, वे इसे एक दिन में ठीक कर देंगे।"

"मगर मिस साहब ···!"

"जाओ, फिर कभी उधर आकर बात करना।"

लड़के की समझ में नहीं आया कि मिस साहब से बात करने में उस समय उससे क्या अपराध हुआ है। वह सिर लटकाए हुए चुपचाप वहां से लौट गया।

कुछ देर हम लोग वहीं रुके रहे। मिस पाल जैसे थकी हुई-सी सड़क के किनारे एक बड़े-से पत्थर पर बैठ गई। मैं दरिया के उस पार पहाड़ की चोटी पर उगे हुए वृक्षों की लम्बी पंक्ति को देखने लगा, जो नीले आकाश और गुब्बारे जैसे सफेद बादलों के बीच खिंची हुई लकीर-सी लगती थी। दरिया के दोनों तरफ पुल के सीमेंटी खम्भे खड़े थे, जिनपर अभी पुल नहीं बना था। खम्भों के

आसपास से झड़कर थोड़ी-थोड़ी मिट्टी दरिया में गिर रही थी। मैंने उधर से आंखें हटाकर मिस पाल की तरफ देखा। मिस पाल मेरी तरफ देख रही थी। शायद वह जानना चाहती थी कि झूलेवाले लड़के की बात का मेरे मन पर क्या प्रभाव पड़ा है।

"तो आगे चलें?" मुझसे आंखें मिलते ही उसने पूछा।

"हां चलो।"

मिस पाल उठ खड़ी हुई। उसकी सांस कुछ-कुछ फूल रही थी। वह चलती हुई मुझे बताने लगी कि वहां के लोगों में कितनी तरह के अन्ध-विश्वास हैं। जब पिंकी बीमार हुआ तो वहां के लोगों ने सोचा था कि किसी ने उसे कुछ खिला-पिला दिया है।

"ये अनपढ़ लोग हैं। मैंने इनकी बातों का विरोध भी नहीं किया। ये लोग अपने अन्धविश्वास एक दिन में थोड़े ही छोड़ सकते हैं! इस चीज़ में जाने अभी कितने बरस लगेंगे!"

और रास्ते में चलते हुए वह बार-बार मेरी तरफ देखती रही कि मुझे उसकी बात पर विश्वास हुआ है या नहीं। मैंने सड़क से एक छोटा-सा पत्थर उठा लिया था और चुपचाप उसे उछालने लगा था। काफी देर तक हम लोग खामोश चलते रहे। वह खामोशी मुझे अस्वाभाविक लगने लगी तो मैंने मिस पाल से वापस घर चलने का प्रस्ताव किया।

"चलो, चलकर तुम्हारी बनाई हुई नई तस्वीरें ही देखी जाएं," मैंने कहा, "इन तीन-चार महीनों में तो तुमने काफी काम कर लिया होगा।"

"पहले घर चलकर एक-एक प्याली चाय पीते हैं," मिस पाल बोली। "सच-मुच इस समय मैं चाय की गरम प्याली के लिए ज़िन्दगी की कोई भी चीज़ कुर्बान कर सकती हूं। मेरा तो मन था कि घर से चलने से पहले ही एक-एक प्याली पी लेते, मगर फिर मैंने कहा कि पोस्टमास्टर से कहने में देर हो जाएगी तो मछलीवाला निकल जाएगा।"

इस बात ने मेरे मन को थोड़ा गुदगुदा दिया कि तीन महीने में आया हुआ पहला मेहमान उस समय मिस पाल के लिए अपनी तस्वीरों से भी अधिक महत्व-पूर्ण है।

लौटकर कॉटेज में पहुंचते ही मिस पाल चाय बनाने में व्यस्त हो गई। वह

आते हुए काफी थक गई थी, क्योंकि ज़रा-सी चढ़ाई चढ़ने मे ही उसकी साँस फूलने लगती थी, मगर वह ज़रा देर भी सुस्ताने के लिए नहीं रुकी। चाय के लिए उसकी यह व्यस्तता मुझे बहुत अस्वाभाविक लगी, शायद इसलिए कि मुझे खुद चाय की ज़रूरत महसूस नहीं हो रही थी। मिस पाल इस तरह चम्मचों और प्यालियों को ढूंढने के लिए परेशान हो रही थी, जैसे उसके दस मेहमान चाय का इन्तज़ार कर रहे हों और उसे समझ न आ रहा हो कि कैसे जल्दी से सारा इन्तज़ाम करे।

मैं घूमकर कमरे मे और बरामदे मे लगी हुई तसवीरो को देखने लगा। जिस-जिस तसवीर पर भी मेरी नज़र पड़ी, मुझे लगा वह मेरी पहले की देखी हुई है। कुछ वही तसवीरें थी जो मिस पाल पंजाब के एक मेले से बनाकर लाई थी। वह अजीब-अजीब-से चेहरे थे, जिनपर हम लोग एक बार फब्तियाँ कसते रहे थे। जाने क्यों, मिस पाल अपने चित्रों के लिए सदा ऐसे ही चेहरे चुनती थी जो किसी न किसी रूप मे विकृत हों! मैंने सारा कमरा और बरामदा घूम लिया। दो-एक अधूरी तसवीरो को छोड़कर मुझे एक भी नई चीज़ दिखाई नहीं दी। मैंने रसोईघर मे जाकर मिस पाल से पूछा कि उसकी नई तस्वीरें कहा हैं।

"अजी छोड़ो भी," मिस पाल प्यालियाँ धोती हुई बोली, "चाय की प्याली पीकर हम लोग ऊपर की तरफ घूमने चलते हैं। ऊपर एक बहुत पुराना मन्दिर है। वहां का पुजारी तुम्हे ऐसे-ऐसे किस्से सुनाएगा कि तुम सुनकर हैरान रह जाओगे। एक दिन वह बता रहा था कि यहां कुछ मन्दिर ऐसे हैं, जहा लोग पहले तो देवता से वर्षा के लिए प्रार्थना करते है, मगर बाद मे अगर देवता वर्षा नही देता तो उसे हिडिम्बा के मन्दिर मे ले जाकर रस्सी से लटका देते हैं। है नही मजेदार बात? जो देवता तुम्हारा काम न करे, उसे फासी लगा दो। मैं कहती हूं रणजीत, यहां लोगों मे इतने अन्धविश्वास हैं, इतने अन्धविश्वास हैं कि क्या कहा जाए! ये लोग अभी तक जैसे कौरवों-पाण्डवो के ज़माने मे ही जीते हैं, आज के ज़माने से इनका कोई सम्बन्ध ही नही है।"

और एक बार उड़ती नज़र से मुझे देखकर वह चीनी ढूंढने में व्यस्त हो गई। "अरे चीनी कहां चली गई? अभी हाथ मे थी, और अभी न जाने कहा रख दी? देखो, कैसी भुलक्कड हो गई हूं! मेरा तो बस एक ही इलाज है कि कोई हाथ मे छड़ी लेकर मुझे ठीक करे। यह भी कोई रहने का ढंग है जैसे मैं

रहती हूं ?"

"तुमने यहां के कुछ लैंडस्केप नहीं बनाए ?" मैंने पूछा।

"तस्वीरें तो बहुत-सी शुरू कर रखी हैं, पर अभी तक पूरी नहीं कर सकी," मिस पाल जैसे उस मुश्किल स्थिति से बचने का प्रयत्न करती हुई बोली, "अब किसी दिन लगकर सबकी-सब तसवीरें पूरी करूंगी। तारपीन का तेल भी खत्म हो चुका है, किसी दिन जाकर लाना है। कई दिनों से सोच रही थी कि मण्डी जाकर कैनवस और रंग भी ले आऊं, पर यूं ही आलस कर जाती हूं। कुछ ड्राइंग पेपर भी जिल्द कराने हैं। अब जाऊंगी किसी दिन और सारे काम एक साथ ही कर आऊंगी।"

बात करते हुए मिस पाल की आंखें झुकी जा रही थीं, जैसे वह अपने ही सामने किसी चीज़ के लिए अपराधी हो, और लगातार बात करके अपने अपराध के अनुभव को छिपाना चाहती हो। मैं चुप रहकर उसे चाय में चीनी मिलाते देखता रहा। उसे देखते हुए उस समय मेरे मन में कुछ वैसी उदासी भरने लगी जैसी एक निर्जन समुद्र-तट पर या ऊंची पहाड़ियों से घिरी हुई किसी एकान्त पथरीली घाटी में जाकर अनायास मन में भर जाती है।

"कल से एक तो मैं अपने घर को ठीक करूंगी," मिस पाल क्षण-भर बाद फिर उसी तरह बिना रुके बात करने लगी, "एक तो घर का सारा सामान ठीक ढंग से लगाना है। तुम्हें पता है, मैंने कितने चाव से दिल्ली में अपने कमरे के लिए जाली के पर्दे बनवाए थे ? वे पर्दे यहां ज्यों के त्यों बक्स में बन्द पड़े हैं; मेरा लगाने को मन ही नहीं हुआ। मैं कल ही तरखान से कहकर पर्दों के लिए चौखटे बनवाऊंगी। खाने-पीने का थोड़ा-बहुत सामान भी घर में रखना ही चाहिए; बिस्कुट, मक्खन, डबलरोटी और अचार का होना तो बहुत ही ज़रूरी है। जो चीज़ें कुल्लू से मिल जाती हैं वे तो मैं लाकर रख ही सकती हूं।...तारपीन का तेल भी मुझे कुल्लू से ही मिल जाएगा।"

उसने चाय की प्याली मेरे हाथ में दे दी तो भी मेरे मुंह से कोई बात नहीं निकली, और मैं चुपचाप छोटे-छोटे घूंट भरने लगा। मेरे मन को उस समय एक तरह की जड़ता ने घेर लिया था। कहां मिस पाल के बारे में दिल्ली के लोगों से सुनी हुई वे सब बातें और कहां उसके जीवन की यह एकान्त विडम्बना !

ट्राउट मछली! मिस पाल की सारी परेशानी के बावजूद उस दिन उसे ट्राउट नहीं मिल सकी। पोस्टमास्टर ने बताया कि मछलीवाला उस दिन आया ही नहीं। मिस पाल के बहुत-बहुत खुशामद करने पर भी मकान-मालकिन का चौकीदार वाली दरिया से मछली पकड़ने के लिए राजी नहीं हुआ। उसने कहा कि वह अपनी छड़ी पालिश कर रहा है, उसे फुरसत नहीं है। मिसेज एटकिन्सन के बच्चों ने एक मछली पकड़ी थी। मगर उसके पति ने उस दिन खासतौर पर मछली की कतलियों के लिए कहा था, इसलिए वह अपनी मछली मिस पाल ो नहीं दे सकती थी। हां, पोस्टमास्टर ने फ्रेंच बीन जरूर भेज दिए। चावल ौर सूखे फ्रेंच बीन! रात की रोटी के लिए मिस पाल का सारा उत्साह ठण्डा ड़ गया। खाना बनाने में उसका मन भी नहीं लगा, जिससे चावल थोड़ा नीचे लग गए। खाना खाते समय मिस पाल बस अफसोस ही प्रकट करती रही।

"मैं बहुत बदकिस्मत हूं रणजीत, हर लिहाज से मैं बहुत ही बदकिस्मत हूं," खाना खाने के बाद हम लोग बाहर मैदान में कुर्सियां निकालकर बैठ गए तो उसने कहा। वह सिर के पीछे हाथ रखे आकाश की ओर देख रही थी। बारहीं या तेरहीं की रात होने से आकाश में तीन तरफ खुली चांदनी फैली थी। व्यास की आवाज वातावरण में एक गूंज पैदा कर रही थी। वृक्षों की सरसराहट के अतिरिक्त मैदान की घास से भी एक धीमी-सी सरसराहट निकलती प्रतीत होती थी। हवा तेज थी और सामने पहाड़ के पीछे से उठता हुआ बादल धीरे-धीरे चांद की तरफ सरक रहा था।

"क्या बात है मिस पाल, तुम इस तरह गुम-सुम क्यों हो रही हो?" मैंने कहा, "चावल थोड़े खराब हो गए, तो इसमें इस तरह उदास होने की क्या बात है!"

मिस पाल सामने पहाड़ की धुंधली रेखा को देखती रही, जैसे उसमें कोई चीज खोज रही हो।

"मैं सोचती हूं रणजीत कि मेरे जीने का कोई भी अर्थ नहीं है," उसने कहा।

और वह मुझे अपने आरम्भिक जीवन की कहानी सुनाने लगी। उसे बहुत बड़ी शिकायत थी कि आरम्भ में अपने घर में भी उसे जरा सुख नहीं मिला, यहां तक कि अपने माता-पिता का स्नेह भी उसे नहीं मिला। उसकी मां

ने—उसकी अपनी मां ने—भी उसे प्यार नहीं किया। इसी वजह से पन्द्रह साल पहले वह अपना घर छोड़कर नौकरी करने के लिए निकल आई थी।

"सोचो, मां को मेरा घर में होना ही बुरा लगता था। पिताजी को मेरे संगीत सीखने से चिढ़ थी। वे कहा करते थे कि मेरा घर घर है, रंडीखाना नहीं। भाइयों का जो थोड़ा-बहुत प्यार था, वह भी भाभियों के आने के बाद छिन गया। मैंने आज तक कितनी-कितनी मुश्किल से अपनी अम्…अ…पवित्रता को बचाया है, यह मैं ही जानती हूं। तुम सोच सकते हो कि एक अकेली लड़की के लिए यह कितना मुश्किल होता है। मेरा लाहौर की तरफ घूमने जाने को मन था; वहां की कुल तसवीरें बनाना चाहती थी, मगर मैं वहां नहीं गई, क्योंकि मैं सोचती थी कि मर्द की पशु-शक्ति के सामने अम्…अ…मैं अकेली क्या कर सकूंगी। फिर, तुम्हें पता है कि डिपार्टमेंट के लोग वहां मेरे बारे में कैसी बुरी-बुरी बातें किया करते थे। इसीलिए मैं कहती हूं कि मुझे वहां के एक-एक आदमी से नफरत है। वे तुम्हारे बुखारिया और मिर्जा और जोरावरसिंह। मैं तो कभी ऐसे लोगों के साथ बैठकर एक प्याली चाय भी पीना पसन्द नहीं करती थी। तुम्हें याद है, एक बार जब जोरावरसिंह ने मुझसे कहा था…"

और फिर वह दफ्तर के जीवन की कई छोटी-छोटी घटनाएं दोहराने लगी। जब मैंने देखा कि वह फिर से उसी वातावरण में जाकर खामखाह अपना गुस्सा भड़का रही है तो मैंने उससे फिर कहा कि वह अब दफ्तर के लोगों के बारे में न सोचे, अपने संगीत और अपने चित्रों की बात ही सोचे।

"तुम यहां रहकर कुछ अच्छी-अच्छी चीजें बना लो, फिर दिल्ली आकर अपनी प्रदर्शनी करना।" मैंने कहा, "जब लोग तुम्हारी चीजें देखेंगे और तुम्हारा नाम सुनेंगे तो अपने-आप तुम्हारी कद्र करेंगे।"

"न, मैं प्रदर्शनी-अदर्शनी के किसी चक्कर में नहीं पड़ूंगी।" मिस पाल उसी तरह सामने की तरफ देखती हुई बोली, "तुम जानते ही हो इन सब चीजों में कितनी पालिटिक्स चलती है। मैं उस पालिटिक्स में नहीं पड़ना चाहती। मेरे पास अभी तीन-चार हजार रुपये हैं, जिनसे मेरा काफी दिन गुजारा चल जाएगा। जब ये रुपये चुक जाएंगे, तो…" और वह जैसे कुछ सोचती हुई चुप कर गई।

मैं आगे की बात सुनने के लिए बहुत उत्सुक था। मगर मिस पाल कु

क्या

देर बाद कंधे हिलाकर बोली, "... तो भी कुछ न कुछ हो ही जाएगा । अभी वह वक्त आए तो सही ।"

बादल ऊंचा उठ रहा था और वातावरण में ठंडक बढ़ती आ रही थी । जंगल की तरफ से आती हुई हवा की गूंज शरीर में बार-बार सिहरन भर देती थी । साथ के कॉटेज में रेडियो पर पश्चिमी संगीत चल रहा था । उससे आगे के कॉटेज में लोग खिलखिलाकर हंस रहे थे । मिस पाल अपनी आखें मूदे हुए मुझे बताने लगी कि होशियारपुर में उसने भृगुसंहिता से अपनी कुण्डली निकलवाई थी । उस कुण्डली के फल के अनुसार इस जन्म में उसपर यह शाप है कि उसे कोई सुख नहीं मिल सकता—न धन का, न ख्याति का, न प्यार का । इसका कारण भी भृगुसंहिता में दिया हुआ था । अपने पिछले जन्म में वह सुन्दर लड़की थी और नृत्य-संगीत आदि कलाओं में बहुत पटु थी । उसके पिता बहुत-धनी थे और वह उनकी अकेली संतान थी । जिस व्यक्ति से उसका ब्याह हुआ वह बहुत सुन्दर और धनी था । "मगर मुझे अपनी सुन्दरता और अपनी कला का बहुत मान था, इसलिए मैंने अपने पति का आदर नहीं किया । कुछ ही दिनों में वह बेचारा दुःखी होकर इस संसार से चल बसा । इसीलिए मुझपर अब यह शाप है कि इस जन्म में मुझे सुख नहीं मिल सकता ।"

मैं चुपचाप उसे देखता रहा । अभी दिन में ही वह वहां के लोगों के अंधविश्वासों की चर्चा करती हुई उनका मजाक उड़ा रही थी । सहसा मिस पाल भी बोलते-बोलते चुप कर गई और उसकी आखें मेरे चेहरे पर स्थिर हो गईं । उसके लिपस्टिक से रंगे हुए ओठों की तह में जैसे उस समय कोई चीज कांप रही थी । काफी देर हम लोग चुप बैठे रहे । बादल ने चांद को छा लिया था और चारों तरफ गहरा अंधेरा हो रहा था । सहसा साथ के कॉटेज की बत्ती भी बुझ गई, जिससे अंधेरा और भी स्याह और भी गहरा लगने लगा ।

मिस पाल उसी तरह मेरी तरफ देख रही थी । मुझे महसूस होने लगा कि मेरे आसपास की हवा कुछ भारी हो रही है । मैं सहसा कुरसी पीछे सरकाकर उठ खड़ा हुआ ।

"मेरा खयाल है, अब रात काफी हो गई है," मैंने कहा, "इसलिए अब चलकर सो रहा जाए । और बातें अब सुबह होंगी ।"

"हां-हां," मिस पाल भी अपनी कुर्सी से उठती हुई बोली, "मैं अभी चलकर

बिस्तर बिछा देती हूं। तुम बताओ, तुम्हारा बिस्तर बरामदे में बिछा दूं या...

"हां, बरामदे में ही बिछा दो। अन्दर काफी गरमी होगी।"

"देख लो, रात को ठंड हो जाएगी।"

"कोई बात नहीं, बरामदे में हवा आती रहेगी तो अच्छा लगेगा।"

और बरामदे में लेटे हुए मैं देर तक जाली के बाहर देखता रहा। बादल पूरे आकाश में छा गया था और दरिया का शब्द बहुत पास आया-सा लगता था। जाली से लगा हुआ मकड़ी का जाला हवा से हिल रहा था। पास ही कोई चूहा कोई चीज़ कुतर रहा था। अन्दर कमरे से बार-बार करवट बदलने की आवाज़ सुनाई दे जाती थी।

"रणजीत!" अन्दर से आवाज़ आई तो मेरे सारे शरीर में एक सिहरन भर गई।

"मिस पाल!"

"सरदी तो नहीं लग रही?"

"नहीं, बल्कि हवा है, इसलिए अच्छा लग रहा है।"

और तभी टप्-टप्-टप्-टप् मोटी-मोटी बूंदें पड़ने लगीं। पानी की बौछार मेरे बिस्तर पर आने लगी तो मैंने करवट बदल ली। बरामदे की बत्ती मैंने जलती रहने दी थी, इसलिए कई चीज़ें इधर-उधर बिखरी नज़र आ रही थीं। बिस्तर बिछाते समय मिस पाल को घर की काफी उथल-पुथल करनी पड़ी थी। मेरी चारपाई के पास ही एक तिपाई औंधी पड़ी थी और उससे ज़रा आगे तसवीरों के कुछ-एक फ्रेम रास्ते में गिरे थे। सामने के कोने में मिस पाल के ब्रश और कपड़े एक ढेर में उलझे हुए पड़े थे।

अन्दर की चारपाई चिरमिराई और लकड़ी के फर्श पर पैरों की धप्-धप् आवाज सुनाई देने लगी। फिर सुराही से चुल्लू में पानी पीने की आवाज़ आने लगी।

"रणजीत!"

"मिस पाल!"

"ध्यान तो नहीं लगी?"

"नहीं।"

"अच्छा, सो जाओ।"

कुछ देर मुझे लगता रहा जैसे मेरे आस-पास एक बहुत तेज़ गाना चल रही है जो धीरे-धीरे दबे पैरों, सारे वातावरण पर अधिकार करती जा रही है, और आसपास की हर चीज़ अपने पर उसका दबाव महसूस कर रही है। पानी की बौछार कुछ धीमी पड़ने लगी तो मैंने फिर से जाली की तरफ करवट बदल ली और पहले की तरह ही बाहर देखने लगा। तभी पास ही अन्न में किसी चीज़ के गिरने की आवाज़ सुनाई दी।

"क्या गिरा है रणजीत ?" अन्दर से आवाज़ आई।

"पता नहीं, शायद किसी चूहे ने कुछ गिरा दिया है।"

"सचमुच मैं यहां चूहों से बहुत तंग आ गई हू।"

मैं चुप रहा। अन्दर की चारपाई फिर चिरमिराई।

"अच्छा, सो जाओ !"

सारी रात पानी पड़ता रहा। सुबह-सुबह वर्षा थम गई, मगर आकाश साफ नहीं हुआ। सुबह उठकर चाय के समय तक मेरी मिस पाल से खास बात नहीं हुई। चाय पीते समय भी मिस पाल अधूरे-अधूरे टुकड़ों में ही बात करती रही। मैंने उससे कहा कि मैं अब पहली बस से चला जाऊंगा तो उसने एक बार भी मुझसे रुकने के लिए आग्रह नहीं किया। यू साधारण बातचीत में भी मिस पाल काफी तकल्लुफ बरत रही थी, जैसे किसी बिलकुल अपरिचित व्यक्ति से बात कर रही हो। मुझे उसका सारा व्यवहार बहुत अस्वाभाविक लग रहा था। वह जैसे बात न करने के लिए ही अपने को छोटे-छोटे कामों में व्यस्त रख रही थी। मैंने दो-एक बार उसमें हल्के-से मजाक करने का भी प्रयत्न किया जिससे तनाव हट जाए और मैं उससे ठीक से विदा लेकर जा सकूं, मगर मिस पाल के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कराहट भी नहीं आई।

"अच्छा तो मिस पाल, अब चलने की बात की जाए," आखिर मैंने कहा, "तुम कल कह रही थी कि तुम भी कुल्लू तक साथ ही चलोगी। तो अच्छा होगा कि तुम आज ही वहां से अपना सारा सामान भी ले आओ। बाद में तुम फिर आलस कर जाओगी।"

"नहीं, मैं आलस नहीं करूंगी," मिस पाल बोली, "किसी दिन जाकर

रखे हैं ।"

मिस पाल शायद ज्यादा बात नहीं करना चाहती थी, इसलिए उसने मेरी बात का विरोध नहीं किया ।

"अच्छा तुम बैठो, मैं अभी ढूंढती हू," उसने कहा और आंखें बचाती हुई रसोईघर में चली गई ।

पहली बस मे सचमुच हम लोगों को जगह नहीं मिली । ड्राइवर ने बस वहां रोकी ही नहीं, और हाथ के इशारे से कह दिया कि बस मे जगह नहीं है । दूसरी बस में भी जगह नहीं थी, मगर किसी तरह कह-कहाकर हमने उसमें अपने लिए जगह बना ली । मगर हम कुल्लू काफी देर से पहुचे, क्योंकि रात की बरसात से एक जगह सडक टूट गई थी और उसकी मरम्मत की जा रही थी । हमारे कुल्लू पहुचने के लगभग साथ ही बारह बजे की बस भी मनाली से आ पहुंची । पौने बारह हो चुके थे । मैंने अन्दर जाकर अपने सामान का पता किया, फिर बाहर मिस पाल के पास आ गया । मिस पाल ने खाली डिब्बे अपने दोनों हाथों में सभाल रखे थे । मैं डिब्बे उसके हाथों से लेने लगा तो उसने अपने हाथ पीछे हटा लिए ।

"चलो, पहले बाजार में चलकर तुम्हारा सामान खरीद लें," मैंने कहा ।

"अब सामान की बात रहने दो," उसने कहा । "तुम्हारी बस आ गई है, तुम इसमें चले जाओ । समान तो मैं किसी भी समय खरीद लूगी । तुम्हें इसके बाद फिर किसी बस मे जगह नहीं मिलेगी । दो बजे की बस मनाली से ही भरी हुई आती है । तुम्हारा एक दिन और यहां खराब होगा ।"

"दिन खराब होने की क्या बात है," मैंने कहा । "पहले चलकर बाजार से सामान खरीद लेते हैं । अगर आज सचमुच किसी बस मे जगह नहीं मिली तो मैं तुम्हारे साथ लौट चलूगा और कल किसी बस से चला जाऊंगा । मुझे वापस पहुचने की ऐसी कोई जल्दी नहीं है ।"

"नहीं तुम चले जाओ," मिस पाल हठ के साथ बोली, "अपने लिए खामखाह मैं तुम्हें क्यों परेशान करू ? अपना सामान तो मैं अब कभी भी ले लूगी ।"

"मगर मुझे लगता है कि आज तुम ये डिब्बे इसी तरह लिए हुए ही लौट जाओगी ।"

"अरे नहीं," मिस पाल की आंखें उमड़ आईं और वह अपने आंसुओं को रोकने के लिए दूसरी तरफ देखने लगी, "तुम समझते हो मैं अपने शरीर की देखभाल ही नहीं करती। अगर न करती तो यह इतना शरीर ऐसे ही होता। ...लाओ पैसे दो मैं तुम्हारा टिकट ले आती हूं। देर करोगे तो इस बस में भी जगह नहीं मिलेगी।"

"तुम इस तरह ज़िद क्यों करती हो मिस पाल? मुझे जाने की सचमुच ऐसी कोई जल्दी नहीं है।" मैंने कहा।

"मैंने तुमसे कहा है, तुम पैसे निकालो, मैं तुम्हारा टिकट ले आऊं। मगर नहीं, तुम रहने दो। कल का तुम्हारा टिकट मेरी वजह से खराब हुआ था। मैं फिर तुमसे पैसे किसलिए मांग रही हूं?"

और वह डिब्बे वहीं रखकर झटपट टिकटघर की तरफ बढ़ गई।

"ठहरो, मिस पाल," मैंने असमंजस में अपना बटुआ जेब से निकाल लिया।

"तुम रुको, मैं अभी आ रही हूं। तुम उतनी देर में अपना सामान निकलवा कर ऊपर रखवाओ।

मेरा मन उस समय न जाने कैसा हो रहा था, फिर भी मैंने अन्दर अपना सामान निकलवाया और बस की छत पर रखवा दिया। मिस पाल तब तक टिकटघर के बाहर ही खड़ी थी। शनिवार होने के कारण उस दिन स्कूल में जल्दी छुट्टी हो गई थी और बहुत-से बच्चे बस्ते लटकाए सुलतानपुर की पहाड़ी से नीचे आ रहे थे। कई बच्चे बस की सवारियों को देखने के लिए बस के आसपास जमा हो रहे थे। मिस पाल उस समय प्याजी रंग की सलवार-कमीज़ पहने थी और ऊपर काला दुपट्टा लिए थी। उन कपड़ों की वजह से उसका शरीर पीछे से और भी फैला हुआ लगता था। बच्चे एक-दूसरे से आगे होने हुए टिकटघर के नज़दीक जाने लगे। मिस पाल टिकटघर की खिड़की पर झुकी हुई थी। एक लड़के ने धीरे से आवाज़ लगाई, "कमाल है भई कमाल है!"

इस पर आसपास खड़े बहुत-से बच्चे हंस दिए। मुझे लगा जैसे किसी ने मेरे भारी मन पर एक और बड़ा पत्थर डाल दिया हो। बच्चे सबके-सब टिकटघर के आसपास जमा हो गए थे और आपस में खुसर-पुसर कर रहे थे। मैं उन्हें कुछ कह भी नहीं सकता था, क्योंकि उससे मिस पाल का ध्यान खामखा उनकी तरफ चला जाता। मैं उधर से अपना ध्यान हटाकर दरिया की तरफ

आते हुए लोगों को देखने लगा। फिर भी बच्चों की खुसर-पुसर मेरे कानों में पड़ती रही। दो लड़कियां बहुत धीरे-धीरे आपस में बात कर रही थीं, "मर्द है।"

"नहीं, औरत है।"

"तू सिर के बाल देख, बाकी शरीर देख। मर्द है।"

"तू कपड़े देख, और सब कुछ देख। औरत है।"

"आओ, बच्चो आओ, पास आकर देखो," मिस पाल की आवाज़ से मैं जैसे चौंक गया। मिस पाल टिकट लेकर खिड़की से हट आई थी। बच्चे उसे आते देखकर 'आ गई, आ गई' कहते हुए भाग खड़े हुए। एक बच्चे ने सड़क के उस तरफ जाकर फिर ज़ोर से आवाज़ लगाई, "कमाल है भई कमाल है!"

मिस पाल सड़क पर आकर कई कदम बच्चों के पीछे चली गई।

"आओ बच्चो, यहां हमारे पास आओ," वह कहती रही, "हम तुम्हें मारेंगे नहीं, टॉफियां देंगे। आओ···"

मगर बच्चे पास आने की बजाय और भी दूर भाग गए। मिस पाल कुछ देर सड़क के बीच रुकी रही, फिर लौटकर मेरे पास आ गई। उस समय उसके चेहरे का भाव बहुत विचित्र लग रहा था। उसकी आंखों में आए हुए आंसू नीचे गिरने को हो रहे थे और वह उन्हें झुठलाने के लिए एक फीकी हंसी का प्रयत्न कर रही थी। उसने अपने ओंठों को जाने किस तरह काटा था कि एकाध जगह से उसकी लिपस्टिक नीचे फैल गई थी। उसकी घिसी हुई कमीज़ की सीवनें कंधे के पास से खुल रही थीं।

"खूबसूरत बच्चे थे; नहीं?" उसने आंखें झपकते हुए कहा।

मैंने उसकी बात का समर्थन करने के लिए सिर हिलाया तो मुझे लगा कि मेरा सिर पत्थर की तरह भारी हो गया है। उसके बाद मेरी समझ में कुछ नहीं आया कि मिस पाल मुझसे क्या कह रही है और मैं उससे क्या बात कर रहा हूं; जैसे आंखों और शब्दों के साथ विचारों का कोई सम्बन्ध ही नहीं रहा था। मुझे इतना याद है कि मैंने मिस पाल को टिकट के पैसे देने का प्रयत्न किया, मगर वह पीछे हट गई और मेरे बहुत अनुरोध करने पर भी उसने पैसे नहीं लिए। मगर किस अवचेतन प्रक्रिया से हम लोगों के बीच अब तक बातचीत का सूत्र बना रहा, यह मैं नहीं जान सका। मेरे कान उसे बोलते सुन रहे थे

और अपने को भी। परन्तु वे जैसे दूर की ध्वनियां थीं—अस्फुट, अस्पष्ट और अर्थहीन। जो वात मैं ठीक से सुन सका वह यही थी, "और वहां जाकर रणजीत दफ्तर में मेरे वारे में किसी से वात मत करना। समझे ? तुम्हें पता ही है कि वे लोग कितने ओछे हैं। वल्कि अच्छा होगा कि तुम किसीको यह भी न वताओ कि तुम मुझे यहां मिले थे। मैं नहीं चाहती कि वहां कोई भी मेरे वारे में कुछ जाने या वात करे। समझे।"

वस तव स्टार्ट हो रही थी और मैं खिड़की से झांककर मिस पाल को देख रहा था। वस चली तो मिस पाल हाथ हिलाने लगी। दोनों खाली डिव्वे वह अपने हाथों में लिए हुए थी। मैंने भी एक वार उसकी तरफ हाथ हिलाया और वस के मुड़ने तक हिलते हुए खाली डिव्वों को ही देखता रहा।

खाली

तोषी को फिर वही चिढ हो रही थी। वह समझ नहीं पा रही थी किस चीज से। अपने से? कमरे के कोने-कोने में लदे सामान से? खिड़की से कमरे में फैल आई धूप से?

वह दहलीज तक जाकर कमरे में लौट आई। बरामदे में कितना कुछ पड़ा था—जूठी प्यालियों से लेकर गुड्डो की किताबों तक—जिसे उसीको समेटना था। और कुछ करने को नहीं था, वह दस मिनट में वह काम कर सकती थी। मगर काफी देर से वह उसे शाम के लिए टाल चुकी थी। इसलिए उस वक्त उसने उन चीजों की तरफ देखा भी नहीं। वे जैसे वहां थीं ही नहीं। उन्हें उस वक्त नहीं, शाम को ही वहां होना था।

दहलीज की तरफ जाते हुए उसे लग रहा था कि गरमी उसे परेशान कर रही है। उधर से लौटते हुए लगने लगा कि गरमी नहीं, एक गन्ध है जो उसे ठीक से सांस नहीं लेने दे रही। वह गन्ध हर चीज से आ रही थी। पलंग से, खूंटी पर टंगे कपड़ों से, फर्श से, अपने-आप से। एक बार फिर उसके मन में आया कि अगर वह नहा सकती, तो शायद इस गरमी, या गन्ध से कुछ हद तक छुटकारा मिल जाता। पर बारह बज चुके थे और गुसलखाने में एक बूंद पानी नहीं था। जब पानी था, तो जाने किससे नल खुला रह जाने से पूरा दालान पानी से भर गया था। उस समय वह सब्जी खरीदकर बाजार से आई थी। सोच

रही थी कि घर पहुंचते ही पहला काम नहाने का करेगी। पर दालान को पानी से भरा देखकर उसका सिर भन्ना गया था। यह जानने का कोई उपाय नहीं था कि नल किससे खुला रहा है। बेबी स्कूल जा चुकी थी, जुगल दफ्तर। मुमकिन यह भी था कि नल खुद उसीसे खुला रह गया हो। मगर उसे झल्लाहट हुई कि बेबी और जुगल उस समय उसके सामने क्यों नहीं हैं। दोनों में से कोई भी सामने होता, तो वह कुछ देर उसपर झींख लेती। यूं बहते पानी को देखकर मन के किसी कोने में एक खयाल यह भी उठा था कि क्यों न कपड़े उतारकर उस पानी को अपने ऊपर उलीचने लगे? पर पानी की ठण्डक को अपने में भर लेने की ललक के बावजूद वह जैसे एक ज़िद के साथ कुछ देर गुस्से में भरी खड़ी रही थी। फिर उसी गुस्से के साथ गुसलखाने में जाकर नल बन्द कर आई थी और किसी को सज़ा देने की तरह तीखे हाथ से झाड़ू चलाती हुई पानी बाहर निकालने लगी थी। इससे जो छींटे उड़कर शरीर पर पड़े, उनसे उसे कुछ राहत भी मिली थी—पर दालान को सुखा देने के बाद अपनी ज़िद में ही नहाना टालकर वह कमरे के अन्दर चली आई थी। आकर हांफती हुई दीवार के सहारे फर्श पर बैठकर पानी से नरम पड़ी हाथों की लकीरों को देखती रही थी। कुछ देर बाद चाय बनाकर उसके साथ उसने एस्पिरीन की एक टिकिया ली थी। सोचा था टिकिया लेकर कुछ देर लेट रहेगी। पर पलंग के पास जाने पर उसे और चिढ़ होने लगी थी—उसके मेह-राबदार पायों से, उसपर बिछी चादर से और दो दीवारों के बीच उसकी स्थिति से। वह कुछ देर इस तरह पलंग को देखती रही थी जैसे उसे लेकर अभी-अभी कुछ किया जाना हो। फिर वहां से हटकर खूंटी पर लटकते कपड़ों को देखती रही थी—जैसे कि जो किया जाना था, उसका सम्बन्ध पलंग से न होकर उन कपड़ों से हो। उन कपड़ों से मन हटाने के लिए ही शायद वह दहलीज की तरफ बढ़ गई थी—या शायद बिना किसी भी इरादे के।

गुसलखाने में पानी नहीं है, इस खयाल से उलझकर उसने पंखे की नाब को पूरा घुमा दिया। हवा हल्की आंच की तरह शरीर को छूने लगी, तो वह आराम-कुर्सी पंखे के नीचे खींचकर उसपर पसर गई। अपने ब्लाउज की हुकें उसने एक-एक करके खोल दीं। गरम हवा के नीचे सरसराते पसीने की ठण्डक उसे अच्छी लगी। मन हुआ कि कुछ देर के लिए ब्लाउज ब्रेज़ियर सब

उतारकर पूरे बदन का पसीना सूख जाने दे। पर ब्रेज़ियर का फीता खोलने से ज़्यादा वह कुछ नहीं कर सकी। जुगल घर पर नहीं था, पर उसका 'होना' उसके बाहर रहने पर भी उसी तरह महसूस होता था जैसे घर पर रहने पर। उसकी साड़ी की निचाई और ब्लाउज़ की ऊंचाई—इन पर जुगल की नज़र हर वक्त रहती थी। शुक्र था कि नहाते वक्त वह गुसलखाने में उसके साथ नहीं होता। रात को बिस्तर में साथ होता था, तो उस वक्त बत्तियां बुझी रहती थी। वरना तब भी वह त्यौरी डालकर कह सकता था, "तुम्हें खुद ही अपने-आप की शरम नहीं, तो दूसरा कोई तुमसे क्या कह सकता है? तुम्हें अच्छा लगता है अपने को उघाड़कर दिखाना, तो ठीक है'''दिखाती रहा करो। मैं आगे से तुमसे इस बारे में कुछ कहूंगा भी नहीं।" पर आगे से कुछ न कहने के लिए ही शायद वह उसके ब्लाउज़ों की टूटी हुकें खुद टांकने लग जाता था।

वह ऐसे में कोशिश करती थी कि किसी तरह अपना मन जुगल की बातों से हटाए रख सके। जुगल को जब उससे किसी भी चीज़ की शिकायत होती थी, तो उसका चेहरा मरी हुई मुर्गी की तरह लटक जाता था। उसकी आंखें इस तरह झपकने लगती थीं कि उसकी तरफ देखा भी नहीं जाता था। ज़िन्दगी की हर चीज़ का गिला आंखों में लिए या तो वह असहाय-सा खड़ा रहता था, या उस एक ही घड़ी में हर चीज़ का प्रतिशोध ले लेने के लिए ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगता था। "मुझे अपने लिए इस घर से कुछ नहीं चाहिए। मेरी तरफ से आग लगा दो इस घर को। मेरा कसूर इतना ही है न कि शाम को दफ्तर से सीधा घर चला आता हूं? कल से नहीं आया करूंगा। सो रहा करूंगा किसी दोस्त के घर जाकर।" इस तरह बात करते हुए जुगल की छोटी-छोटी बिल्लौरी आंखें बिलकुल दूसरी तरह की हो जाती थीं—न जाने किस किताब में उसने रात में चमकती बाघ की आंखों का ज़िक्र पढ़ा था—कुछ-कुछ वैसी ही। तब उसे जुगल का सारा शरीर एक जानवर का-सा लगने लगता था, जिसके शरीर के लम्बे-लम्बे बाल कपड़े रहने के बावजूद उसके सामने उभर आते थे। उसके शब्द भी शब्द नहीं रह जाते थे—झपट्टा मारने से पहले जानवर के गले से निकलती आवाज़ों का रूप ले लेते थे। आंखों के अलावा सामने नज़र आते थे दो हिलते पंजे और कांपते जबड़े। उसका मन होता था कि उस जानवर के झपटने से पहले वह खुद ही उसे झपट ले—और यह सोचकर कि अपनी झपटने

में वह खुद कैसी नज़र आती होगी, उसके मन में एक दहशत दौड़ जाती थी।

जुगल जो भी बक-झक करता था, उसके प्रायः सभी शब्द उसे याद थे। उनका पूरा क्रम, और सारे उतार-चढ़ाव। जब वह ज़ोर-ज़ोर से बोलकर थक जाता था, तो ठण्डे और चुभते ढंग से बात करने लगता था। उसके बाद फिर गुस्सा चढ़ जाता था, तो खामोशी साधकर बिस्तर पर पड़ जाता था। कई-कई घण्टे दोतरफा खामोशी से कमरे का वातावरण कसा रहता था। फिर खाना खाने की शुरुआत के तौर पर वह बेबी को अपने पास बुलाता था। बेबी भी सोफे के कोने में दुबकी हुई पहले से इसके लिए तैयार रहती थी। थोड़ी देर पापा का प्यार पा चुकने के बाद वह दबी आवाज़ में पूछ लेती थी, "पापा, ममी से कहूं खाना ले आएँ ?" इस पर जुगल के गले से एक खास तरह की आवाज निकलती थी—समझौता करने के लिए मजबूर जानवर की गुर्राहट जैसी। बेबी पापा की बांहों से छूटकर किचन में या जहां भी वह होती, उसके पास आ जाती थी। "ममी, पापा खाना मांग रहे हैं," कहते हुए बेबी के स्वर में हल्का सन्तोष होता कि अब शायद कार्यक्रम पूरा हो जाने से रात-भर के लिए सोया जा सकता है।

तोपी सहसा कुहनियों पर भार दिए कुरसी पर सीधी हो गई। उसे अपने अन्दर से लगा था जैसे सोचते-सोचते वह किसी निर्णय के मुकाम पर पहुंच गई हो। पर वह निर्णय क्या था, यह सोच पाने से पहले ही वह फिर से निढाल होकर पहले की तरह लम्बी हो गई। उसे लगा कि फुल-स्पीड पर होने पर भी पंखा काफी तेज नहीं चल रहा। हर दोपहर की तरह उस समय भी बिजली का वाल्टेज शायद काफी डाउन हो गया था।

उसने बांहें और टांगें सीधी करके एक अंगड़ाई ली। पर जंभाई के लि[illegible] मुंह न खुले, इसके लिए उसने अपने जबड़ों को कसे रखा। अपने गले से सुना[illegible] देती जंभाई की आवाज़ के साथ ही अक्सर अपनी ऊम्र के साल गिनने लग[illegible] थी। एक उम्र वह थी—उन्नीस-बीस तक की—जब वह किसी को भी जंभाई ले[illegible] देखती थी टोक देती थी। या आंखें हटाकर दूसरी तरफ देखने लगती थी। [illegible] ने अब तक मुश्किल से आठ साल बीते थे और उसे अपनी आंखों के नीचे औ[illegible] होंठों के आसपास बुढ़ापा घिरना नजर आने लगा था। कोई उसकी उम्र पू[illegible] लेता था, तो उसे खुद लगता था जैसे अपने को सत्ताईस-अट्ठाईस की बना[illegible]

वह एक झूठ बोल रही हो। सुनने वाले की आखो से उसे हर बार लगता था कि उसे उसकी बात पर विश्वास नही आया। तब वह उसे पूरा ब्योरा देने लगती थी कि उसने मैट्रिक किस साल मे किया था, बी०ए० किस साल में और जुगल से जब उसकी शादी हुई, तब वह कितनी दुबली लगा करती थी। "उन दिनो की अपनी फोटो दिखाऊ ?" कहते हुए वह अपनी शादी का एलबम भी निकाल लाती थी।

पर अब तो इसका भी मौका नही आता था क्योकि पिछले दो-तीन साल में यह सवाल उससे बहुत कम पूछा गया था। जुगल के साथ रहते हुए उसकी जिन्दगी बाहर की दुनिया से उत्तरोत्तर कटती गई थी। जुगल को उसके मायके के लोगों से चिढ़ थी, अपने घर के लोगो से चिढ़ थी, पास-पड़ोस के लोगों से चिढ थी, हर आने-जाने वाले से चिढ थी। कभी-कभी तो लगता था कि उस आदमी को सिवाय अपने, हरएक से चिढ है, बल्कि अपने-आप से भी चिढ है। वह सुबह दफ्तर जाता था, तो दफ्तर के लोगों पर बड़बड़ाता हुआ। शाम को र आता था, तो घर के लोगों पर बड़बड़ाता हुआ। जिन्दगी की हर चीज सकी नजर में किसी वजह से गलत थी—और वह अकेला हर गलत चीज को क करने के लिए क्या कर सकता था? 'मेरी तरफ से भाड़ में जाए सब छ—मैं अकेला क्या कर सकता हू ?" ऐसा कुछ कहने के बाद वह अक्सर क लम्बी जमाई लेता था, जिससे मुह के अंधेरे दायरे मे उसकी जबान ऊची ठकर अजान देती सी जान पड़ती थी। जब मुह बन्द हो जाता, तो होंठों के नों तक फैल आई चिपचिपाहट को उसे हाथ और कुहनी के जोड़ से साफ रना पड़ता था। शायद एक यह भी वजह थी जो वह खुलकर जमाई लेने से क्सर अपने को रोक जाती थी। अपना मुह खुलने के साथ ही जुगल का खुला ह सामने नजर आ जाता था।

जुगल का बालो से लदा दुबला शरीर सामने रहने पर उसे उतना परेशान ही करता था जितना परे रहने पर। वह उसे उसके वास्तविक आकार में ही खती थी, पर परे रहने पर वह आकार जैसे काफी बडा होकर उसे चारों तरफ घेर लेता था। शाम को उसके घर आने से लेकर सुबह दफ्तर जाने तक वह दोपहर के इस एकान्त की राह देखती थी। पर दोपहर के अकेलेपन की खीझ से सुबह-शाम की झुंझलाहट से कहीं ज्यादा छा लेने वाली लगती थी। इस

खीझ में जुगल से उसका विरोध उसकी उपस्थिति से कहीं ज्यादा बढ़ जाता था। तब वह प्रतीक्षा करती थी जुगल के लौटकर आने की—क्योंकि सामने के जुगल पर तो वह हावी भी हो सकती थी जबकि इस अनुपस्थित जुगल से वह अपने को बुरी तरह परास्त महसूस करती थी।

बक्सों की तरफ से सुनाई दी खट् की आवाज़ से वह थोड़ा चौंकी, फिर गरदन का पसीना सुखाने के लिए सिर पीछे को झुकाकर थोड़ा और पसर गई। उस घर की सब आवाज़ों से वह अच्छी तरह परिचित थी—बहुत छोटा-सा दायरा था उन आवाज़ों का। बक्सों की तरफ चुहियों के सूराख थे। उधर की हर आवाज़ चुहियों की भूल और उसे मिटाने को उनकी दौड़-धूप से सम्बन्ध रखती थी। एक आवाज़ जो पंखा चलने पर लगातार होती रहती थी, वह थी सामने दीवार के कैलेंडर की। बाहर बरामदे से भी कभी हल्की-सी कांय और परों की फड़फड़ाहट सुनाई दे जाती थी। चार बजे के करीब पानी आने से पहले नल के अन्दर से एक लम्बी सांस-सी खिंचने लगती थी। महीने में एक या दो बार बाहर से डाकिया आवाज़ देता था, "डाक जी!" और खर्र से कोई इनलैंड या पोस्ट-कार्ड अन्दर को सरक आता था।

चिट्ठी लिखने वाले भी दो-एक लोग ही थे। उसकी बड़ी बहन, जुगल का छोटा भाई और मीना, जो साल-भर पहले साथ के घर में रहती थी। तीनों की चिट्ठियों के वही बंधे-बंधाये मज़मून थे जो हर बार लगभग उन्हीं शब्दों में लिखे हुए उन्हें मिल जाते थे। उनका उत्तर भी उसी तरह दे दिया जाता था। हर महीने की खरीदारी में दो इनलैंड और एक पोस्ट-कार्ड उसी तरह शामिल रहते थे जैसे नमक, मिर्च और हल्दी के पैकेट।

एक बहन, एक देवर, एक फ्रेंड—बाहर की इतनी दुनिया भी उन लोगों की वजह से ही बची हुई थी। जैसे उन तीनों की यह साज़िश हो कि महीने में एक बार चिट्ठी ज़रूर लिखेंगे। वरना बाकी सारी दुनिया की तरह यह इतनी-सी दुनिया भी मर जा सकती थी। अगर उन तीनों की चिट्ठियां आना बन्द हो जाता, तो अपनी तरफ से ये लोग शायद कभी उन्हें लिखकर इसकी याद भी न दिलाते। कुछ साल पहले और भी कुछ लोगों की चिट्ठियां आती थीं—कुछ जुगल के दोस्त थे—कुछ और रिश्तेदार थे दोनों तरफ के। मगर धीरे-धीरे न जाने कैसे, उनके सम्बन्ध चुकते गए थे। वह भी एक साज़िश ही थी जैसे

तीन को छोड़कर बाकी सब लोगों ने एक-एक करके लिखना छोड़ दिया था। 'कोई किसी का कुछ नहीं लगता," जुगल उनका जिक्र उठ आने पर कहता था, "ऐसे ही वहम होता है कुछ दिनों का, इन दो-तीन लोगों के साथ भी वहम ही बना हुआ है। जब खत्म हो जाएगा, तब किसी को याद भी नहीं आएगी किसी की···।"

जुगल के ऐसी बात करने पर उसे सब कुछ बहुत खाली और भयानक लगने लगता था—जुगल की चमकती आंखों समेत। गुस्सा भी आता था कि जुगल इतनी आसानी से इस बात को कैसे स्वीकार कर सकता है। वह खुद स्वीकार नहीं कर सकती, इस पर भी गुस्सा आता था। जुगल से शादी होने से पहले उसे दुनिया—कितनी भरी हुई लगती थी! लगता था कि वह अभी इस छोर पर है—उस भरी हुई दुनिया में अभी उसे उतरना है। अपनी तब तक की जिन्दगी उसे बहुत अधूरी लगती थी क्योंकि उसमें 'वास्तविक' कुछ भी नहीं था। जो कुछ था, वह उस आने वाले 'वास्तविक' का हल्का आभास-सा था। कुल जमा चार, छ, आठ या दस दिन जिसमें लगा था कि एक शुरुआत हो सकती है। कुल जमा तीन या चार चेहरे। ···सतीश उसका मौसेरा भाई था, फिर भी जहां-कहीं उसे अकेली पाकर तीन-चार बार उसने जबर्दस्ती उसे चूम लिया था।···हरकृष्ण की शादी में वह जो एक दोस्त आया था उसका, जो शादी की भीड़ में कई जगह उसके साथ सटकर बैठा था।··· मधु का भाई हरीश, जिसने उसके नाम दो-एक पत्र लिखे थे।···बस में रोज साथ जा बैठने वाला वह लड़का, जिसने एक दिन कसकर उसकी जांघ पर चिकुटी काट ली थी।···भूषण जो शादीशुदा होने पर भी उससे कहता था कि वह अपनी पत्नी से तलाक लेकर उससे शादी कर लेगा ···।

ऐसे ही छिटपुट था सब कुछ ···पर कुल मिलाकर कुछ भी नहीं, क्योंकि लगातार कुछ नहीं था। 'लगातार' थी सिर्फ यह जिन्दगी जो आठ साल से जुगल के साथ जी जा रही थी। साथ रहकर सब कुछ से, यहां तक कि एक-दूसरे से भी, खाली होते जाने की जिन्दगी।

वह कुरसी से उठ खड़ी हुई। जैसे कि तय कर लिया हो कि जिन्दगी के इस 'लगातार' को अब अपने से झटक देगी। उठकर सबसे पहले खूटी पर लटकते कपड़ों के पास गई। उन्हें उतारकर उसने फर्श पर पटक दिया। बक्से पर

खीझ में जुगल से उसका विरोध उसकी उपस्थिति से कहीं ज़्यादा बढ़ जाता था। तब वह प्रतीक्षा करती थी जुगल के लौटकर आने की—क्योंकि सामने के जुगल पर तो वह हावी भी हो सकती थी जबकि इस अनुपस्थित जुगल से वह अपने को बुरी तरह परास्त महसूस करती थी।

बक्सों की तरफ से सुनाई दी खट् की आवाज़ से वह थोड़ा चौंकी, फिर गरदन का पसीना सुखाने के लिए सिर पीछे को झुकाकर थोड़ा और पसर गई। उस घर की सब आवाज़ों से वह अच्छी तरह परिचित थी—बहुत छोटा-सा दायरा था उन आवाज़ों का। बक्सों की तरफ चुहियों के सूराख थे। उधर की हर आवाज़ चुहियों की भूल और उसे मिटाने की उनकी दौड़-धूप से सम्बन्ध रखती थी। एक आवाज़ जो पंखा चलने पर लगातार होती रहती थी, वह थी सामने दीवार के कैलेंडर की। बाहर बरामदे से भी कभी हल्की-सी कांय और परों की फड़फड़ाहट सुनाई दे जाती थी। चार बजे के करीब पानी आने से पहले नल के अन्दर से एक लम्बी सांस-सी खिंचने लगती थी। महीने में एक या दो बार बाहर से डाकिया आवाज़ देता था, "डाक जी!" और खर्र से कोई इनलैंड या पोस्ट-कार्ड अन्दर को सरक आता था।

चिट्ठी लिखने वाले भी दो-एक लोग ही थे। उसकी बड़ी बहन, जुगल का छोटा भाई और मीना, जो साल-भर पहले साथ के घर में रहती थी। तीनों की चिट्ठियों के वही बंधे-बंधाये मज़मून थे जो हर बार लगभग उन्हीं शब्दों में लिखे हुए उन्हें मिल जाते थे। उनका उत्तर भी उसी तरह दे दिया जाता था। हर महीने की खरीदारी में दो इनलैंड और एक पोस्ट-कार्ड उसी तरह शामिल रहते थे जैसे नमक, मिर्च और हल्दी के पैकेट।

एक बहन, एक देवर, एक फ्रेंड—बाहर की इतनी दुनिया भी उन लोगों की वजह से ही बची हुई थी। जैसे उन तीनों की यह साजिश हो कि महीने में एक एक बार चिट्ठी जरूर लिखेंगे। वरना बाकी सारी दुनिया की तरह यह इतनी सी दुनिया भी मर जा सकती थी। अगर उन तीनों की चिट्ठियां आना बन्द हो जाता, तो अपनी तरफ से ये लोग शायद कभी उन्हें लिखकर इसकी याद भी न दिलाते। कुछ साल पहले और भी कुछ लोगों की चिट्ठियां आती थीं। कुछ जुगल के दोस्त थे—कुछ और रिश्तेदार थे दोनों तरफ के। मगर धीरे-धीरे न जाने कैसे, उनके सम्बन्ध चुकते गए थे। वह भी एक साजिश ही थी जैसे।

खाली।

तीन को छोड़कर बाकी सब लोगों ने एक-एक करके लिखना छोड़ दिया था। "कोई किसी का कुछ नहीं लगता," जुगल उनका ज़िक्र उठ आने पर कहता था, "ऐसे ही वहम होता है कुछ दिनों का, इन दो-तीन लोगों के साथ भी वहम ही बना हुआ है। जब खत्म हो जाएगा, तब किसी को याद भी नहीं आएगी किसी की···।"

जुगल के ऐसी बात करने पर उसे सब कुछ बहुत खाली और भयानक लगने लगता था—जुगल की चमकती आंखों समेत। गुस्सा भी आता था कि जुगल इतनी आसानी से इस बात को कैसे स्वीकार कर सकता है। वह खुद स्वीकार नहीं कर सकती, इस पर भी गुस्सा आता था। जुगल से शादी होने से पहले उसे दुनिया—कितनी भरी हुई लगती थी ! लगता था कि वह अभी इस छोर पर है—उस भरी हुई दुनिया में अभी उसे उतरना है। अपनी तब तक की जिन्दगी उसे बहुत अधूरी लगती थी क्योंकि उसमें 'वास्तविक' कुछ भी नहीं था। जो कुछ था, वह उस आने वाले 'वास्तविक' का हल्का आभास-सा था। कुल जमा चार, छः, आठ या दस दिन जिसमें लगा था कि एक शुरूआत हो सकती है। कुल जमा तीन या चार चेहरे। ··· सतीश उसका मौसेरा भाई था, फिर भी जहां-कहीं उसे अकेली पाकर तीन-चार बार उसने ज़बर्दस्ती उसे चूम लिया था।···हरकृष्ण की शादी में वह जो एक दोस्त आया था उसका, जो शादी की भीड़ में कई जगह उसके साथ सटकर बैठा था।···मधु का भाई हरीश, जिसने उसके नाम दो-एक पत्र लिखे थे।···बस में रोज साथ जा बैठने वाला वह लड़का, जिसने एक दिन कसकर उसकी जांघ पर चिकुटी काट ली थी।···भूषण जो शादीशुदा होने पर भी उससे कहता था कि वह अपनी पत्नी से तलाक लेकर उससे शादी कर लेगा···।

ऐसे ही छिटपुट था सब कुछ···पर कुल मिलाकर कुछ भी नहीं, क्योंकि लगातार कुछ नहीं था। 'लगातार' थी सिर्फ यह जिन्दगी जो आठ साल से जुगल के साथ जी जा रही थी। साथ रहकर सब कुछ से, यहां तक कि एक-दूसरे से भी, खाली होते जाने की जिन्दगी।

वह कुरसी से उठ खड़ी हुई। जैसे कि तय कर लिया हो कि जिन्दगी के इस 'लगातार' को अब अपने से झटक देगी। उठकर सबसे पहले खूंटी पर लटकते कपड़ों के पास गई। उन्हें उतारकर उसने बक्से पर पटक दिया। बक्से पर

पड़ा उनका ढेर और भी बेहूदा लगा, तो उन्हें ऊपर से हटाकर इस तरह बक्से में ठूंस दिया कि बक्से के ढक्कन में कूबड़-सा निकल आया। फिर दीवार से कैलेण्डर उतारकर गोल किया और पलंग के नीचे दाग दिया। बिस्तर से चादर और गद्दा उतारकर कोने में डाल दिया और कुछ देर नंगे पलंग को देखती रही। उसके बाद उसने आसपास देखा कितना कुछ था कमरे में। जिसे उथल-पुथल किया जा सकता था। बक्से, मेज़, रेडियो, सिलाई की मशीन, चटाइयां, कुरसियां···सब चीजों पर नजर दौड़ा चुकने के बाद आंखें किसी 'और' चीज की तलाश करने लगीं। "और क्या ?" उसने सोचा और इस एहसास से उसका मन उदास हो गया कि इन गिनी-चुनी चीजों के सिवा और कुछ नहीं है जिसे उथल-पुथल कर सकती हो। उदासी के साथ उसे अपने में एक गहरी थकान भी महसूस हुई। उसने फिर अन्दर से उमड़ती जंभाई को रोका। सोचा कि दफ्तर से लौटकर आने पर जुगल को घर में सब कुछ उथल-पुथल मिले, तो उसे कैसा लगेगा ? शायद वह अपना मरी हुई मुर्गी जैसा चेहरा थोड़ा और लटकाकर चुपचाप कमरे को देखता रहेगा। या उससे वजह पूछेगा कि उसने यह सब क्यों किया है, और उसके जवाब न देने पर जोर-जोर से बकझक करने लगेगा। उसके बाद या किवाड़ ज़ोर से बन्द करके कहीं चला जाएगा, या मुंह दीवार की तरफ करके पलंग पर लेट रहेगा। "इसमें नया क्या होगा ?" उसने सोचा और अब खुलकर जंभाई ले ली। फिर जिन चीज़ों को उथल-पुथल करने में इतना समय लगाएगी; उन्हें बाद में समेटना भी तो उसीको होगा···।

वह पलंग के पास से हटकर फिर बरामदे में आ गई। जैसे कि जो कमरे में नहीं हो सकता था, वह बरामदे में हो सकता हो। धूप अब भी पूरे बरामदे और दालान को ढके थी। दालान की पीली मैली दीवार के उस तरफ कोई साइकिल में हवा भर रहा था। शायद साथ के घर का नौकर शिवजीत। हर दूसरे-तीसरे दिन दोपहर को वह आवाज़ सुनाई देती थी···अभी दो-तीन हफ्ते से ही···पर दोपहर के वक्त ही क्यों ? क्या उसकी साइकिल की हवा हमेशा इसी वक्त निकल जाती थी।

उसके मन में आया कि दालान का दरवाज़ा खोलकर एक बार देख ले, पर उसने टाल दिया। उसे इसमें क्या दिलचस्पी है कि किसी की साइकिल की हवा किस वक्त निकली है और क्यों ? वह दालान पार करके गुसलखाने में चली

गया-

गई। वहां उसने नल खोलकर देखा। वही लम्बी सांस भरने की आवाज ''और कुछ नहीं। दोनों बाल्टियाँ भी इस तरह खाली थीं जैसे बिलकुल नयी लाकर वहां रखी गई हों। उसने नल की टोंटी पूरी खोल दी कि पानी आए, तो नीचे की बाल्टी पूरी भर जाए। फिर उस खयाल से कि वक्त से उसने टोंटी बन्द नहीं की तो फिर कहीं पूरा दालान पानी से न भर जाए, उसने उसे पूरा भर लिया और बाहर निकल आई।

इस बार बरामदे से कमरे में दाखिल होते हुए उसने अपने को अलग रख-कर कमरे को देखने की कोशिश की। फर्ज करो कि जुगल दफ्तर से लौटकर आए और कमरे की हर चीज तो अपनी जगह उसी तरह हो, पर वह वहां न हो? वह अब जैसे जुगल के पैरों से कमरे में दाखिल हुई। पर उसे लगा कि जब तक हर चीज बिलकुल पहले की तरह न हो, वह जुगल की नजर से कमरे को नहीं देख सकती। कैलेण्डर पलंग के नीचे जाकर पूरा खुल गया था। उसे उसने उठाकर वापस दीवार पर टांग दिया। गद्दे और चादर को एक बार हल्के हाथों से झाड़ा और फिर पहले की तरह पलंग पर बिछा दिया। जो कपड़े धमेड़ के बक्से में ठुंसे थे, उन्हें निकालकर पहले की तरह खूंटी पर लटका दिया। उसने इतना एहतियात रखा कि न सिर्फ हर कपड़ा बिलकुल पहले की तरह लटकाया जाए, बल्कि उसका साया भी दीवार पर उसी तरह पड़े जैसे कि पहले पड़ रहा था। मन में अच्छी तरह इत्मीनान कर लेने पर कि सब कुछ बिलकुल पहले की तरह हो गया है, वह फिर दहलीज के पास आ गई। अब उसने जुगल की नजर से देखा। कमरा है, सारा सामान है, पर वह नहीं है। इस वक्त ही नहीं इसके बाद भी कभी नहीं है। जुगल के पास पूरा घर है, बेबी है, सब कुछ है'''पर बगैर उसके पूरा घर उसी तरह है, बेबी उसी तरह है'''सोफे के कोने में गुमसुम बैठी हुई है'''सब कुछ उसी तरह है'''पर बगैर उसके। उसे लगा कि यह स्थिति जुगल के लिए सचमुच नयी है। इस नयी स्थिति में जुगल को कैसा लग रहा है? वह घबराया-सा चारों तरफ देख रहा है? उसे ढूंढ रहा है? लोगों से पूछ-ताछ कर रहा है?'''उसके होंठों पर मुस्कराहट आ गई। सचमुच यह कितना चाहेगी कि जुगल को ऐसी घबराहट में देख सके? पर उसकी मुस्कराहट पूरी तरह होंठों पर फैल नहीं सकी। क्योंकि खाली कमरे को जुगल की नजर से देखते हुए उसे घबराहट की जगह हल्की तसल्ली-सी महसूस

हुई। उसे लगा कि यह जानकर कि वह घर में नहीं है और अब कभी नहीं आएगी, जुगल का लटका हुआ चेहरा थोड़ा खिल गया है और उसके होंठों पर वैसी ही मुस्कराहट आ गई है जैसी कि अभी-अभी उसके होंठों पर थी और वह उसे छिपाने की कोशिश कर रहा है। इससे एक झटका-सा लगा। नहीं, वह ऐसा नहीं होने दे सकती···खुद वहां से गायब होकर जुगल को उस तरह मुस्कराते नहीं देख सकती। उसने झट से अपने को भी वापस अपनी जगह पर रख दिया और कमरे से निकल आई। उसके बरामदे में निकलते-निकलते एक हल्की फड़फड़ाहट वहां से उठकर आकाश में चली गई।

उसने जूठी प्यालियां उठाकर रसोई में रख दीं। गुड्डो की किताबें समेट-कर एक तरफ कर दीं। पसीने से शरीर तरबतर हो रहा था, इसलिए गुसलखाने में जाकर फिर एक बार टोंटी खोल दी। नल के अन्दर से कुछ देर वही खखारने की परिचित आवाज़ सुनाई देती रही, फिर एक-एक बूंद पानी नीचे रिसने लगा।

सीमाएं

इतना बड़ा घर था, खाने-पहनने और हर तरह की सुविधा थी, फिर भी उमा के जीवन में बहुत बड़ा अभाव था जिसे कोई चीज़ नहीं भर सकती थी।

उसे लगता था कि वह देखने में सुन्दर नहीं है। वह जब भी शीशे के सामने खड़ी होती तो उसके मन में झुंझलाहट भर आती। उसका मन होता कि उसकी नाक लंबी हो, गाल ज़रा हल्के हों, ठोडी आगे की ओर निकली हो और आँखें थोड़ा और बड़ी हों। परन्तु अब यह परिवर्तन कैसे होता? उसे लगता कि उसके प्राण एक गलत शरीर में फंस गए हैं जिससे निस्तार का कोई मार्ग नहीं, और वह खीझकर शीशे के सामने से हट जाती।

उसकी मां हर रोज़ गीता का पाठ करती थी। वह बैठकर गीता सुना करती थी. कभी मां कथा सुनने जाती तो वह साथ चली जाती थी। रोज़-रोज़ पण्डित की एक ही तरह की कथा होती थी—'नाना प्रकार कर-करके नारद जी कहते भये हे राजन्'···पण्डित जो कुछ सुनाता था, उसमें उसकी ज़रा भी रुचि नहीं रहती थी। उसकी मां कथा सुनते-सुनते ऊंघने लगती थी। वह दरी पर बिखरे हुए फूलों को हाथों में लेकर मसलती रहती थी।

घर में मां ने ठाकुरजी की मूर्ति रख रखी थी जिसकी दोनों समय आरती होती थी। उसके पिता रात को रोटी खाने के बाद चौरासी वैष्णवों की वार्ता में से कोई वार्ता सुनाया करते थे। वार्ता के अतिरिक्त जो चर्चा होती, उसमें सतियों

के चरित्र और दाल-आटे का हिसाब, निराकार की महिमा और सोने-चांदी के भाव, सभी तरह के विषय आ जाते। वह पिता द्वारा दी गई जानकारी पर कई बार आश्चर्य प्रकट करती, पर उस आश्चर्य में उत्साह नहीं होता।

उसे मिडिल पास किए चार साल हो गए थे। तब से अब तक वह उस सन्धि-काल में से ही गुजर रही थी जब सिवा विवाह की प्रतीक्षा करने के जीवन का और कोई ध्येय नहीं होता। माता-पिता जिस दिन भी विवाह कर दें, उस दिन उसे पत्नी बनकर दूसरे घर में चली जाना था। यह महीने-दो महीने में भी संभव हो सकता था, और दो-तीन साल और भी प्रतीक्षा में निकल सकते थे।

उमा कुछ कर नहीं रही थी, फिर भी अपने में व्यस्त थी। बैठी थी, लेट गई। फिर उठकर कमरे में टहलने लगी। फिर खिड़की के पास खड़ी होकर गली की ओर देखने लगी और काफी देर तक देखती रही।

सवेरे रक्षा उसे सरला के व्याह का बुलावा दे गई थी। वह कह गई थी कि वह साढ़े पांच बजे तैयार रहे, वह उसे आकर ले जाएगी। पहले रक्षा ने उसे बताया था कि सरला का किसी लड़के से प्रेम चल रहा है जो उसे चिट्ठी में कविता लिखकर भेजता है और जलती दोपहर में कालेज के गेट के पास उसकी प्रतीक्षा में खड़ा रहता है। आज वह प्रेम फलीभूत होने जा रहा था।

प्रेम···यह शब्द उसे गुदगुदा देता था। राधा और कृष्ण के प्रेम की चर्चा तो रोज़ ही घर में हुआ करती थी। परन्तु उस दिव्य और अलौकिक प्रेम के बखान से वह विभोर नहीं होती थी। परन्तु यह प्रेम···उसकी सहेली का किसी लड़के से प्रेम···यह और चीज़ थी। इस प्रेम की चर्चा होने पर, मलमल जैसे-सा हल्का आवरण स्नायुओं को छू लेता था।

"उम्मी !" मां खिड़की में उसके पास आकर खड़ी हो गई।

उमा ने जरा चौंककर मां की ओर देखा।

"तूने अभी तैयार नहीं होना ?" मां ने पूछा।

"अभी तैयार हो जाऊंगी, ऐसी क्या जल्दी है ?" और उमा की आंखें गली की ओर ही लगी रहीं।

"जाना है तो अब कपड़े-अपड़े बदल ले," मां ने कहा, "बता, साड़ी निकाल दूं कि सूट ?"

"तेरी अपनी कोई मर्जी नहीं ?"

"उसमें मर्जी का क्या है ? जो निकाल दोगी पहन लूंगी।"

उसे अपने शरीर पर साड़ी और सूट दोनों में से कोई चीज अच्छी नहीं लगती थी। कीमती-से-कीमती कपड़े उसके अंगों को छूकर जैसे मुरझा जाते थे। रक्षा सवेरे साधारण खादी के कपड़े पहनकर आई थी, फिर भी बहुत सुन्दर लग रही थी। उमा खिड़की से हटकर शीशे के सामने चली गई। मन में फिर वही झुंझलाहट उठी। आज वह इतने लोगों के बीच जाकर कैसी लगेगी? मां ने सुबह मना कर दिया होता तो कितना अच्छा था? अब भी यदि वह रक्षा से ज्वर या सिर दर्द का बहाना कर दे…?

वह अपने मन की दुर्बलता को तरह-तरह से सहारा दे रही थी। कभी चाहती कि रक्षा उसे लेने आना ही भूल जाए। कभी सोचती कि शायद यह सपना ही हो और आंख खुलने पर उसे लगे कि वह यूं ही डर रही थी। मगर सपना होता तो कहीं से टूटता या बदलता। सुबह से अब तक इतना एकतार सपना कैसे हो सकता था?

मां ने सफेद साटिन का सूट लाकर उसके हाथ में दे दिया। उमा ने उसे शरीर से लगाकर देखा। उसे अच्छा नहीं लगा। मगर उसका नया सूट वही था। उसने सोचा कि एक बार पहनकर देख ले, पहनने में क्या हर्ज है?

सूट की फिटिंग बिलकुल ठीक थी। उसे लगा कि उससे उसके अंगों का भद्दापन और व्यक्त हो आया है। यदि उसकी कमर कुछ पतली और नीचे का हिस्सा जरा भारी होता तो ठीक था। यदि उसकी होश में ही उसका पुनर्जन्म हो जाए और उसे रक्षा जैसा शरीर मिले, तो वह इस सूट में कितनी अच्छी लगे?

मां वह लकड़ी का डिब्बा ले आई जो कभी उसकी फूफी ने उपहार में दिया था। उसमें पाउडर, क्रीम, लिपस्टिक और नेलपालिश, कितनी ही चीजें थीं। उसने उन्हें कई बार सूंघा तो था पर अपने शरीर पर उनके प्रयोग की कल्पना नहीं की थी। उसने मां की ओर देखा। मां मुसकरा रही थी।

"यह किसके लिए लाई हो ?" उमा ने पूछा।

"तेरे लिए और किसके लिए ?" मां बोली, "ब्याह वाले घर नहीं जाएगी ?"

"तो उसके लिए इस सबकी क्या ज़रूरत है ?"
"वैसे जाना लोगों में बुरा लगेगा । घड़ी-दो घड़ी की ही तो बात है।"
"लालाजी ने देख लिया तो···?"
"वे देर से घर आएंगे । तू लौटकर साबुन से मुंह धो लेना ।"
"परन्तु···!"

उसके मन का 'परन्तु' नहीं निकला । पर वह मना भी नहीं कर सकी। उसकी इच्छा न हो, ऐसी बात नहीं थी, पर मन में आशंका भी थी । वह उन चीजों को अनिश्चित-सी देखती रही । मां दूसरे कमरे में चली गई ।

लिपस्टिक उसने होंठों के पास रखकर देखी । फिर मन हुआ कि हल्का-सा रंग चढ़ाकर देख ले । चाहेगी तो पल-भर में तौलिये से पोंछ देगी ।

ज्यों-ज्यों होंठों का रंग बदलने लगा, उसके मन की उत्सुकता बढ़ने लगी। तौलिये से होंठ छिपाए हुए वह जाकर खिड़की के किवाड़ बन्द कर आई। फिर शीशे के सामने आकर वह तौलिये से होंठों को रगड़ने लगी । उससे रंग कुछ फीका तो हो गया पर पूरी तरह नहीं उतरा । फिर तौलिया रखकर उसने पाउडर की डिबिया उठा ली । मन ने प्रेरणा दी कि तौलिया है, पानी है, एक मिनट में चेहरा साफ हो सकता है, और वह पफ से चेहरे पर पाउडर लगाने लगी ।

पफ रखकर जब उसने चेहरे को हाथ से मलना आरम्भ किया तभी सीढ़ियों पर पैरों की खट्-खट् सुनाई दी । इससे पहले कि वह तौलिये में मुंह छिपा पाती, रक्षा दरवाज़ा खोलकर कमरे में आ गई । उमा के लिए अपना आप भारी हो गया ।

"तैयार हो गई, परी रानी ?" रक्षा ने मुस्कराकर पूछा ।

परी रानी शब्द उमा को खटक गया । उसे लगा कि उस शब्द में चुभी हुई चोट है ।

"साढ़े पांच बज गए ?" उसने कुण्ठित स्वर में पूछा ।

"अभी दस-बारह मिनट बाकी हैं," रक्षा ने कहा ।

"मैं समझ रही थी अभी पांच भी नहीं बजे," उमा ने किसी तरह मुस्कराकर कहा । उसकी आंखें रक्षा के शरीर पर स्थिर हो रही थीं । आसमानी साड़ी के साथ हीरे के टॉप्स और सोने की चूड़ियां पहनकर रक्षा बहुत सुन्दर

रही थी।

मा ने अन्दर से पुकारा तो उमा को जैसे वहां से हटने का बहाना मिल गया। अन्दर गई तो मा वह मखमली डिबिया लिए खडी थी जिसमें सोने की जंजीर रखी रहती थी। वह जंजीर मां के ब्याह मे आई थी और उमा के ब्याह मे दी जाने के लिए सदूक मे सभालकर रखी हुई थी। मा ने जंजीर उसके गले मे पहना दी तो उमा को बहुत अजीब लगने लगा। रक्षा उधर आवाज़ दे रही थी इसलिए वह मा के साथ बाहर कमरे में आ गई। उसके बाहर आते ही रक्षा ने चलने की जल्दी मचा दी।

जब वह चलने लगी तो मां ने पीछे से कहा, "रात को मन्दिर में उत्सव भी है। हो सके तो आती हुई दर्शन करती आना।"

वह सीढियो से उतरकर रक्षा के साथ गली मे चलने लगी।

ब्याह वाले घर में पहुचकर रक्षा बहुत जल्दी इधर-उधर लोगों मे उलझ गई। वह यहां से वहा जाती, वहा से उसके पास और उसके पास से और किसी के पास। उमा सोफे के एक कोने में सिमटकर बैठ रही। जब उसकी रक्षा से आंख मिल जाती तो रक्षा मुस्कराकर उसे उत्साहित कर देती। जब रक्षा दूर चली जाती तो उमा बहुत अकेली पडने लगती। वह बत्तियो से जगमगाता हुआ घर उसके लिए बहुत पराया था। वहां फैली हुई महक अपनी दीवारों की गन्ध से बहुत भिन्न थी। खामोश अकेलेपन के स्थान पर चारों ओर खिलखिलाता हुआ शोर सुनाई दे रहा था। वह एक प्रवाह था जिसमे निरन्तर लहरें उठ रही थीं। पर वह लहरो मे लहर नहीं, एक तिनके की तरह थी—अकेली और एक ओर को हटी हुई।

रक्षा कुछ और लडकियों को लिए हुए बाहर से आई और उसने उन्हें उसका परिचय दिया, "यह हमारी उमा रानी है, तुम लोगों की तरह चट नहीं है, बहुत सीधी लडकी है।"

उमा को इस तरह अपना परिचय दिया जाना अच्छा नहीं लगा, फिर भी वह मुस्करा दी। रक्षा दूसरी लडकियों का परिचय कराने लगी, "यह कान्ता है, इन्टर मे पढ़ती है। अभी-अभी इसने कॉलिज के नाटक मे जूलिएट का अभिनय किया था, बहुत अच्छा अभिनय रहा।" यह कंचन है, आजकल कला भवन मे नृत्य सीख रही है।"'और मनोरमा'''यह कॉलिज के किसी भी लड़के को मात

दे सकती है···

परिचय पाकर उमा अपने को उनसे और भी दूर अनुभव करने लगी। उन सबके पास करने के लिए अपनी बातें थीं। 'वह', 'उस दिन,' 'वह बात', आदि संकेतों से वे बरबस हंस देती थीं। उमा के विचार कभी फरश पर अटक जाते, कभी छत से टकराने लगते और कभी सफेद सूट पर आकर सिमट जाते।

रक्षा कान्ता को एक फोटो दिखा रही थी। और कह रही थी कि इस लड़के से ललिता की शादी हो रही है।

"अच्छी लाटरी है !" कान्ता तसवीर हाथ में लेकर बोली, "एक दिन की भी जान-पहचान नहीं, और कल को ये पतिदेव होंगे और ललिता जी 'हमारे वे' कहकर इनकी बात करेंगी—धन्य पतिदेव !"

कान्ता की बात पर और सबके साथ उमा भी हंस दी। पर वह बेमतलब की हंसी थी, उसे हंसने के लिए आन्तरिक गुदगुदी का ज़रा भी अनुभव नहीं हुआ था। उसके स्नायु जैसे जकड़ गए थे। खुलना चाहते थे, लेकिन खुल नहीं पा रहे थे।

बात में से बात निकल रही थी। कभी कोई बात स्पष्ट कही जाती और कभी सांकेतिक भाषा में। सहसा बात बीच में ही छोड़कर रक्षा एक नवयुवक को लक्षित करके बोली, "आइए, भाई साहब ! लाए हैं आप हमारी चीज़ ?"

"भई, माफ कर दो," नवयुवक पास आता हुआ बोला, "तुम्हारी चीज़ मुझसे गुम हो गई।"

"हां, गुम हो गई ! साथ आप नहीं गुम हो गए ?" रक्षा धृष्टता के साथ बोली।

"अपना भी क्या पता है ?" नवयुवक ने कहा, "इंसान को गुम होते देर लगती है ?"

नवयुवक लंबा और दुबला-पतला था और देखने में काफी अच्छा लग रहा था। उमा ने एक नजर देखकर आंखें हटा लीं।

"चलो उधर, सरला बुला रही है," नवयुवक ने फिर रक्षा से कहा।

"उससे कहो, मैं अभी आती हूं," रक्षा बोली।

"चलो भी, अभी आती हूं।" कहकर उसने रक्षा का हाथ पकड़कर खींचा। रक्षा उसके साथ चली गई। कान्ता कंचन को बताने लगी कि उस लड़के का

नाम मोहन है और वह सरला का चचेरा भाई है। एम० ए० फाइनल में पढ़ रहा है। उमा ने इससे अधिक कुछ सुनने की आशा की। पर कान्ता वह बात छोड़कर मनो के फीते की प्रशंसा करने लगी।

मनो का फीता बहुत सुन्दर था। उसके बालों में सोने का क्लिप और नीले रंग के फूल भी बहुत अच्छे लग रहे थे। उसके ब्लाउज का पारदर्शक कपड़ा बिजली के प्रकाश में किरणें छोड़ रहा था। कंचन मनो के कंधे पर झुककर उसके कान में कुछ फुसफुसाने लगी। उमा की आंखें झट दूसरी ओर को हट गईं।

उसके सामने जो दो स्त्रियां बैठी थी, वे उसी की ओर देखकर कोई बात कर रही थी। उमा को लगा कि वे उसीकी बात कर रही हैं—शायद उसके कपड़ो की आलोचना कर रही हैं। उसने बाहें समेट ली और हाथ से गले की जंजीर को सहलाने लगी।

"बाहर चल रही हो?" मनो ने उससे पूछा।

"रक्षा किधर गई है?" यह पूछकर उमा और संकुचित हो गई।

"बाहर ही गई है, अभी देखकर भेजती हूं," कहकर मनो कंचन और कान्ता के साथ उठ खड़ी हुई और वे सब बाहर चली गईं।

उमा फिर बिलकुल अकेली पड़ गई तो उसके मन का बोझ बढने लगा। वहां इतने अपरिचित लोगों की उपस्थिति, चहल-पहल और सजावट, सब कुछ उसे बेगाना लग रहा था। यदि सहसा उसे सुनसान अंधेरे जंगल में पहुंचा दिया जाता, जहां चारों ओर बिलकुल नीरवता होती तो उसे निश्चय ही अब से अच्छा लगता। परन्तु वहां उस चुलबुलाहट, छेड़छाड़ और दौड़-धूप में उसकी तबीयत उखड़ रही थी…।

सहसा कमरा कहकहों से गूंज उठा। उमा चौंक गई। कोई ऐसी बात हुई थी जिस पर सब लोग हंस रहे थे। उसने सोचा कि वह भी हंस दे परन्तु वह चुप रही कि हो सकता है उसी के बारे में कोई बात हुई हो…। लेकिन जब हंसी का स्वर बैठ गया तो उसे अपने चुप रहने के लिए खेद हुआ क्योंकि उसकी चुप्पी सबने लक्षित की थी। वह पश्चात्ताप से भर गई।

बाजों का स्वर दूर से पास आ रहा था, इससे लोगों ने अनुमान लगाया कि बारात आ रही है। कमरे की हलचल बढ़ गई। उमा को उस समय बहुत ही

व्यर्थ-सा प्रतीत होने लगा। उसके कानों में बाजे का स्वर गूंज रहा था और आस-पास कुछ वाक्यों के टुकड़े मंडरा रहे थे।

—आओ बाहर।

—माधवी, ओ माधवी !

—हाय, मेरा लाल रूमाल !

—रोती है तो रोने दे।

—नीना रानी, ले बिस्कुट।

—मौली मिल गई, पण्डित जी ?

—देख, पीछे कितने लोग हैं ?

—रूई, फूल, धूप, मेवा।

—मोहनलाल ! मोहनलाल।

—देखा, कैसा है ?

—कुछ लम्बा लगता है।

—आ मिट्ठू, आ बेटा।

—जान ले ले तू बाबूजी की !

एक-एक करके सब लोग कमरे से बाहर चले गए। कुछ अपने-आप आ से चले गए और कुछ को दूसरे आकर अनुरोध के साथ ले गए। केवल उ अपने अकेलेपन में घिरी हुई वहां बैठी रह गई।

पहले क्षण तो उसे अकेली रह जाने में अच्छा लगा। दूसरे क्षण उपे होने की टीस का अनुभव हुआ। फिर आत्मीयता दीप्त हुई कि उसे भी बा जाना चाहिए। परन्तु अगले क्षण वह इस अनुभूति से मुरझा गई कि बा जाकर भी वह अकेली होगी · उस भीड़ में उसके होने-न होने से कोई अ नहीं पड़ता।

बैंड का स्वर बहुत पास आ गया था और बाहर कोलाहल बढ़ रहा अन्दर उमा के लिए समय के क्षण लम्बे होते जा रहे थे और उसके हृदय धड़कन मद्धम पड़ रही थी। तभी अचानक रक्षा बाहर से वहां आ गई।

"क्यों रानी, रूठ गई है क्या ?" रक्षा ने आते ही पूछा।

"नहीं, मैं···" उमा ने सिरदर्द का बहाना करना चाहा, लेकिन उसकी बात ी होने से पहले ही रक्षा ने उसका हाथ पकड़कर उठा दिया।

"बाहर चल, यहां क्यों बैठी है ?" वह बोली, "बाहर अभी हम लोग दूल्हा के साथ एक तमाशा करने जा रही हैं।"

और कुछ वह सकने से पहले ही उमा बाहर भीड में पहुंच गई। वहां कंचन, मनो और कान्ता मिल गईं। वे सब उसे साथ सरला के कमरे में ले गईं। सरला दुल्हिन के वेश में बिलकुल और ही लग रही थी। फूलदार आरजेट की साड़ी के साथ मोतियों के गहने उसकी गुलाब-सी त्वचा पर बहुत खिल रहे थे। सरला उसकी ओर देखकर मुसकराई तो वह उसके होंठों की सलवटें देखती रह गई। सरला ने साथ कुछ शब्द भी कहे, परन्तु वे शब्द कोलाहल में उसे सुनाई नहीं दिए। वह उत्तर में यूं ही मुसकरा दी हालांकि अपनी वह व्यर्थ की मुसकराहट उसके हृदय में चुभ-सी गई⋯

दो घण्टे बाद जब रक्षा उसे उसके घर की गली के बाहर छोड़कर आगे चली गई तब भी उमा के हृदय में वह चुभता हुआ अनुभव उसी तरह था, जैसे कोई कांटा अन्दर टूटकर रह गया हो। वह अपनी स्थिति का निर्णय नहीं कर पा रही थी। एक तरफ जैसे रक्षा, सरला, कान्ता, कंचन और मनोरमा खिल-खिलाकर हंस रही थीं। दूसरी तरफ वे दीवारें थीं, जिनमें सटी हुई खिड़की के पास सवेरे धूप आती थी और दोपहर ढलते ही अंधेरा होने लगता था और जिनके साये में पूर्णिमा और एकादशी के व्रत रखने होते थे। वह जैसे दोनों ओर से दब रही थी और टूट रही थी।

गली में आकर उसने मन्दिर की घंटियां सुनीं तो उसे मां की बात याद हो आई कि आज मन्दिर में उत्सव है। उसके पैर अनायास मन्दिर की सीढ़ियों की ओर बढ़ गए। वह अन्दर पहुंचकर स्त्रियों की पंक्ति में हाथ बांधकर खड़ी हो गई।

आरती समाप्त होने पर स्तोत्र पाठ आरम्भ हुआ। उमा भी आंखें मूंदकर लय में शब्दों का अनुकरण करने लगी, जय सीतावर वर सुन्दर, जय जग सुख दाता। जय जय जग सुखदाता⋯

परन्तु मुंदी हुई आंखों के आगे रक्षा का खिलखिलाता हुआ चेहरा आ गया, फिर मोहन की बड़ी-बड़ी आंखें, और फिर एक-एक के बाद कितनी ही आकृतियां सामने आने लगीं, व्यंग्यपूर्ण मुसकराहटें, उपेक्षा-भरी भौंहें, सोफे का खाली कोना, जोर-जोर से बजता हुआ बाजा⋯। उसने अपने आपको झटका दिया⋯। दीनबंधु

करुणामय, सब जग के त्राता !···फिर हिलता हुआ पर्दा, पर्दे के पीछे बिजलियां बिजलियों के प्रकाश में रक्षा, मोहन, सरला और दूल्हा के खिलखिलाते हुए चेहरे···।

उमा ने आंखें खोल लीं। स्तोत्र का स्वर चारों ओर गूंज रहा था। बरसों से वह इस स्वर को सुनती आई थी, लेकिन फिर भी आज उसे यह स्वर कुछ अपरिचित-सा लग रहा था। जैसे उसके अन्तर की गहराई में कहीं कुछ थोड़ा बदल गया था।

सहसा उसकी आंखें एक जगह टकराकर लौट आईं। भीड़ में एक नवयुवक उसकी ओर देख रहा था।

उमा के शरीर में लहू का दबाव बढ़ गया। हृदय की गति बहुत तेज़ हो गई। उसकी आंखें केले के खंभों पर से हटकर सजी हुई सामग्री पर से फिसलती हुई फिर वहीं टकराईं। वह अब भी उसी तरह देख रहा था।

उमा के लिए पैरों का संतुलन बनाए रखना कठिन हो गया। उसकी आंखें ठाकुर जी की मूर्ति पर पड़ीं और जल्दी से हट गईं। उसके पास से कुछ लोग चलने लगे तो वह भी साथ चल दी। पुजारी से चरणामृत लेकर वह ड्योढ़ी की ओर बढ़ी। सहसा भीड़ में किसी का हाथ उससे छुआ। उमा ने घूमकर देखा। वही दो आंखें थीं···काली डोरेदार आंखें।

स्तोत्र का स्वर मशीन के घर-घर स्वर जैसा हो गया। आस-पास की भीड़ पत्थर की गोपियां, मिट्टी के आम और कपड़े के तोते, हर चीज़ धुंधली होने लगी। आकाश बोझिल हो गया और धरती समतल नहीं रही। दिशाएं एक दूसरी में मिलकर ओझल होने लगीं। प्रकाश रंग बदलने लगा। वह भीड़ में कुछ यूं हो गई जैसे रुके हुए पानी में अस्त-व्यस्त हाथ-पैर मार रही हो। केवल एक ज्ञान था कि एक हाथ उसे छू रहा है। यहां बाजू के पास, यहां कंधे के पास यहां···।

वह बाहर से आती हुई दो स्त्रियों के साथ उलझ गई। किसी तरह संभल कर जब वह बाहर पहुंची तो उसे हवा का स्पर्श कुछ विचित्र-सा लगा। लहू जो तेजी के साथ नाड़ियों में सरसरा रहा था, वह अब कुछ ठंडा पड़ने लगा तो शरीर में सिहरन भर गई। उसके कंधे के पास उस हाथ का स्पर्श जैसे अभी तक सजीव था।

उसका मन हुआ कि वह जल्दी से घर पहुंच जाए और एक बार खिल-खिला कर हंस दे। वे असाधारण क्षण बिलकुल नयी-सी अनुभूति छोड़ गए थे। यदि रक्षा उस समय उसके पास होती तो वह हंसती हुई उसके गले में बांहें डाल देती और उसे घसीटती हुई अपने साथ घर ले जाती।

उस स्पर्श को एक बार छू लेने के लिए उमा का हाथ अपने कंधे के उसी भाग की ओर उठ गया। वह स्पर्श जैसे वहां अपनी निश्चित छाप छोड़ गया था।

अचानक उसका पैर लड़खड़ा गया और वह रुक गई। उसका शरीर पसीने में भीग गया। अंधेरे गहरे-गहरे रंग फैल गए।

उस स्पर्श का आभास तो वहां था, पर सोने की ज़ंजीर गले में नहीं थी।

वचन को थोड़ी ऊंघ आ गई थी, पर खटका सुनकर वह चौंक गई। इरावती ड्योढ़ी का दरवाज़ा खोल रही थी। चपरासी गणेशन आ गया था। इसका मतलब था कि छः बज चुके थे। वचन के शरीर में ऊब और झुंझलाहट की झुरझुरी भर गई। बिन्नी न रात को घर आया था, न सुबह से अब तक उसने दर्शन दिए थे। इस लड़के की वजह से ही वह यहां परदेस में पड़ी थी, जहां न कोई उसकी ज़बान समझता था, न वह किसी की ज़बान समझती थी। एक इरावती ही थी जिससे वह टूटी-फूटी हिन्दी में बात कर लेती थी, हालांकि उसकी पंजाबी हिन्दी और इरावती की कोंकणी हिन्दी में ज़मीन-आसमान का फर्क था। जब इरावती भी उसका सीधे-सादे शब्दों में कही साधारण-सी बात को न समझ पाती, तो वह बुरी तरह अपनी विवशता के खेद से दब जाती। और इस लड़के को रत्ती चिन्ता नहीं थी कि मां किस मुश्किल से दिन काटती है और किस बेसब्री से इसका इंतज़ार करती है। मन में आया, तो घर आ गए, नहीं तो जहां हुआ पड़ रहे।

एक मादा सूअर अपने छः बच्चों के साथ, जो अभी नौ-नौ इंच से बड़े नहीं हुए थे, कुएं की तरफ से आ रही थी। तूत के बुड्ढे पेड़ के पास पहुंचकर उसने हूंफ्-हुंफ् करते हुए दो-तीन बार नाली को सूंघा और फिर पेड़ के नीचे कीच में लोटने लगी। उसके नन्हे आत्मज उसके उठने की राह देखते हुए वहीं आ

पास मंडराते रहे।

दिन-भर गली में यही सिलसिला चलता था। आसपास के सभी घरों ने सूअर पाल रखे थे। उस बस्ती में लोगों के दो ही धन्धे थे—सूअर पालना और नाजायज शराब निकालना। ये दोनों चीजें उनके रोज के खान-पान में शामिल थीं। बस्ती सान्ता क्रुज हवाई अड्डे से कुल आधा मील के फासले पर थी, पर पुलिस की आंख वहां नहीं पहुंचती थी। मोनिका का बाप जेकब गली में ही भट्ठी लगाता था। वह गली का सबसे बड़ा पियक्कड़ था और अक्सर पीकर गाता हुआ गली में चक्कर लगाया करता था : "ओ दैट आई हैड विंग्ज ऑफ एंजल्स, हियर टु स्प्रेड एण्ड हैवनवर्ड फ्लाऽऽई···।"

उस वक्त भी वह रोज की तरह कुएं के मोड़ के पास से लड़खड़ाता हुआ आ रहा था। उसके लफ्ज बचन की समझ से बाहर थे, मगर उसकी आवाज ही उसके दिल में दहशत पैदा करने के लिए काफी थी। "ओ दैट आई हैड विंग्ज ऑफ एंजल्स, हियर टु स्प्रेड एण्ड हैवनवर्ड फ्लाऽऽई! आई वुड सीक द गेट्स ऑफ सायन, फार बियांड द स्टाऽऽरी स्काऽऽई! हो-हो! हो-हो-होऽऽ! ओ दैट आई हैड विंग्ज ऑफ एंजल्स !"

उसका चौड़ा चौकोर चेहरा वैसे ही भयानक था—अपने ढीले-ढाले काले सूट में वह और भी भयानक दिखाई देता था। चेचक के दागों और झुर्रियों से भरा उसका चेहरा दीमक खाई लकड़ी की तरह जान पड़ता था। दूर से ही उस आदमी की आवाज सुनकर बचन का दिल धड़कने लगता और वह अपना दरवाजा बन्द कर लेती। उसने कितनी ही बार बिन्नी से कहा था कि वह उस बस्ती से मकान बदल ले, मगर वह हर बार यह कहकर टाल देता था कि बम्बई की और किसी बस्ती में बीस रुपये महीने में मकान नहीं मिल सकता। बचन डर के मारे बिन्नी के आने तक लालटेन की लौ भी ज्यादा ऊंची नहीं करती थी। अंधेरा बहुत बोझिल महसूस होता था, मगर वह मन मारे बैठी रहती थी।

लालटेन की चिमनी नीचे से आधी काली हो गई थी। बचन को उसे साफ करने का उत्साह नहीं हुआ। अंधेरा होने लगा, तो उसने जैसे फर्ज पूरा करने के लिए उसे जला दिया और एक अज्ञात देवता के सामने हाथ जोड़ने की प्रक्रिया पूरी करके घुटनों पर बांहें रखे वहीं बैठी रही। सामने मोढ़े के नीचे खाली

का कार्ड रखा था। वह अक्षरों की बनावट से परिचित थी, पर हज़ार आंखें गड़ाकर भी उनका अर्थ नहीं जान सकती थी। बिन्नी के सिवा हिन्दी की चिट्ठी पढ़ने वाला वहां कोई नहीं था, हालांकि बिन्नी से चिट्ठी पढ़वाकर भी उसे सुख नहीं मिलता था। वह लाली की चिट्ठी इस तरह पढ़कर सुनाता था जैसे वह उसके बड़े भाई की चिट्ठी न होकर गली के किसी गैर आदमी के नाम आई किसी नावाकिफ आदमी की चिट्ठी हो। दो मिनट में ही वह पहली सतर से लेकर आखिरी सतर तक सारी चिट्ठी गुन-गुन करके बांच देता था, और फिर उसे कोने में फेंककर इधर-उधर की हांकने लगता था। हर वार उसकी चिट्ठी सुनकर वह कुढ़ जाती थी। पर बिन्नी उसे नाराज़ देखता, तो तरह तरह की बातें बनाकर खुश कर लिया करता था।

उसे खुश होते देर नहीं लगती थी। बिन्नी इतना बड़ा होकर भी जब-तब उससे बच्चों की तरह लाड़ करने लगता था। कभी उसकी गोदी में सिर रखकर लेट जाता, और कभी उसके घुटनों से गाल सहलाने लगता। ऐसे क्षणों में उसका दिल पिघल जाता और वह उसके बालों पर हाथ फेरती हुई उसे छाती से लगा लेती।

"मां, तेरा छोटा लड़का कपूत है न ?" बिन्नी कहता।

"हा-ह", वह हटकने के स्वर में कहती। "तू कपूत है ? तू तो मेरा च[illegible] है," और वह उसका माथा चूम लेती।

लेकिन अक्सर वह बहुत तंग पड़ जाती थी। बहुत-सी रातें ऐसी गुज़रती थीं जब वह घर आता ही नहीं था। अंधेरे घर की छत उसे दबाने को आ[illegible] थी और वह सारी-सारी रात करवटें बदलती रहती थी। ज़रा आंख लग जाती, तो उसे बुरे-बुरे सपने दिखाई देने लगते। इसलिए कई बार कोशिश करके आंखें खुली रखती थी।

और बिन्नी आता, तो अपने में ही उलझा हुआ और व्यस्त-सा। वह सम[illegible] नहीं पाती थी कि उस लड़के को किस चीज़ की व्यस्तता रहती है। जहां तक कमाने का सवाल था, वह महीने में मुश्किल से साठ-सत्तर रुपये घर ला[illegible] था। कभी दस रुपये ज़्यादा ले आता, तो साथ अपनी पचास मांगें सामने र[illegible]

"इस बार मां, दो कमीजें सिल जाएं और एक बढ़िया-सा जूता ले लि[illegible]

उसकी बातों से बचन के होंठों पर रूखी सी मुस्कराहट आ जाती थी

बा-

दस रुपये में ही उसे दुनिया-भर का सामान चाहिए ! और जब वह साठ से भी कम रुपये लाता, तो महीने-भर की बड़ी आसान-सी योजना उसके सामने पेश कर देता—'दूध-सब्ज़ी का नागा। दाल, प्याज़, खुश्क फुलके और बस !'

वह जानती थी कि ये रुपये भी वह ट्यूशन-ऊशन करके ले आता है, वरना सही माने में वह बेकार ही है। उसके दिल में बड़े-बड़े मनसूबे ज़रूर थे और उनका बखान करते वक्त वह छोटा-मोटा भाषण दे डालता था। मगर उन मनसूबों को पूरा करने के लिए जिस दुनिया की ज़रूरत थी, वह दुनिया अभी बनी नहीं थी। वह जोश से उंगलियां नचा-नचाकर कहता, "मां, जब वह दुनिया बन जाएगी, तो तुझे पता चलेगा कि तेरा नालायक बेटा कितना लायक है !"

"चुप कर खसम खाना !" वह प्रशंसा की नज़र से उसे देखती हुई कहती, "बड़ा लायक एक तू ही है।"

"मां, मेरी लियाकत मेरे पेट में बन्द है !" वह हंसता। "जिस तरह हिरन के पेट में कस्तूरी बन्द होती है न, उसी तरह। जिस दिन वह खुलकर सामने आएगी, उस दिन तू अचम्भे से देखती रह जाएगी।"

उसे बिन्नी की बातें सुनकर गर्व होता था। मगर जब वह लड़का बहुत गुमसुम और बन्द-बन्द-सा हो रहता, तो उसे उलझन होने लगती थी।

बिन्नी के साथ उसके अजीब-अजीब दोस्त घर आया करते थे। उन लोगों का शायद कोई ठौर-ठिकाना था ही नहीं, क्योंकि वे आते तो दो-दो दिन वहीं पड़े रहते थे, और खाने-पीने में किसी तरह का शरम-लिहाज़ नहीं बरतते थे। तवे से उतरती रोटी के लिए जब वे आपस में छीना-झपटी करने लगते, तो उसे मन में बहुत खुशी का अनुभव होता। मगर अक्सर उसकी दाल की पतीली खाली हो जाती, और यह देखकर कि उन लोगों की भूख अभी बनी है, उसे घर की गरीबी अपना अपराध प्रतीत होती। ऐसे समय उसकी आंखों में नमी भर जाती और वह ध्यान बटाने के लिए दूसरे काम करने लगती। वे लोग कभी नमकीन रोटियों की फरमाइश करते, तो वह चुपचाप उन्हें बना देती। मगर उन्हें खिलाने का उसका सारा उत्साह तब तक समाप्त हो चुका होता।

और उन लोगों के बहस-मुबाहिसे कभी समाप्त नहीं होते थे। वे सब ज़ोर-ज़ोर से बोलते थे और इस तरह आपस में उलझ जाते थे जैसे उनकी बहस पर ही धरती और ईश्वर का दारोमदार हो। कई बार वे इतने गरम हो जाते थे कि

न ही उसने मुंह से कुछ कहा। कुछ क्षण प्रतीक्षा करने के बाद बिन्नी ने सिर उठाया और कहा, "मा, रोटी···।"

"रोटी आज नही बनी है," वह बोली। "मुझे क्या पता था कि लाटसाहब आज भी घर आएंगे कि नही! रात की रोटी मैंने सवेरे खाई, सवेरे की अब खाई है। मैं क्यों रोज-रोज़ बासी रोटी खाती रहूं? जा, किसी तन्दूर पर जाकर खा ले।"

बिन्नी हंसता हुआ चारपाई से उठ बैठा और मा के मोढ़े के पास चला आया। "यहा तन्दूर है कहा, जहा जाकर खा लू?" वह बोला। "मेरे हिस्से की जो बासी रोटी रखी थी, वह तूने क्यों खाई? निकाल मेरी बासी रोटी···"

और वह मां का घुटना पकड़कर बैठ गया।

"मेरे पेट से निकाल ले अपनी बासी रोटी!" बचन ने आरम्भ किया मीठी झिड़की के रूप में, पर वाक्य समाप्त करते-करते उसकी आखें गीली हो गई!

बिन्नी ने उसकी गीली आंखें नहीं देखी। वह उठकर रोटीवाले डब्बे के पास चला गया और बोला, "डब्बे में रखी होगी, ज़रूर रखी होगी।"

बचन ने उसकी नज़र बचाकर आखें पोंछ ली। बिन्नी रोटीवाला डब्बा लिए उसके सामने आ बैठा। डब्बे में कटोरा-भर दाल के साथ चार रोटियां कपड़े में लपेटकर रखी थी। बिन्नी ने जल्दी से एक रोटी का टुकड़ा तोड़ लिया।

"यह तो ताज़ा रोटी है!" वह टुकड़ा मुह में ठूसे हुए बोला।

"बासी रोटी खाने को मा जो है!" कहकर बचन उठ खड़ी हुई। उसने पानी का गिलास भरकर उसके पास रख दिया। बिन्नी ने एक घूट में गटागट गिलास खाली कर दिया और बोला, "थोड़ा और!"

बचन ने गिलास उठा लिया और सुराही से उसमें पानी डालती हुई बोली, "लाली का कार्ड आया है।"

"अच्छा!" कहकर बिन्नी रोटी खाता रहा। उसने कार्ड के बारे में ज़रा भी जिज्ञासा प्रकट नहीं की। बचन का दिल दुख गया। वह गिलास बिन्नी के आगे रखकर बिना एक शब्द कहे अहाते में चली गई और चारपाई पर दरी डालकर पड़ गई। उसका दिल उछलकर आंखों में आने को हो रहा था, पर वह किसी तरह चेहरा सख्त किए अपने को रोके रही। थोड़ी देर में बिन्नी जूठे पानी से हाथ धोकर मुह पोंछता हुआ अन्दर से आ गया।

"कहां है कार्ड ?" उसने पूछा।

"कहीं नहीं है," बचन ने रुंधे स्वर में कहा और करवट बदल ली।

"अब बता भी दे न, जल्दी से सब समाचार पढ़ दूं।"

"सो जा, मुझे कोई समाचार नहीं पढ़वाने हैं।"

"पढ़वाने क्यों नहीं हैं, मैं अभी सब सुनाता हूं," कहकर बिन्नी अन्दर चला गया और कार्ड ढूंढ़कर ले आया। साथ लालटेन भी उठा लाया। आधे मिनट में उसने सरसरी नज़र से सारा कार्ड पढ़ डाला।

"भैया की तबीयत ठीक नहीं है," वह लालटेन ज़मीन पर रखकर मां की चारपाई के पैताने बैठ गया। बचन सहसा उठकर बैठ गई। बिन्नी ने गुनगुन करके पहली टेढ़ी पंक्ति पढ़ी और फिर उसे सुनाने लगा। लाली ने लिखा था कि उसका ब्लड प्रेशर फिर बढ़ गया था, डॉक्टर ने उसे आराम करने की सलाह दी है। कुसुम की तबीयत अब ठीक है और उसका रंग भी लाली पर आ रहा है। उन्होंने मकान बदल लिया है क्योंकि पहला मकान हवादार नहीं था और बच्चों को वहां से स्कूल जाने में भी दिक्कत होती थी। अब दीवाली पास आ रही है, इसलिए बच्चे दादी मां को बहुत याद करते हैं। उसे गए छः महीने से ऊपर हो गए हैं, इसलिए हो सके, तो दीवाली के दिनों में आकर मिल जाए।

"इसके बाद सबकी नमस्ते है," कहकर बिन्नी ने कार्ड रख दिया।

"यह नहीं लिखा कि किस डॉक्टर का इलाज कर रहा है ?"

"तू जैसे वहां के सब डॉक्टरों को जानती है।"

बिन्नी ने बात अनायास कह दी थी, पर बचन का मन छिल गया। उसके चेहरे पर फिर कठिनता आ गई।

"मैं कल वहां चली जाती हूं," उसने कहा।

"तू चली जाएगी तो मैं यहां अकेला कैसे रहूंगा ? मेरी रोटी···?"

बचन ने वितृष्णा से उसे देखा, जिसका मतलब था कि तेरी रोटी क्या उसकी जान से ज्यादा प्यारी है ?

"तू कौन घर की रोटी पर रहता है," मुंह से उसने इतना ही कहा।

"भैया का ब्लड प्रेशर कोई नयी बीमारी तो है नहीं···" बिन्नी फिर कहने लगा।

"तू ये बातें रहने दे, मैं कल यहाँ से जा रही हूं" बचन ने उसकी बात को बीच में ही काट दिया। कुछ क्षण दोनों खामोश रहे। फिर बिन्नी 'अच्छा' कहकर उसके पास से उठ गया।

अगले दिन सुबह वह 'अभी थोड़ी देर में आता हूं' कहकर घर से चला गया और दोपहर तक लौटकर नहीं आया। बचन का किसी काम में मन नहीं लग रहा था। फिर भी उसने किसी तरह खाना बनाया और घर के सब छोटे-मोटे काम पूरे किए। बिन्नी की चारों-पांचों कमीजें लेकर उनके टूटे बटन भी लगा दिए। फिर अपनी दरी और कपड़े एक जगह इकट्ठे कर लिए। यह तय नहीं था कि वह उस दिन वहां से जा पाएगी या नहीं। बिन्नी सुबह उसे निश्चित कुछ बताकर नहीं गया था। सम्भव था कि वह रात तक घर आए ही नहीं। रात को भी उसके आने का भरोसा नहीं था। यह भी डर था कि बिन्नी के पास किराये लायक पैसे शायद हों ही नहीं। उस दिन महीने की उन्नीस तारीख थी। और उन्नीस तारीख को बिन्नी के पास पैसे कब रहते थे? उस हालत में उसे तीन-चार तारीख तक जाना टालना पड़ेगा। वह यह भी नहीं जानती थी कि दीवाली इस बार किस तारीख को पड़ेगी। वह सोचने लगी कि इस बीच लाली की तबीयत और ज्यादा खराब हो गई, तो? उसे काफी ज्यादा तकलीफ होगी, जो उसने चिट्ठी में लिखा है। नहीं वह चिट्ठी में कभी न लिखता। ऐसे में वह पन्द्रह-बीस दिन वहां से न जा सकी, तो?

तभी बिन्नी आ गया। उसके साथ उसका लम्बे बालों वाला दोस्त शशि भी था, जिसकी गरदन बात करते हुए तोते की तरह हिलती थी। वह उसकी दाल का सबसे बड़ा प्रशंसक था। आते ही दाल की फरमाइश करता था। हमेशा की तरह वे गली में ऊंची आवाज़ में बात करते हुए आए।

"मैं तेरा टिकट ले आया हूं," बिन्नी ने आते ही कहा। "मंगलवाड़ी से शशि को साथ लिया, और वहीं से टिकट भी ले लिया। पर तू तो अभी तैयार ही नहीं हुई…!"

"तैयार क्या होती? तू मुझसे कहकर गया था…?"

"जब रात को तय हो गया था, तो सुबह कहने की क्या जरूरत थी? अच्छा, अब जल्दी से तैयार हो जा। गाड़ी में दो घण्टे हैं। तेरे लिए नकद सवा-बीस खर्च करके आया हूं, वे भी उधार के।"

वचन को बुरा लगा कि वह बाहर के आदमी के सामने ऐसी बात क्यों कह रहा है। क्या वह नहीं जानती थी कि टिकट के लिए उसे रुपये उधार लेने पड़े होंगे ? वह कब चाहती थी कि उसकी वजह से उसपर उधार चढ़े? वह उससे कह देता, तो वह बारह-चौदह दिन बाद चली जाती।

वह कुछ न कहकर अपने कपड़े दरी में लपेटने लगी।

"हट मां, तुझे बिस्तर बांधना आता भी है ?" बिन्नी आगे बढ़ आया। "उल्टी-सीधी रस्सी बांधेगी, और कहीं से बिस्तर को मोटा कर देगी, कहीं से पतला। हट जा, मैं अभी एक मिनट में बांध देता हूं। ऐसा बिस्तर बंधेगा कि वहां पहुंचकर भी तेरा खोलने को जी नहीं करेगा।"

"तू रोटी खा ले, मैं बिस्तर बांध लेती हूं," वचन की आंखें भर आईं।

"रोटी खानेवाला आदमी मैं साथ लाया हूं," वह मां के लपेटे कपड़ों को फिर से फैलाता हुआ बोला। "यह इसीलिए आया है कि तू चली जाएगी, तो तेरे हाथ की दाल फिर इसे कहां मिलेगी ?"

वचन की गीली आंखों में हल्की मुसकराहट भर गई।

"इसे भी खिला दे," वह बोली, "मैं अभी दो फुलके और बना देती हूं।"

"और बनाने की ज़रूरत नहीं। जो बने हैं, वही खा लेंगे।"

"पहले मैं खा लूं, फिर जो बचें वे इसे दे देना," कहकर शशि गरदन उठा कर हंस दिया। बिन्नी बिस्तर बांधता रहा। वह उन दोनों के लिए रोटी डालकर ले आई।

"तैयार !" बिन्नी ने हाथ झाड़े और शशि के साथ खाना खाने में जुट गया।

"मां, अपने लिए रोटी रख लेना और जितनी बचे वह सब हमें ला देना," शशि दाल सुड़कता हुआ बोला। वे दोनों खा चुके, तो वचन ने जल्दी से बरतन समेट दिए।

"अब मां, तू भी जल्दी से खा ले," बिन्नी ने कुल्ला करके हाथ पोंछते हुए कहा।

"मैंने खा ली है।"

"कब खा ली है ?" बिन्नी ने पास जाकर उसके कन्धे पकड़ लिए।

"तेरे आने से पहले।"

"झूठी !"

"सच, मैंने खा ली है।"

"आगे तो कभी इतनी जल्दी नहीं खाती।"

"आज खा ली है।…घर से जाना था न ! तुम दोनों तो भूखे नहीं रहे ?"

"एक-चौथाई भूखे रह गए !" शशि ने डकार लेकर तौलिये से मुह पोछा र उसे खूटी पर टांगकर हंसने लगा।

स्टेशन पर उसे गाड़ी में बिठाकर वे दोनों प्लेटफार्म पर टहलते रहे। रात भी उसने ठीक से नहीं खाया था, इसलिए भूख के मारे उसका सिर चकरा रा था। वह जानती थी कि बिन्नी को पता है उसने कुछ नहीं खाया। इसी-ए उसके मना करने पर भी वह आधा दर्जन केले लेकर रख गया था। वह : बार कह चुकी थी कि उसे भूख नहीं है, इसलिए केले वैसे ही रखे थे। न्नी हठ से कहता, तो वह खा लेती। मगर बिन्नी और शशि टहलते हुए दूर ले गए थे। शायद अब भी उनमें बहस चल रही थी। उसकी समझ में नहीं ता था कि *ये लोग इतनी बहस क्यों करते हैं। हर वक्त बहस, बहस, बहस !* इन का कोई अन्त भी होता है ! जैसे सारी दुनिया के झगड़े इन्हींको निप-ने हों ! फटे हाल रहेंगे, सेहत का ज़रा ध्यान नहीं रखेंगे, और बातें, जैसे निया की दौलत के यही मालिक हों, और उसे बांटने की समस्या इन्हींके सिर र आ पड़ी हो।

वे दोनों प्लेटफार्म के उस सिरे तक होकर वापस आ रहे थे। वह उनके हरे देख रही थी। माथे पर सलवटें डाले वे हाथ हिला-हिलाकर बातें कर हे थे। फिर भी वे बच्चे-से दीखते थे। उस समय शायद वे यह भी भूल गए थे क वे उसे गाड़ी पर छोड़ने आए हैं। सहसा गार्ड की सीटी सुनकर वे उसके ब्बे के पास आ गए। मगर वहां आकर भी उनकी बहस चलती रही—करघे ा काम रुक जाएगा तो कितने आदमी बेकार हो जाएंगे। इसलिए अच्छा यही कि मालिकों से बात चलती रहे और कामगर काम जारी रखें । बचन ोचने लगी कि ये लोग कभी अपने काम के बारे में बात क्यों नहीं करते ? पनी बेकारी की चिन्ता इन्हें क्यों नहीं सताती ?

गाड़ी चलने लगी, तो बिन्नी को जैसे उसके पास होने का होश हुआ और सका हाथ पकड़कर उसने कहा, "अच्छा मां…।"

वचन के होंठों पर रूखी-सी मुसकराहट आ गई। उसने वारी-वारी से उन दोनों के सिर पर हाथ फेरा।

"तू कव लौटकर आएगी ?"

'जव भी तू वुलाएगा।"

गाड़ी ने रफ्तार पकड़ ली। वह देर तक खिड़की से सिर निकालकर उन्हें देखती रही। दोनों हाथ में हाथ डाले गेट की तरफ जा रहे थे। उनकी बहस शायद अब भी चल रही थी।

वचन को घर आए पन्द्रह दिन हो गए थे।

"विन्नी की चिट्ठी नहीं आई ?" उसने लाली के कमरे के वाहर रुककर पूछा। लाली से सवाल पूछने में उसका स्वर थोड़ा दव जाता था। वह बेटा वड़ा होते-होते इतना वड़ा हो गया था कि वह अपने को उससे छोटी महसूस करने लगी थी।

"आ जा, मां," लाली ने कागज़ों से आंखें उठाकर कहा, 'चिट्ठी उसकी आज भी नहीं आई। न जाने इस लड़के को क्या हो गया है!"

"तू काम कर, मैं जा रही हूं," वह वोली, "सिर्फ चिट्ठी का ही पूछने आई थी।"

वह वरामदे से होकर अपने कमरे में आ गई। जानती थी कि लाली का समय कीमती है। वह आधी-आधी रात तक वैठकर दूसरे दिन के केस तैयार करता है। मुवक्किलों की वजह से उसका खाने-पीने का भी समय निश्चित नहीं रहता। इधर छः महीने में उसकी व्यस्तता पहले से कहीं वढ़ गई थी। नए घर में आ जाने से जगह का तो आराम हो गया था, मगर कचहरी पहले से भी दूर हो गई थी। लाली की व्यस्तता के कारण कई वार वह सारा-सारा दिन उससे वात नहीं कर पाती थी। रात को वह वैठक से उठकर आता, तो सीधा अपने सोने के कमरे में चला जाता। दिन-भर की थकान के वाद वह उसके आराम में खलल नहीं डालना चाहती थी। सवेरे वह कुसुम से पूछ लेती कि रात को उसकी तबीयत कैसी रही है। कुसुम संक्षेप में उसे वता देती।

"सोने से पहले उसके सिर में वादाम रोगन डाल दिया कर," वह कुसुम से

रहती ।

"मैं कई बार कहती हूं, पर वे हटवाते ही नहीं," कुसुम जैसे रटा-रटाया उत्तर दे देती ।

"मुझे बुला लिया कर, मैं आकर डाल दिया करूंगी ।"

"डालने को नौकर है, पर वे डलवाते ही नहीं ।"

वह जानती थी कि सिर में बादाम रोगन डलवाने के लिए लाली को किस तरह राजी किया जा सकता है । मगर कुसुम अपने को लाली की ज्यादा अन्तरंग समझती थी, और उसकी मुश्किलों से सहमति प्रकट करती हुई भी करती वही थी जो उसके अपने मन में होता था । कुसुम जिस शिष्टता और कोमलता से बात करती थी, उससे बचन को लगता था कि वह उस घर में केवल मेहमान है । दिन-भर उसके करने के लिए वहां कोई काम नहीं होता था । खाना बनाने के लिए एक नौकर था, ऊपर का काम करने के लिए दूसरा । उनके काम की देख-भाल के लिए कुसुम थी । बचन जब भी कोई काम करने के लिए बढ़ती, तो कुसुम झट उसे मना कर देती—नौकर के रहते अपने हाथ से काम करने की क्या जरूरत है ? यही बात लाली भी कह देता था—मां, तू काम करेगी, तो घर में दो-दो नौकर किस लिए हैं ?

बचन सोचती कि काम करने के लिए नौकर हैं, और देख-भाल के लिए कुसुम है, फिर घर में उसका होना किसलिए है ? सवेरे पांच बजे से रात के दस बजे तक वह क्या करे ? कुछ दिन पहले जब वह आई ही थी, तो बच्चे उसे घेरे रहते थे । उन्हें दादी मां से हजारों बातें कहनी और शिकायतें करनी थीं । मगर चार दिन में ही उनके लिए उसकी नवीनता समाप्त हो गई थी । उनकी अपनी छोटी-छोटी व्यस्तताएं थीं, जिनमें उनका समय बंटा हुआ था । अब भी कभी-कभी कुमुद जरूर उसके पास आ जाती थी, और उसके कमरे में एक तरफ खामोश खेलती रहती थी । उसे शायद दादी मां इसलिए अच्छी लगती थी कि उसकी मां दोनों भाइयों को ज्यादा प्यार करती थी···।

बचन कमरे में आकर चारपाई पर लेट गई । मन ताने-बाने बुनने लगा । सिन्धी ने अभी तक चिट्ठी क्यों नहीं लिखी ? वहां अंधेरे घर में इस वक्त वह अकेला सोया होगा । रोटी का जाने उसने क्या प्रबन्ध किया है ? उसने चलते वक्त उससे पूछा भी नहीं कि वह पीछे कैसे रहेगा, कहां से रोटी

से ही वह क्यों जी चुराती थी ?

कुछ देर बरामदे में खड़ी होकर वह सूर्योदय के सुनहले रंग को देखती रही। क्षितिज के एक कोने से दूसरे कोने तक झिलमिलाती नयी धूप धीरे-धीरे निखार पर आ रही थी। लगता था जैसे मिट्टी में बन्द उजाला फूटकर बाहर आने के लिए संघर्ष कर रहा हो। धूप की बढ़ती झलक से हर क्षण ऐसा ही आभास होता था। उसने बरामदे से उतरकर पूजा के लिए कुछ गेंदे के फूल चुन लिए और रसोईघर में चली गई।

रंगी स्टोव से केतली उतारकर चायदानी में पानी डाल रहा था। उसने अपने आंचल के फूल आले में डाल दिए। रंगी ट्रे उठाकर चलने लगा, तो उसने ट्रे उसके हाथ से ले ली।

"रहने दे, मैं ले जाती हूं।" और वह ट्रे लिए हुए लाली के कमरे की तरफ चल दी।

"मां जी, आप रहने दीजिए, साहब मुझ पर नाराज होंगे," रंगी ने पीछे से संकोच के साथ कहा।

"इसमें उसके नाराज होने की क्या बात है ? मैं तेरे कहने से थोड़े ही ले जा रही हूं ?" और वह थोड़ा थामकर लाली के कमरे में चली गई।

लाली कम्बल ओढ़कर बिस्तर में बैठा था। कुसुम अभी सो रही थी। लाली के हाथ में कुछ कागज थे जिन्हें वह ध्यान से पढ़ रहा था। उसने यह नहीं देखा कि चाय लेकर मां आई है। बचन ने ट्रे मेज पर रख प्याली में चाय बनाई और उसके पास ले गई। लाली ने जब चाय के लिए हाथ बढ़ाया, तो उसने आश्चर्य से देखा कि प्याली लिए मां खड़ी है।

"मां, तू ?" उसने आश्चर्य के साथ कहा।

बचन ने प्याली उसके हाथ में दे दी। उसने पहली बार ठीक से देखा कि लाली के बाल कनपटियों के पास से कितने सफेद हो गए हैं। चश्मा उतार देने से उसकी आंखों के नीचे गहरे गड्ढे नजर आ रहे थे। लाली ने कागज रखकर चश्मा लगा लिया।

"रंगी और नारायण क्या कर रहे हैं ?" उसने पूछा।

"नारायण दूध लाने गया है," वह बोली, "रंगी रसोईघर में है।"

"तो उससे नहीं आया जाता था ? तू सुबह-सुबह उठकर चाय लाए,

"कोई खास बात तो नहीं थी ?"

"नहीं, बात कुछ नहीं थी। नौकर चाय ला रहा था, मैंने कहा, मैं ले जाती हूं।"

लाली की आंखें कागजों पर झुक गईं। कुसुम चाय के हल्के घूंट भर रही थी। बचन चलने के लिए तैयार होकर भी खड़ी रही।

"एक बात सोचती थी," वह कहने लगी।

लाली ने कागज़ फिर रख दिए।

"हां, हां, बता न।"

"इतने दिन हो गए, बिन्नी की चिट्ठी नहीं आई ...।"

"मैं अब उससे कोई गिला नहीं करता,' लाली कुछ चिढ़े हुए स्वर में बोला, "गफलत की भी एक हद होती है। इस लड़के का घरवालों से जैसे कोई रिश्ता ही नहीं है।"

बचन चुप रही।

"यहां रहकर बी० ए० कर लेता तो कुछ बन-बना जाता। मगर हर बात में चलना तो उसे अपनी ही मर्जी से है। अब साहब जिन्दगी-भर यहां-वहां रहेंगे और आवारागर्दी किया करेंगे।"

बचन की आंखें भर आईं। उसने कोशिश की कि आंसू आंखों में ही सूख जाएं, पर वह नहीं हुआ तो उसने पल्ले से आंखें पोंछ लीं।

"यह लड़का न जाने कब अपना होश रखना सीखेगा ? ...अपने शरीर की भी तो फिक्र नहीं करता। यहां रहकर मैं ही जो थोड़ा-बहुत देख लेती थी, सो देख लेती थी। कभी-कभी सोचती हूं कि वहां उसके पास ही रहूं, तो ठीक है।" और वह निर्णय सुनने के भाव से लाली की तरफ देखने लगी। लाली गम्भीर हो गया। बोला कुछ नहीं।

"मैं कहती हूं, मेरी आंखों के सामने रहेगा, तो मुझे पता चलता रहेगा कि क्या करता है, क्या नहीं करता...।" बचन के स्वर में थोड़ी याचना भी आ गई।

"मां जी का यहां दिल नहीं लगता," कुसुम ने प्याली रखते हुए कहा। पल-भर लाली की आंखें उससे मिली रहीं।

"अभी तो मां, तू आई ही है," वह बोला, "पन्द्रह दिन बाद दिवाली

है···।"

"मेरा बच्चों को छोड़कर जाने को मन करता है ? मैं तो वैसे ही बा कर रही थी," वह फिर से चलने के लिए तैयार होकर बोली, "पता नहीं रोटी भी ठीक से खाता है या नहीं ।"

कुसुम उठकर रंगी को आवाज़ देती हुई बाहर चली गई ।

"तू जाना ही चाहती है तो बात दूसरी है ।" लाली के चेहरे पर कुछ उकताहट-सी आ गई ।

"नहीं, जाने की बात नहीं है, मैं तो वैसे ही कह रही थी···।"

वह बाहर की तरफ देखने लगी कि फिर से आंसू न टपकने लगें ।

"जाने को मन हो रहा है, चली जा । नहीं, खामखाह यहां चिन्ता से परेशान रहेगी ।"

बचन कुछ पल खामोश रही । लाली अपनी उंगलियां मसलता रहा ।

"किस गाड़ी से चली जाऊं ?"

"रात की गाड़ी ठीक रहती है । उसमें भीड़ कम होती है ।"

"तेरी तबीयत की मुझे फिक्र रहेगी···।"

"मेरी तबीयत अब ठीक ही है ।"

"तू चिट्ठी लिखता रहेगा न ?"

"हां । मैं नहीं लिख सकूंगा, तो कुसुम लिख देगी ।"

"अच्छा···!"

रात को गाड़ी में उसे अच्छी जगह मिल गई । जनाने डिब्बे में उसके अलावा दो ही और सवारियां थीं । कुसुम नारायण को साथ लेकर उसे छोड़ने आई थी । लाली मुवक्किलों की वजह से नहीं आ पाया था । गाड़ी के चलने तक कुसुम उसके पास बैठकर उससे बातें करती रही । कहती रही कि दादी के पीछे बच्चे उदास हो जाएंगे, तीन-चार दिन घर सूना-सूना लगेगा, और कि वह रास्ते के लिए खाना बनवाकर साथ ले जाती, तो अच्छा था । गाड़ी ने सीटी दी, तो कुसुम प्लेटफार्म पर उतर गई ।

"जाते ही चिट्ठी लिखिएगा," उसने कहा ।

"तुम लाली की तबीयत का पता देती रहना," बचन ने कहा। सहसा उसे लाली के सफेद बालों का ध्यान हो आया।

"रात को उसे देर-देर तक मत पढ़ने देना, और उससे कहना कि दूसरे-तीसरे दिन सिर में बादाम रोगन ज़रूर डलवा लिया करे।"

कुसुम ने सिर हिला दिया। गाड़ी चलने लगी, तो उसने हाथ जोड़ दिए।

प्लेटफार्म पीछे रह गया, तो बचन आकाश की तरफ देखने लगी। उसके मन में फिर एक शून्य-सा भरने लगा। आकाश में वही नक्षत्र चमक रहे थे। बचन स्थिर नजर से उन्हें देखती रही। वह जहां जा रही थी, उस घर का नक्शा धीरे-धीरे उसकी आंखों के सामने तैरने लगा। नीची छतवाला टूटा-फूटा कमरा, मादा सूअर और उसके बच्चों की हुंफ्-हुंफ् और कुएं की तरफ से आती मोटी, भद्दी, फटी-सी आवाज़—ओ ईंडाई है ड्रिंवंजो-फेंजल···अंधेरा, एकान्त, बिन्नी, शशि और उसके दोस्त, बहसें और दाल-रोटी के लिए उन लोगों की छीना-झपटी···।

उसकी आंखें भर आईं। आकाश में चमकते नक्षत्र धुंधले पड़ गए।

आंखें पोंछ लीं। नक्षत्र फिर चमकने लगे।

ग्लास-टैंक

मीठे पानी की मछलियां, कार्प परिवार की। देर-देर तक मैं उन्हें देखती रहती। शोभा पीछे से आकर चौंका देती। कहती, "गोल्डफिश, फिर गोल्डफिश को देख रही है।"

मैं जानती थी वह मेरे भूरे-सुनहरे बालों की वजह से ऐसा कहती है। मुसकराकर मैं टैंक के पास से हट जाती। जाहिर करना चाहती कि ऐसे ही चलते-चलते रुक गई थी। शोभा सोफे पर पास बिठा लेती और मेरे बालों को सहलाने लगती। कहती, "यह ग्लास-टैंक तेरे साथ भेज दें ?"

मुझे उसकी उंगलियों का स्पर्श अच्छा लगता। उन्हें हाथ में लेकर देखती। पतली-पतली उंगलियां। नसें नीली लकीरों की तरह उभरी हुई। मन होता उनके पोरों को होंठों से छू लूं, मगर अपने को रोक जाती। डर लगता वह फिर कह देगी, "यू सेंसुअस गर्ल। तू जिन्दगी में निभा कैसे पाएगी ?"

उसकी उंगलियों में उंगलियां उलझाए बैठी रहती। सोफे के खुरदरे रेशों पर वे और भी मुलायम लगतीं। सेवार में तैरती नन्ही-नन्ही मछलियां। अपना हाथ जाल की तरह लगता। कांपती मछलियां जाल में सिमट आतीं। कुछ देर कांपने के बाद निर्जीव पड़ जातीं या हल्के-से प्रयत्न से छूट जातीं।

"तू खुश रहेगी न ?" मैं ऐसे पूछती जैसे मेरे पूछने पर कुछ निर्भर करता हो। वह एक कोमल हंसी हंस देती—ऐसी जो वही हंस सकती है। हवा में जरा

बिखर जाते। मेरे अन्दर भी झर्रें बिखरने लगते। मैं उसका हाथ फिर हाथ में थम लेती। चुपचाप उसकी आंखों में देखती रहती। मगर कहीं सेवार नजर न आती। उसकी आंखें भी हंसती-सी लगती।

"खुशी तो मन की होती है," वह कहती, "अपने में ही पानी होती है। बाहर से कौन किसी को खुशी दे सकता है?"

बहुत स्वाभाविक ढंग से वह कहती मगर मुझे लगता झूठ बोल रही है। उसकी मुसकराती आंखें भीगी-सी लगती। एक ठण्डी सिहरन मेरी उंगलियों में उतर आती।

"वह आजकल कहां है?" मैं पूछ लेती।

"कौन?" वह फिर झूठ बोलती।

"वही सजीव।"

"क्या पता?" उसकी भौंहों के नीचे एक हल्की-सी छाया कांप जाती, पर उसे आंखों में न आने देती—"साल-भर पहले कलकत्ता में था।"

"इधर उसकी चिट्ठी नहीं आई?"

"नहीं।"

"तूने भी नहीं लिखी?"

"ना।"

"क्यों?"

वह हाथ छुड़ा लेती। दरवाज़े की तरफ देखती, जैसे कोई उधर से आ रहा हो। फिर अपनी कलाई में कांच की चूड़ियों को ठीक करती। आंखें मुदने को होतीं, पर उन्हें प्रयत्न से खोल लेती। मुझे लगता उसके होंठों पर हल्की-हल्की सलवटें पड़ गई हैं। 'वे सब बेवकूफी की बातें थीं,' वह कहती।

मन होता उसके होंठों और आंखों को अपने बहुत पास ले आऊं। उसकी ठोड़ी पर ठोड़ी रखकर पूछूं, "तुझे विश्वास है न तू खुश रहेगी?" मगर मैं कुछ न कहकर चुपचाप उसे देखती रहती। वह मुसकराती और कोई धुन गुनगुनाने लगती। फिर एकाएक उठ जाती। "ममी मुझे ढूंढ रही होंगी," वह कहती, "अभी आती हूं। तू तब तक मछलियों से जी बहला। आंटी से कहना पड़ेगा कि अब तेरे लिए भी···"

"मेरे लिए क्या?"

हैं ? या कभी शीशे से इसलिए टकराती हैं कि शीशा टूट जाए ? शीशे के और आरम के बन्धन से ये मुक्त हो जाएं ? शोभा कहती, "देख, यह ओरिण्डा है, यह फैन टेल है। साल में एक बार, बसन्त में, ये अण्डे देती हैं। कुल दो साल इनकी जिन्दगी होती है। हवा इन्हें एरिएटर से दी जाती है। पानी का टेम्परेचर पचास से साठ डिग्री फैरनहाइट के बीच रखना होता है। खाने को इन्हें ड्राई फूड देते हैं, ब्रेन भी खा लेती हैं। नीचे समुद्री घास इसलिए बिछाई जाती है कि···"

मेरे मुंह से उसास निकल पड़ती। जाने वह उसका भी क्या मतलब लेती थी। मेरे कन्धे पर हाथ रखकर मुझे अपने साथ सटाए कुछ सोचती-सी खड़ी रहती। उस दिन उसने पूछ लिया, "सच-सच बता, तू किसी से प्यार नहीं करती ?"

मुझे शैतानी सूझी, कहा, "करती हूं।"

उसने मेरे गाल अपने हाथ में ले लिए और मेरी आंखों में देखते हुए पूछा, "किससे ?"

मैं हंस दी। कहा, "तुझसे, ममा से, मछलियों से।"

उसके नाखून गालों में चुभने लगे। वह उसी तरह मुझे देखती रही। मैंने होंठ काटकर पूछा, "और तू ?"

उसने हाथ हटाए, तो लगा जैसे मेरे गाल छील दिए हों। उसकी भौंहों के नीचे वही हल्की-सी छाया कांप गई—पर उतनी हल्की नहीं। फुसफुसाने की तरह उसने कहा "किसी से भी नहीं।"

जाने क्यों मेरा मन भर आया। चाहा उससे कहूं शादी न करे। पर कहा नहीं गया। सोचा, उसकी शादी से एक रोज पहले ऐसी बात कहना अच्छा नहीं होगा···

३

सुभाष को आना था, लौटने की जल्दी थी। बार-बार ममा को याद दिलाती थी कि वृहस्पति को जरूर चल देना है—ऐसा न हो कि वह आए और हम घर पर न हों। ममा सुनकर व्यस्त हो उठती। सुभाष को आने के लिए लिखा खुद उन्होंने ही था। बचपन से उसे जानती थीं। जब उसके पिता की मृत्यु हुई, कुछ दिनों के लिए उसे अपने यहां ले आई थीं। वह तब छोटा नहीं था।

कभी-कभी उनकी भौंहें तन जातीं और अपनी उकताहट छिपाने के लिए वह उठ जाते। मैं ममा से पूछ लेती, "ममी, ये चिट्ठी तो लिख देते हैं, हमारे यहां कभी आते क्यों नहीं ?"

'कोई हो तो आए !" बीरे कहता।

ममा बिगड़ उठतीं। उन्हें लगता बीरे अपशकुन की बात कह रहा है। बीरे हंसता हुआ लॉजिक झाड़ने लगता है। "ममी, किसी चीज के होने का सबूत है···"

"वह चीज नहीं, आदमी है।" लगता, ममा उसके मुंह पर चपत मार देंगी। मैं बांह पकड़कर बीरे को एक दूसरे कमरे में ले जाती। कहती, "बीरे, तू इतना बड़ा होकर ममी को तंग क्यों करता है ?"

बीरे मुसकराता रहता, जैसे डाट या प्यार का उसपर कोई असर ही न होता हो। कहता, "उन्हें चिढ़ाने में मुझे मजा आता है।"

"और वह जो रोती हैं···।"

"इसीलिए तो चिढ़ाता हूं कि रोने की जगह हंसने लगें।"

दो साल हुए ममा सुभाष के ब्याह की खबर लाई थीं। ट्यूमर के इलाज के लिए दिल्ली गई थीं तो अचानक उससे भेंट हो गई थी। छुट्टी में वह अपनी पत्नी के साथ वहां आया हुआ था। ममा ने उसकी पत्नी को दूर से देखा था। वह दूकान के अन्दर शॉपिंग कर रही थी। सुभाष ने उन्हें मिलाने का उत्साह नहीं दिखाया, व्यस्तता दिखाते हुए झट-से विदा ले ली। कहा, पत्र लिखेगा। ममा बहुत बुरा मन लेकर आईं। बोलीं, सुभाष अब वह सुभाष नहीं रहा, बिलकुल और ही गया है। शरीर पहले से भर गया है जरूर, मगर आंखों के नीचे स्याही उतर आई है। बातचीत का लहजा भी बदल गया है। खोया-खोया उसी तरह लगता है, मगर वह खुलापन नहीं है जो पहले था। कहीं अपने अन्दर रुका हुआ, बंधा हुआ-सा लगता है। ममा के पूछने पर कि उसने ब्याह की खबर क्यों नहीं दी, वह बात को टाल गया। एक ही छोटा-सा उत्तर सब बातों का उसने दिया—पत्र लिखेगा।

ममा कई दिन उस बात को नहीं भूल पाईं। ट्यूमर से ज्यादा वह चीज उन्हें सालती रही। सुभाष—वह सुभाष जिसे वह जानती थीं, जिसे वह घर लाई थीं, जिसे वह पत्र लिखा करती थीं, जिसकी वह बातें किया करती थीं,

व्हिस्की पी। खूब घुल-मिलकर बातें करते रहे। पहले कमरे में दोनों अकेले थे, फिर उन्होंने ममा को भी बुला लिया। ममा पत्थर की मूर्ति-सी बीच में जा बैठीं। पानी या पापड़ देने के लिए मैं बीच-बीच में अन्दर जाती थी। मुझे देखकर उन्होंने कहा, "यह बिलकुल वैसी नहीं लगती जैसी उन दिनों कुन्तल लगा करती थी? इतने साल न बीत गए होते, और मैं बाहर कहीं इसे देखता, तो यही सोचता कि···"

मुझे अच्छा लगा। ममा उन दिनों की अपनी तसवीरों में बहुत सुन्दर लगती थीं। मैं ममा से कहा भी करती थी। मैं भी उन-जैसी लगती हूँ, यह मुझसे पहले किसी ने नहीं कहा था।

एक बार अन्दर गई, तो वह किन्हीं डॉक्टर शम्भुनाथ का ज़िक्र कर रहे थे। कह रहे थे, 'पार्टीशन में डॉक्टर शम्भुनाथ का सारा खानदान तबाह हो गया—एक लड़के को छोड़कर। जिस दिन एक मुसलमान ने केस देखकर लौटते हुए डॉक्टर शम्भुनाथ को छुरा घोंपकर मारा···'

ममा किन्नी को सुलाने के बहाने उठ आईं। किन्नी पहले से सो गई थी। मगर ममा लौटकर नहीं गईं। गुमसुम-सी चारपाई की पायती पर बैठी रहीं। मैंने पास जाकर कहा, "ममा!" तो ऐसे चौंक गईं जैसे अचानक कील पर पैर आ गया हो।

खाने के वक्त फिर वही ज़िक्र उठ आया। वह कह रहे थे, "शम्भुनाथ का लड़का भी खास तरक्की नहीं कर सका। बीवी के मरने के बाद शम्भुनाथ ने किस तरह उसे पाला था! कैसा लाल और गलगोदना बच्चा था। इधर उसका भी एक एक्सीडेंट हो गया है···"

"सुभाष का एक्सीडेंट हुआ है?" ममा, जो बात को अनसुनी कर रही थीं, सहसा बोल उठीं। डैडी ने खाली डूंगा मुझे दे दिया कि और मीट ले आऊं। उनके चेहरे से मुझे लगा जैसे यह बात पूछकर ममा ने कोई अपराध किया हो।

मीट लेकर गई, तो ममा रुआसी हो रही थीं। वे सज्जन बता रहे थे, "सुना है घर में कुछ ऐसा ही सिलसिला चल रहा था। असलियत क्या है, पता नहीं, यह कैसे कहा जा सकता है? लोग कई तरह की बातें करते हैं। पर उसके एक खास दोस्त ने मुझे बताया कि वह जान-बूझकर ही चलती मोटर के नीचे···"

बहुत जिद करती है, मैं नहीं करती थी। ज़रा-सी बात हो, वह चीख-चीखकर सारा घर सिर पर उठा लेती है। आठ साल की होकर पांच साल के बच्चों की तरह रोती-रूठती है। ममा उसके लाड मानती भी हैं। कहती हैं यह उनकी अपनी ज़रूरत है। और कोई छोटा बच्चा नहीं है, एक वही है जिससे वह जी बहला सकती हैं। मुझे अच्छा नहीं लगता। किन्नी डॉल की तरह प्यारी लगती है। फिर भी सोचती हूं बड़ी होकर भी डॉल ही बनी रही तो ? कॉन्वेंट में एक ऐसी लड़की हमारे साथ पढ़ती थी। नाम भी था डॉली। उसकी आदतों से सब को चिढ़ होती थी, मुझे खास तौर से। अच्छे-भले हाथ-पैर, तन्दुरुस्त शरीर, और घूम रहे हैं डॉल बने। छिः !

पर ममा नहीं मानतीं। वहम करने लगती हैं। मन में शायद सोचती हैं कि मैं किन्नी से ईर्ष्या करती हूं—मैं भी और बीरे भी, क्योंकि बीरे किन्नी के गाल मसलकर उसे रुला देता है। उसकी कापियां, पेंसिलें छीनकर छिपा देता है। मैं उसे बिना नहाए नाश्ता नहीं देती। अपने से कंघी करने को कहती हूं। ममा ताना दे देती हैं, तो बुरा लगता है। कई बार वह कह देती हैं, "तुम लोगों के वक्त हालात अच्छे थे। तुम्हें कॉन्वेंट में पढ़ा दिया, सब-कुछ कर दिया, इस बेचारी के लिए क्या कर पाती हूं ?" मन में खीझ उठती है, पर चुप रह जाती हूं। कई बार बात ज़बान तक आकर लौट जाती है। मैं जो एम० ए० करना चाहती थी, वह ? डरती हूं ममा रोने लगेंगी। दिन में किसी-न-किसी से कोई बात हो जाती है जिससे वह रो देती हैं। मैं जान-बूझकर कारण बनना नहीं चाहती।

सुभाष की गाड़ी रात को देर से पहुंची। बीरे लाने के लिए स्टेशन पर गया था। हम लोगों ने उम्मीद लगभग छोड़ दी थी। दो बार उसने प्रोग्राम बदला था। हम लोग घर की सफाइयां कर रहे होते कि तार आ जाता : "चार दिन के लिए अम्बाला चला आया हूं, हफ्ते तक आऊंगा।" फिर, "काम से दिल्ली रुकना है, दूसरा तार दूंगा।" मुझे बहुत उलझन होती, गुस्सा भी आता। उससे ज्यादा अपने पर और ममा पर। शोभा की शादी के बाद हम लोग एक दिन भी वहां नहीं रुकीं, पहली गाड़ी से चली आईं। आकर कमरे ठीक करने में बाहें दुखाती रहीं और आप हैं कि अम्बाला जा रहे हैं, दिल्ली रुक रहे हैं। उस

दिन तार मिला, "पंजाब मेल से आ रहा हूं ।" तो मैंने ममा से कह दिया कि
मैं घर ठीक नहीं करूंगी । मेरी तरफ से कोई आए, न आए । वीरे कह रहा था,
"ज़रूरत भी नहीं है । अभी दूसरा तार आ जाएगा ।" दूसरा तार तो नहीं
आया, पर वीरे को एक वार स्टेशन जाकर लौटना ज़रूर पड़ा । पंजाब मेल उस
दिन छः घंटे लेट थी ।

ममा को बुरा न लगे, इसलिए घर मैंने ठीक कर दिया, मगर खुद सोते
चली गई । डैडी भी अपने कमरे में जाकर सो गए थे । ममा किन्नी को सुलाकर
मेरे पास आकर लेट गईं । शायद मुझे जगाए रखने के लिए । मैं कुनमुनाकर
कहती रही कि ममी, अब सो जाने दो, हालांकि नींद आई नहीं थी । ममा ने
वहुत दिनों वाद वच्चों की तरह मुझे दुलारा । मेरे गाल चूमती रहीं । मुंह में
कितना कुछ वुदवुदाती रहीं—"मेरी रानी वच्ची···अच्छी वच्ची·· मेरी रानी
मां···अच्छी मां ··!" मुझे गुदगुदी-सी लगी और मैं उठकर वैठ गई । "यह
"क्या कह रही हो, ममी ?" ममा ने जैसे सुना नहीं । आंखें मूंदकर पड़ी रहीं
केवल एक उसांस उनके मुंह से निकल पड़ी ।

घोड़े की टापों और घुघरुओं की आवाज से ही मुझे लग गया था कि
तांगा सुभाष को लेकर आ रहा है । और कई तांगे सड़क से गुजरे थे, म
उनकी आवाज से ऐसा नहीं लगा था । शायद इसलिए कि यह आवाज सुनाई
तव दी जव सचमुच आंखों में नींद भर आई थी । आंखें खोलकर सचेत हुई ।
तो वीरे दरवाज़ा खटखटा रहा था । वह साइकिल से आया था । ममा जल्दी से
उठकर दरवाज़ा खोलने चली गईं ।

अजीव-सा लग रहा था मुझे । वैठक में जाने से पहले कुछ देर पर्दे के पीछे
रुकी रही । जैसे ऊंचे पुल से दरिया में डाइव करना हो । कॉन्वेंट के दिनों में
वहुत वोल्ड थी । किसी के भी सामने वेझिझक चली जाती थी । हरेक से
वेझिझक वात कर लेती थी । संकोच में दिखावट लगती थी । मगर उस समय
न जाने क्यों मन में सकोच भर आया ।

संकोच शायद अपनी कल्पना का था । उस नाम के एक आदमी को पहले
से जान रखा था—सुनी-सुनाई वातों से । कितने ही क्षण उस आदमी के साथ
जिए भी थे—ममा की डवडवाई आंखों में देखते हुए । उसकी एक तसवीर मन
में वनी थी जो डर था, अव टूटने जा रही है । कोई भी आदमी क्या वैसा हो

सकता है जैसा हम सोचकर उसे जानते हैं ? वैसा होता, तो पर्दा उठाने पर मैं एक लम्बे ऊँचे आदमी को सामने देखती, जिसके बाल बिखरे होते, दाढ़ी बढ़ी होती और जो मुझे देखते ही कहता,"ब्राउन कैट, तू तो अब सचमुच लडकी नजर आने लगी।"

मगर जिसे देखा वह मझले कद का गोरा आदमी था। इस तरह खडा था जैसे कठघरे में बयान देने आया हो। माथे पर घाव का गहरा निशान था। कमीज़ का कॉलर नीचे से उधडा था जिसमे वह उसे हाथ से पकडे था। डैडी से वह रहा था, "मैंने नही सोचा था गाड़ी इतनी देर से पहुँचेगी। ऐसे गलत वक्त आकर आप सबकी नीद खराब की ···"

मैंने हाथ जोड़े, तो परेशान-सी मुसकराहट के साथ उसने सिर हिला दिया। मुह से कुछ नहीं कहा। पूछा भी नही, यह नीरू है ?

आधी रात बिना सोए निकल गई। डैडी भी ड्रेसिंग गाउन में सिकुडकर बैठे रहे। मैंने दो बार कॉफी बनाकर दी। वीरे किचन मे आकर मुझसे कहता, "एक प्याली में नमक डाल दे ! मीठी कॉफी ऐसे आदमी को अच्छी नहीं लगती।"

"तूने तो सारी जिन्दगी ऐसे आदमियों के साथ ही गुज़ारी है न !" मैं उसे हटाती कि भाप उसकी या मेरी उगलियो से न छू जाए।

"सारी न सही, तुझसे तो ज्यादा गुजारी है।" वह उंगली से मेरे केतली वाले हाथ पर गुदगुदी करने लगता, "स्टेशन से अकेला साथ आया हूं।"

"हट जा, केतली गिर जाएगी," मैं उसे झिड़क देती। वीरे मुह बनाकर उस कमरे मे चला जाता। कहता, "देखिए साहब, और बातें बाद में कीजिएगा, पहले इस लडकी को थोड़ी तमीज सिखाइए। बडे भाई की यह इज्जत करना नहीं जानती। इससे साल-भर बड़ा हूं, मगर मुझे ऐसे झिडक देती है जैसे अभी सेवण्ड स्टैंडर्ड मे पढ़ता हूं। कह रही थी कि आप कॉफी मे चीनी की जगह नमक पीते हैं। मैंने मना किया तो मुझ पर बिगडने लगी।'

वीरे न होता तो शायद वह बिलकुल भी न खुल पाता। कभी वीरे कालेज का कोई किस्सा सुनाने लगता, कभी बताने लगता कि उसने स्टेशन पर उसे पहचाना। "ये गाडी से उतरकर इधर-उधर देख रहे हैं, और मैं बिलकुल पास खड़ा मुसकरा रहा हूं। देख रहा हू कि कब ये निराश होकर च०

ठीक से नहीं उठती···डॉक्टरों का कहना है उसमें पाच-छ· महीने लगेंगे। उसके बाद भी पूरी तरह शायद ही ठीक हो।

मुझे तब भी लग रहा था कि वह अन्दर ही कही डूबा है। उसके होंठ रह-रहकर किसी और ही विचार से काप जाते है। मन हो रहा था, उससे वे सब बातें न पूछी जाएं, उसे चुपचाप सो जाने दिया जाए। उसका बिस्तर बिछा था, उसी पर वह बैठा था। सहसा मुझे लगा कि तकिए का गिलाफ ठीक नही है, बीच से मिला हुआ है। चढाते वक्त ध्यान नही गया था। मैं चुपचाप तकिया उठाकर गिलाफ बदलने ले गई।

दूसरा धुला हुआ गिलाफ नही मिला। सारे खाने-ट्रक छान डाले। एक कोरा गिलाफ था, कढा हुआ; उन दिनो का, जब नयी-नयी कढाई सीखने लगी थी। आखिर वही चढाकर तकिया बाहर ले आई।

आकर देखा, तो उसका चेहरा बदला हुआ लगा। माथे पर शिकन थे और सिगरेट के छोटे-से टुकड़े से वह जल्दी-जल्दी कश खीच रहा था।

ममा का चेहरा फक हो रहा था। डैडी बहुत गम्भीर होकर सुन रहे थे। वह एक-एक शब्द को जैसे चबा रहा था, "··· नहीं तो·· नहीं तो मेरे हाथो उसकी हत्या हो जाती···यह नही कि मैं समझता नही था।···उसने मुझसे कह दिया होता, तो बात दूसरी थी···हर इन्सान को अपनी जिन्दगी चुनने का अधिकार है ·· मगर इस तरह···मुझे उससे ज्यादा अपने से नफरत हो रही थी···"

ममा ने गहरी नजर से मुझे देखा कि मैं वहा से चली जाऊं। मगर मैं बदस्तूर बनी रही, जैसे इशारा समझा ही न हो। पैरों मे चुनचुनाहट महसूस हो रही थी। मन हो रहा था कि उन्हें दरी से खुजलाने लगू। पुलोवर के नीचे बगलों मे पसीना आ रहा था। सोचने लगी कि सुबह नहाई थी या नहीं। पर नहाई तो थी···

कमरे मे खामोशी छा गई थी। बीरे ऐसे आंखें झपक रहा था जैसे अचानक उन पर तेज रोशनी आ पड़ी हो। होंठ उसके खुले थे। डैडी ड्रेसिंग गाउन के अन्दर से अपनी बाह को सहला रहे थे। ममा काले शाल में ऐसे आगे को झुक रही थी जैसे कभी-कभी ट्यूमर के दर्द के मारे झुक जाया करती थीं।

बाहर भी खामोशी थी। खिड़की के शीशों में से आती हवा पर्दे से टकराकर लौट जाती थी।

तभी डैडी ने घड़ी की तरफ देखा और उठ खड़े हुए "अब तो जाना चाहिए," उन्होंने कहा, "तीन बज रहे हैं।"

सुबह जो चेहरा देखा, उसने मुझे और चौंका दिया। बढ़ी हुई दाढ़ी, पहले से सांवला पड़ा हुआ रंग··एक हाथ से अपने घुंघराले बालों की गांठें सुलझाता हुआ वह अखबार पढ़ रहा था।

"आपके लिए चाय ले आऊं ?" पहली बार मैंने उससे सीधे कुछ पूछा।

"हां-हां," उसने कहा और अखबार से नज़र उठाकर मेरी तरफ देखा। मैं कई क्षण उसकी आंखों का सामना किए रही। विश्वास नहीं था कि वह दूसरी बार इस तरह मेरी तरफ देखेगा।

"रात को हम लोगों ने खामखाह आपको जगाए रखा," मैंने कहा, "आज रात को ठीक से सोइएगा।"

उसके होंठों पर ऐसी मुसकराहट आई जैसे उससे मजाक किया गया हो। "गाड़ी में खूब गहरी नींद आती है न।" उसने कहा।

"आप आज चले जाएंगे ?"

उसने सिर हिलाया, "एक दिन के लिए भी मुश्किल से आ पाया हूं।"

"वहां जरूरी काम है ?"

"बहुत ज़रूरी नहीं, लेकिन काम है। पहली नौकरी छोड़ दी है, दूसरी के लिए कोशिश करनी है।"

"एक दिन बाद जाकर कोशिश नहीं की जा सकती ?" एकाएक मुझे लगा कि मैं यह सब क्यों कह रही हूं। डैडी सुनेंगे तो क्या सोचेंगे।

"परसों एक जगह इण्टरव्यू है," उसने कहा।

"वह तो परसों है न। कल तो नहीं···" और मैं बाहर चली आई, उसकी आंखों में और देखने का साहस नहीं हुआ।

वह बात भी उसने कही जो मैंने चाहा था वह कहे। दोपहर को खाने के बाद किन्नी को गोद में लिए हुए उसने कहा, "उन दिनों नीरू इससे छोटी थी, नहीं ? बिलकुल ब्राउन कैट लगती थी। ऐसे खामोश रहती थी, जैसे मुंह में जबान हो न हो।"

"मैं भी तो खामोश रहती हूं," किन्नी मचल उठी, "मैं कहां बोलती हूं ?"

उसने किन्नी को पेट के बल गोद में लिटा लिया और उसकी पीठ थप-

थपथपाने लगा। मैंने सोचा था किन्नी इस पर शोर मचाएगी, हाथ-पैर पटकेगी। मगर वह बिलकुल गुमसुम होकर पड़ रही। मैं देखती रही कि कैसे उसके हाथ पीठ को थपथपाते हुए ऊपर जाते हैं, फिर नीचे आते हैं, कमर के पास हल्की-सी गुदगुदी करते हैं, और कूल्हे पर चपत लगाकर फिर सिर की तरफ लौट जाते हैं। हममें से कोई किन्नी से इस तरह प्यार करता, तो वह उसे नोचने को हो जाती। सुभाष के हाथ रुके तो उसने झुककर किन्नी के बालों को चूम लिया। कहा, "सचमुच तू बहुत खामोश लड़की है।" किन्नी उसी तरह पड़ी-पड़ी हँसी। और भी कितनी देर वह उसकी पीठ सहलाता रहा। बीच-बीच में उसकी आँखें मुझसे मिल जातीं। मुझे लगता जैसे वह दूर कहीं बियाबान में देख रहा हो। मुझे अपना-आप भी अपने से दूर बियाबान में खोया-सा लगता। यह भी लगता कि मैं आँखों से कह रही हूँ कि जिसे तुम सहला रहे हो, वह ब्राउन कैट नहीं है। ब्राउन कैट मैं हूँ। मैं यहाँ से दूर अँधेरे में खड़ी हूँ। चाह रही हूँ कि कोई आकर मुझे देख ले और गोद में उठा ले।

डैडी दिन-भर घर में रहे, काम पर नहीं गए। इस कमरे से उस कमरे में, उस कमरे से इस कमरे में जाते-आते रहे। बहुत दिनों से उन्होंने सिगार पीना छोड़ रखा था, उस दिन पुराने डिब्बे में से सिगार निकालकर पीते रहे। दो-एक बार उन्होंने उससे बात चलाने की कोशिश भी की, "जहाँ तक अस्तित्व का प्रश्न है···" मगर बात आगे नहीं बढ़ी। उसने जैसे कुछ और सोचते हुए उनकी बात का समर्थन कर दिया। डैडी ने हरेक से एक-एक बार कहा, "आज सिगार पी रहा हूँ तो अच्छा लग रहा है। मुझे इसका टेस्ट ही भूल गया था।" शाम को वीरे उसे घुमाने ले गया। ममा उस वक्त मन्दिर जा रही थी। मैं भी उन लोगों के साथ बाहर निकली। रोज वीरे और मैं घूमने जाते हैं, सोचा आज भी साथ जाऊँगी। डैडी सिगार के धुएँ में घिरे बैठक में अकेले बैठे थे। मुझे बाहर निकलते देखकर बोले, "तू भी जा रही है, नीरू?"

मेरी ज़बान अटक गई। किसी तरह कहा, "ममा के साथ मन्दिर जा रही हूँ।" ड्राने से बाहर आकर ममा के साथ ही मुड़ भी गई। रास्ते-भर सोचती रही कि क्यों नहीं कह सकी कि वीरे के साथ घूमने जा रही हूँ? कह देती, तो क्या डैडी जाने से मना कर देते?

वीरे लौटकर आया तो बहुत उत्साहित था। कह रहा था, "मैं आपको पढ़ने के लिए भेजूंगा, आप पढ़कर लौटा दीजिएगा। बट इट इज़ एंटायरली बिटवीन यू एण्ड मी।" दोनों बैठक में थे। मेरे आते ही वीरे चुप कर गया, जैसे उसकी चोरी पकड़ी गई हो। फिर मुझसे बोला, "तेरे लिए, नीरू, आज एक वॉल पाइन्ट देखकर आया हूं। तू कितने दिनों से कह रही थी। कल जाऊंगा तो लेता आऊंगा। या तू मेरे साथ चलना।"

सोचा, यह मुझे रिश्वत दे रहा है···पर किस बात की ?

वीरे अपना माउथ आर्गन ले आया। एक के बाद एक धुन बजाने लगा। "दिस इज़ माई फ्रेंड्स फैवरिट···" एक धुन सुना चुकने के बाद उसने कहा। पर सुभाष उस वक्त मेरी तरफ देख रहा था।

"आप समझ रहे हैं न ?" वीरे को लगा, सुभाष ने उसका मतलब नहीं समझा, "वही फ्रेंड जिसका मैंने ज़िक्र किया था। माई ओनली फ्रेंड।"

मैं चाह रही थी कि कोई और भी उससे कहे कि वह एक दिन और रुक जाए। मगर किसी ने नहीं कहा, ममा ने भी नहीं। मन्दिर से आकर शायद डैडी से उनकी कुछ बात हो गई थी। मैं उस वक्त रात के लिए कतलियां बना रही थी। सब लोग कहते थे कि मैं कतलियां अच्छी बनाती हूं। पर मुझे लग रहा था कि आज अच्छी नहीं बनेंगी। जल जाएंगी, या कच्ची रह जाएंगी। तभी ममा डैडी के पास से उठकर आईं। नल के पास जाकर उन्होंने मुंह धोया। एक घूंट पानी पिया और तौलिया ढूंढती चली गईं।

खाना खिलाते हुए मैंने उससे पूछा, "कतलियां अच्छी बनी हैं ?"

वह चौंक गया उसी तरह जैसे ममा बताती थीं। आधी खाई कतली प्लेट से उठाता हुआ बोला, "अभी बताता हूं···"

खाना खाने के बाद वह सामान बांधने लगा। सूटकेस में चीजें भर रहा था, तो मैं पास चली गई। "मुझे बता दीजिए, मैं रख देती हूं," मैंने कहा।

"हां ··अच्छा।" कहकर वह सूटकेस के पास से हट गया।

"कैसे रखना है, बता दीजिए ?"

"कैसे भी रख दो। एक बार कुछ निकालूंगा, तो सब-कुछ फिर उलट जाएगा।"

"मैंने सुबह कुछ बात कही थी···" मेरी आवाज़ सहसा बैठ गई।

"क्या बात ?"

"रुकने की बात···"

"हां, रुक तो जाता, मगर···"

बीरे नींबू उछालता हुआ आ गया। "आप कह रहे थे, जी घबरा रहा है," वह बोला, "यह नींबू ले लीजिए। रास्ते में काम आएगा। एक कागज में नमक-मिर्च भी आपको दे देता हूं। इस लड़की के हाथ का खाना खाकर आदमी की तबीयत वैसे ही खराब हो जाती है।"

मैं चुपचाप चीजें सूटकेस में भरती रही। वह बीरे के साथ डैडी के कमरे में चला गया।

उसने चलने की बात कही, तो मुझे लगा जैसे कपड़े उतारकर किसी ने मुझे ठण्डे पानी में धकेल दिया हो। डैडी सिगार का टुकड़ा प्याली में बुझा रहे थे। वह डैडी के पास चारपाई पर बैठा था। ममा, बीरे और मैं सामने कुर्सियों पर थे। बिन्नी कुछ देर रोकर डैडी की चारपाई पर ही सो गई थी। सोने से पहले चिल्ला रही थी, "हम फिर शोभा जिज्जी की शादी में जाएंगे। हमें वहां से जल्दी क्यों ले आई थीं ? वहां हम पप्पू के साथ खेलते थे। यहां सब लोग बातें करते हैं, हम किसके साथ खेलें !"

सोई हुई बिन्नी प्यारी लग रही थी। मैं सोचने लगी—जब मैं उतनी बड़ी थी, तब मैं कैसी लगती थी ?

वह चलने के लिए उठ खड़ा हुआ। उठते हुए उसने बिन्नी के बालों को सहला दिया। फिर एक बार भरी-भरी नजर से मुझे देख लिया। मुझे लगा, मैं नहीं, मेरे अन्दर कोई और चीज है जो सिहर गई है।

तांगा खड़ा था। बीरे पहले से ले आया था। हम सब निकलकर अहाते में आ गए। बीरे ने साइकिल संभाल ली।

"इन्टरव्यू का पता देना," वह तांगे की पिछली सीट पर बैठ गया, तो ममा ने कहा।

उसने सिर हिलाया और हाथ जोड़ दिए।

मैं हाथ नहीं जोड़ सकी। चुपचाप उसे देखती रही। तांगा मोड़ पर पहुंचा, तो लगा कि उसने फिर एक बार उसी नजर से मुझे देखा है।

ममा बरामदे में खड़ी अपने आंसू पोंछ रही थीं। डैडी अन्दर चले गए थे।

छोटी-सी चीज़

यह नन्हे यशवीर के जीवन में एक ऐतिहासिक परिवर्तन था कि उसे अपने मैदानी शहर से छः हज़ार फ़ुट ऊँचे पहाड़ पर ले आया गया और घर के एक-तार जीवन से निकालकर राबर्ट्सन पब्लिक स्कूल के खुले अपरिचित वातावरण में छोड़ दिया गया।

स्कूल में देखने और सीखने की कई चीज़ें थीं। पहली चीज़ जो उसने सीखी, वह थी हर काले गाउनवाले मास्टर को देखकर हाथ पीठ-पीछे करके कहना, 'गुड आफ़्टरनून, सर!' जब शब्द उसने ठीक से ज़बान पर चढ़ा लिए, तो उसे लगा कि उसने जो सीखा है गलत है क्योंकि और लड़के अब 'गुड आफ़्टरनून' नहीं 'गुड ईवनिंग' कह रहे थे। उसने अपने को सुधारा और अब उन नये शब्दों को कहने का अभ्यास करने लगा।

शब्द उसने अच्छी तरह रट लिए। रात को हाउस-मास्टर मिस्टर बर्टन ने उसके पलंग के पास आकर उसे थपथपाया, तो अपने होनहार होने का परिचय देने के लिए उसने उत्साह के साथ कहा, "गुड ईवनिंग, सर!" कमरे के और लड़के ठठाकर हंस दिए, तो उसे लगा कि शायद इस बार जो चीज़ उसने सीखी है, वह गलत है। उसे ठीक चीज़ भी आती है, यह बताने के लिए उसने अपने को सुधारकर फिर कहा, "गुड आफ़्टरनून, सर!" मगर लड़के इस बार भी हंस दिए, तो उसने शरमिन्दा होकर सिर-मुंह कम्बल में ढांप लिया। मिस्टर

वर्टन ने उसके मुंह से कम्वल हटाकर उसके गाल पर हल्की-सी चपत लगाई और दूसरे लड़कों से अंग्रेज़ी में कुछ कहकर कमरे से चले गए।

सवेरे उठने पर यशवीर ने निश्चय किया कि विना पूरी जानकारी हासिल किए वह कोई भी वात मुंह से नहीं निकालेगा। वहां के खान-पान को लेकर भी उसके मन में कई तरह की शंकाएं थीं। खाने की मेज़ के पास खड़े होकर एक मास्टर के कहे कुछ शव्द सुनना, 'आमेन' कहना और फिर खाने वैठना—यह सव कुछ उसने कल भी देखा था और उसे वहुत अजीव लगा था। प्लेट के तीन तरफ कांटे, छुरियां और चम्मच रखने का रहस्य भी उसकी समझ में नहीं आया था। यह भी नहीं कि चावल चम्मच से खाने की जगह सव लोग कांटे से क्यों खा रहे हैं। सुवह नाश्ते के वक्त भी उसने वे तीनों चीज़ें उसी तरह रखी देखीं, तो इस नतीजे पर पहुंचा कि शायद वे इस वात का संकेत देने के लिए हैं कि प्लेट को उतनी ही सीमा में रखना चाहिए। वरना दूध-दलिये के साथ उन चीज़ों का किसी भी तरह का सीधा सम्वन्ध उसकी समझ से वाहर था।

मगर थोड़ी देर में जव अण्डे-टोस्ट की प्लेटें सामने आ गईं तो यह समस्या सुलझ गई। उसे वताया गया कि वह सव उसे भी हाथ से नहीं छुरी-कांटे से खाना होगा। कल उसे किसी ने इसके लिए नहीं टोका था। उसने थोड़ी देर उन दोनों औज़ारों के साथ संघर्ष करने के वाद उन्हें वापस अपनी प्लेट के दाएं रख दिया और कुछ देर चुपचाप अण्डों की फैली हुई ज़र्दी को देखता वैठा रहा। तभी एक वैरा आकर वह विस्कुटों का डिव्वा उसके सामने रख गया जो उसके वीवी-वाऊजी जाते समय उसके लिए मिस्टर वर्टन को दे गए थे। डिव्वा खोलकर उसने दो विस्कुट उसमें से निकाले, डव्वे के पतले कागज़ को ठीक किया और विस्कुट प्लेट में रखकर आसपास देखा कि कहीं वे भी तो उसे छुरी-कांटे से नहीं खाने पड़ेंगे। तभी उसके साथ वैठे लड़के ने अपने जैम के डव्वे से चम्मच-भर जैम निकालकर उसके विस्कुटों पर लगा दिया और कहा, "इसके साथ खाओ।"

यशवीर ने कुछ संशय और सन्देह के साथ लड़के की तरफ देखा। फिर अपने दो विस्कुटों में से एक उठाकर उस लड़के की तरफ वढ़ा दिया और कहा, "तुम मेरा एक विस्कुट ले लो।"

"मुझे नहीं चाहिए," लड़का उपेक्षा के साथ वोला और अपने टोस्ट पर जैम लगाकर खाता रहा। यशवीर को वुरा लगा कि अपना जैम तो उसने बिना

द्वे उसे दे दिया और उसका बिस्कुट वह कहने पर भी नहीं ले रहा। उसने एक बिस्कुट उठाकर ज़बर्दस्ती उस लड़के की प्लेट में रख दिया।

"मुझे नहीं चाहिए," उस लड़के ने बिना उसकी तरफ देखे फिर सरसरी तौर पर कहा।

"तुमने मुझे अपना जैम क्यों दिया था?" यशवीर शिकायत-भरी चुनौती के स्वर में बोला और अपनी प्लेट उसने सरका ली जिससे वह लड़का बिस्कुट वापस उसकी प्लेट में न रख दे।

उस लड़के ने अब कुछ नहीं कहा। अपना टोस्ट खाकर वह जैम का डब्बा लिये हुए उठा और दूसरी टेबल के एक बड़े लड़के के पास जाकर थोड़ा जैम उसे दे आया। यशवीर के मन में ईर्ष्या भर आई। उसने अपना बिस्कुटों का डब्बा उठाया और उसी लड़के के पास जाकर बोला, "इसमें से एक बिस्कुट ले लो।"

"मुझे नहीं चाहिए," उस लड़के ने भी उसी उपेक्षा के साथ कहा।

"एक ले लो," यशवीर ने अनुरोध किया। बिना बिस्कुट दिए लौट जाने में उसकी हार थी।

उस लड़के ने डब्बे में हाथ डालने से पहले डब्बे का पतला कागज आधा फाड़ दिया। यशवीर ने किसी तरह अपने पर काबू पाकर उसकी यह हिमाकत सह ली। फिर हाथ डालकर उस लड़के ने पूरे डब्बे का हुलिया बिगाड़ दिया। जब उसका हाथ बाहर निकला, तो उसमें पाँच-छः बिस्कुट थे। अपने बिस्कुटों के साथ यह ज़्यादती यशवीर से सही नहीं गई। उसने झट-से उस लड़के का हाथ पकड़ लिया और रुआँसे स्वर में खीझकर कहा, "इतने नहीं, एक।"

"एक?" उस लड़के ने आँखें चढ़ाकर यशवीर को देखा।

यशवीर ने सिर हिलाया और वह आती नाक को अन्दर सुड़क लिया।

उस लड़के ने अपने हाथ को ज़रा-सा भींचा और सारे बिस्कुट चूरा करके वापस डब्बे में डाल दिए। साथ कहा, "जाओ।"

यशवीर किसी तरह आँसू रोकता हुआ अपनी जगह पर लौट आया।

नाश्ते के बाद भी उसे कितनी ही देर रुलाई आती रही और वह कोशिश से अपने आँसुओं को रोकता रहा। जिस समय इन्सपेक्शन की घण्टी बजी, वह अभी तैयार नहीं हुआ था। और कपड़े जैसे उसे बताया गया था, वैसे उसने पहन लिए थे, पर टाई उससे नहीं बंध रही थी। गाँठ तो किसी तरह उसने

कमरे से निकलते हुए राधा की कुहनी उससे छू गई। बाहर आकर व बोली, "आपका, भक्ति-दर्शन मेरी समझ में नहीं आया। रविवार को फि उलझूंगी। आइएगा न ?"

बाबू मोतीलाल बीच में ही बोले, "आएगा क्यों नहीं ? होटल के बिल भरने से घर में चाय-पानी क्या बुरा है। क्यों ?"

सिर हिलाकर वह चल पड़ा। मन में उत्सुकता जाग आई। यह नयी-सी घनिष्ठता क्यों ? बाबू मोतीलाल कब से तो जानते हैं। पर परिचय दूर से अभिवादन तक का ही रहा है। आज कोई विशेष परिवर्तन नहीं आ गया पहेली में पुरस्कार नहीं पाया, लाटरी नहीं निकली, वसीयत नहीं मिली, घुड़ दौड़ नहीं जीती। फिर ? ऐसा क्यों ?

कंधे से पकड़कर मोहन ने हिलाया। कहा, "यह गिलास रखा है—पी इसे। और मंगाएं ? किस दुनिया की सैर कर रहा है तू ?"

केसरी चेतन हुआ। मोहन को देखकर आश्चर्य हुआ। आंखें ज़रा उघाड़ कर बोला, "तू यहां कैसे आ गया ?"

मोहन थोड़ा हंसा। बोला, "तो आप सचमुच ही स्वर्ग में हैं ! फिर वम की ओर मुड़कर वह बोला, "यह तो होशहवास खो बैठा।"

इन शब्दों ने केसरी को कुछ उत्तेजित किया। पर तुरन्त ही वह उत्तेजन दूसरे किसी प्रवाह में वह गई। व्हिस्की के गिलास के चारों ओर नया मनोजाल बुना जाने लगा।

नरेन्द्र ! महत्त्वाकांक्षी नरेन्द्र ! नरेन्द्र के साथ उसकी खासी बहस हो गई थी। शराब पीने-न पीने को लेकर। राधा नरेन्द्र का समर्थन करती रही थी। बहस के बाद एक लम्बी चुप्पी···।

राधा एकटक उसे देख रही थी। इससे नरेन्द्र की आंखों का खिसियानापन वह देख रहा था। उपन्यास के पृष्ठों में नरेन्द्र की दिलचस्पी झूठी थी।

राधा ने नरेन्द्र की ओर जो नहीं देखा, इससे वह कुछ बचा रहा।

कुछ क्षण मौन रहने के बाद राधा ने पूछा, "आपके लिए पानी लाऊं ?"

"नहीं," उसने उत्तर दिया, "मैं कहीं जाकर बियर पिऊंगा।"

इसने राधा की आंखों की चमक को पल-भर में पोंछ दिया।

देर के बाद नरेन्द्र ने राधा की ओर देखा और राधा ने नरेन्द्र की ओर।

फिर नरेन्द्र ने अभिभावक की-सी मुद्रा में राधा से कहा, "पांच बजे संगीत सभा में भी तो चलना है। तुम अपनी तैयारी कब करोगी?"

यह शायद उसे जाने के लिए संकेत था। कुर्सी की बाहों पर हाथ रखकर वह बोला, "आप लोगों को बाहर कहीं जाना है, यह मुझे नहीं मालूम था..."

"मुझे आज वहां नहीं जाना है," राधा ने निश्चित स्वर में नरेन्द्र की ओर देखकर बीच में ही कहा।

"पर मेरा वहां प्रोग्राम जो है," नरेन्द्र उसके निश्चय को प्रभावित करने के लिए बोला।

"हां, हां, तुम्हारा नाम है, तुम चले जाओ। मेरा जाने का मूड नहीं।" फिर उससे बोली, "आप शाम को खाना खाकर ही जाइएगा। पिताजी ने आपको बिठाए रखने को कहा था।"

"नहीं, नहीं, मुझे भी एक जगह थोड़ा काम है," उसने छुटकारा चाहा।

"ऐसा क्या जरूरी जाना है? आपको तो कल तक याद भी नहीं था। बैठिए, अभी थोड़ी देर।"

"पर..."

"पर क्या? कुछ देर के लिए जाना टाला नहीं जा सकता?"

उसने नरेन्द्र की ओर देखा, जिसके मुख पर संध्या उतर आई थी। उससे आंख मिलते ही नरेन्द्र उठ खड़ा हुआ। कोट पहनते हुए जरा विमर्श-पूर्वक उससे बोला, "मुझे जाना पड़ेगा। चलिएगा संगीत सभा में?"

"कैसे चल सकता हूं!" उसने राधा की ओर देखकर कहा।

चलने को उद्यत होकर नरेन्द्र दरवाजे के पास पुन. रुका। मुड़कर बोला "वहूँस क्लब में आप जाया करते हैं?"

"हां, कभी-कभी। क्यों?"

'कुछ नहीं, यों ही पूछा। एक दिन आपको वहां किसी के साथ देखा था।"

कहकर नरेन्द्र ने अर्थपूर्ण दृष्टि से राधा की ओर देखा। फिर जाता हुआ बोला, "अच्छा, गुड नाइट!"

नरेन्द्र के चले जाने से बीच की कड़ी खिसक गई। कुछ समय तक दोनों

बातचीत के लिए किसी आरम्भ को नहीं पा सके। वह राधा के असमंजस को छू रहा था और राधा अपनी उलझन को बचा रही थी। पहला प्रश्न उसने स्वयं ही किया, "मेरी किसी बात से दुःख हुआ ?"

"नहीं तो। हर व्यक्ति को अपने ढंग से जीने का अधिकार है। फिर भी मैं कहती थी..."

क्या कहती थी, यही ठीक वह स्पष्ट नहीं कर पा रही थी। कुछ संकोच था, कुछ अनिश्चय। वह बोला, "अपने विचार प्रकट न करने को मैं पाप समझता हूं। आप निःसंकोच कहिए।"

"आप शराब पीना छोड़ नहीं सकते ?" राधा ने तर्क का आश्रय छोड़कर आग्रह की शरण ली।

वह ऐसे सीधे-से प्रश्न के लिए तैयार नहीं था। कुछ क्षण उसकी आंखों में देखता रहा। फिर गम्भीर होकर बोला, "नहीं।"

"नहीं ! क्यों नहीं ?"

इन शब्दों में ऐसी याचना थी कि उसके मन ने चाहा कि उसे किसी प्रकार का आश्वासन देकर संतुष्ट कर सके। पर वह चुप रहकर देखता रहा।

"मान लीजिए, आपके सामने कोई बहुत बड़ा प्रलोभन हो, फिर भी नहीं छोड़ सकते ?"

"नहीं, किसी प्रलोभन के कारण नहीं। हो सकता है किसी दिन मेरी अपनी रूचि बदल जाए। पर ऐसी संभावना नजर नहीं आती।"

वह खामोश हो गई। कमरे में केवल घड़ी की टिक-टिक सुनाई दे रही थी।

वह देख रहा था। जब राधा बोलना चाहती, तब एक कंपन गले में होता, दूसरा होंठों पर। जब वह बात को पी जाती तब नासिका कांपती और भौंहें हिलतीं। अचानक उसका चेहरा आरक्त होने लगा। कुछ कहने के लिए वह तैयार हुई। पर उसके साथ आंखें मिलते ही पुनः मुरझा गई। शब्दों के प्रभाव का विश्वास जैसे खो गया।

वह उसे सहारा देने के लिए बोला, "मैं आपकी भावना को समझता हूं। पर क्या करूं, किसी की भी इच्छा के अनुकूल अपने को मैं नहीं ढाल पाता। मुझे लगता है मैं केवल अपने ही लिए जीता हूं।"

तब वह बोली, "आपको अपनेपन का बहुत मान है शायद। किसी की

भावना क्या चीज है, इसे समझते हैं आप—मुझे आश्चर्य है।"

"संभव है, मैं ठीक नहीं समझता। फिर भी मुझे थोड़ा खेद अवश्य होता है। मैं किसी को खुश नहीं कर सकता।"

"किसी की खुशी की बात छोड़िए—आपकी अपनी खुशी क्या है? इस तरह की उदासीनता से केवल आप अपने को धोखे में रख सकते हैं। मैं जानती आप इसे स्वीकार नहीं करेंगे। यह भी उसी प्रवृत्ति का एक अंश है।"

"आपका अध्ययन गलत भी हो सकता है।"

"यह बात टालने का ढंग है। आपको अपने को बदलना चाहिए। मैं कहती , आपको अपने को बदलना पड़ेगा।"

राधा की उत्तेजना मे भी इतनी आत्मीयता आ गई थी कि वह सहसा उसका प्रतिवाद नहीं कर सका। थोड़ी देर टाई से खेलता रहा। फिर एक सिगरेट सुलगा लिया। तब धीमे स्वर में बोला, "मेरे लिए परिवर्तन वही है, जो स्वयं हो जाता है। शेष जीवन की धारा है। उसके लिए पहले से काट-छांट करने का अवकाश ही कहां है?"

फिर घड़ी की ओर देखकर वह बोला, "अच्छा, अब तो मुझे जाना ही पड़ेगा। एक कवि मित्र से मिलने का वायदा है।"

"जाइए। आप किसी का अपने पर अधिकार क्यों मानें? परसों दोपहर तो आइएगा?"

"चेष्टा करूंगा।"

"चेष्टा नहीं, अवश्य आइएगा।"

"अच्छा।"

दो रातें कानों मे राधा के शब्दों की गूंज रही—आपको अपने को बदलना चाहिए। जीने के लिए? पर जीना कौन नहीं चाहता? पर चाहकर भी सबसे जिया नहीं जाता। वह अपने ढंग से जी रहा है। इतना ही सही। राधा उसे सिखाएगी? फिर भी, राधा की बात सुनकर मान जाने को क्यों मन चाहता है? आत्मीयता का एक आवरण क्यों ढक लेता है? कमजोरी है। ऐसी कमजोरी दूर करनी चाहिए। तृतीय वर्ष की एक छात्रा उसे बदल देगी। अभी वह नहीं समझती। पर वह स्वयं क्या सभी कुछ समझता है?

विचार अधिक भारी हो जाते, तो वह टेबल लैंप जलाकर नीत्शे के

जीवन-दर्शन में से अपने लिए कुछ खोज निकालने में व्यस्त हो जाता। ऐसा कोई वाक्य मिल जाता कि 'स्त्रियों के संपर्क में आओ, तो अपने चाबुक को मत भूलो,' तो वह एक आश्वासन-सा पाकर सो जाता।

फिर भी उन रातों में कोई भी आश्वासन उसे शान्ति नहीं दे सका। वह उलझा रहा, व्यस्त रहा, सोचता रहा।

पर उस दिन निश्चित समय पर राधा के सामने जाकर क्या देखा? भाव हीन अभिवादन से उसने उसे बिठाया। नरेन्द्र भी वहीं था, जिसने अधिक घनिष्ठता और सौजन्य का परिचय देने की चेष्टा की। पैराशूट के टुकड़ों से लेकर एल्सेशियन कुत्तों तक की बातें। वह तकता रहा। नरेन्द्र उस उकताहट को निर्वाचनों की चर्चा से और भी भड़काकर एक पुस्तक निकालने स्टडी रूम में चला गया।

राधा की बदली हुई भंगिमा की उपेक्षा करके उसने उतार फेंकने के ढंग से कहा, "आपको उस दिन कुछ कहना बाकी था न? अच्छा हो, पहले वही बात समाप्त कर लें।"

"नहीं, वह ऐसी कोई विशेष बात नहीं," राधा ने उसी भावहीन ढंग से कहा। फिर ज़रा और गम्भीर स्वर में बोली, "एक और बात बताइएगा? यदि अधिक व्यक्तिगत हो, तो चाहे रहने दीजिएगा।"

"पूछिए।"

वह कुछ क्षण रुकी। अपनी जिज्ञासा के साथ शब्दों को शायद तौला। फिर कठिनता से पूछा, "इतना जान सकती हूं, श्यामा कौन है?"

प्रश्न के पीछे किसी और का छिपा आघात था! वह पचा लेने के लिए रुका। राह चलते अचानक धक्का खाकर जो चोट लगती है; वैसी ही चोट उसे लगी। पर वह शीघ्र ही संभल गया। सीधी दृष्टि से देखता बोला, "एक परिचित लड़की है। उसके विषय में आपको और क्या जानना है?"

"एक ऐसी बात है जो शायद आप बताना नहीं चाहेंगे।"

"ऐसी तो कोई बात नहीं। श्यामा के साथ मेरी मित्रता रही है। फिर वह अपने प्रेमी शील के साथ कराची चली गई थी। बाद में मुझे बताया गया कि मैं उसके मां बनने के लिए उत्तरदाई हूं। मैं ठीक नहीं जानता।"

इतने स्पष्ट शब्दों में बात सुनने की आशा राधा को नहीं थी। वह पल-

भर अवाक् उसे देखती रही। फिर आँखें हटाकर उसने धीरे-से कहा, "तब तो ठीक ही है।"

"क्या ठीक है?" उसने पूछा।

"कुछ नहीं," वह अचानक कृत्रिम होकर बोली, "मैं एक और ही बात सोच रही थी।"

"यह झूठ है," वह तीव्र हो उठा, "मैं जानता हूं, यह सब जान लेने के बाद आपके पास अपनी भावना और ज़बान कुछ भी नहीं रहा। आप बुराई को पीती हैं, सच्चाई को नहीं। ठीक है न?"

खामोशी से टाला जा सकना सभव होता, तो वह उत्तर न देती। पर शब्द इतने आक्रामक थे कि उसे बोलना पड़ा। कहा, "आप गुस्सा मत कीजिए। आप जो कुछ भी हैं, अपने लिए हैं। मैं उस दिन खामखाह आपसे इतनी बातें कहती रही। मुझे कहनी नहीं चाहिए थी।"

नरेन्द्र स्टडी रूम से किताब लेकर आया, जैसे क्यू के अनुसार रंगमंच पर प्रवेश कर रहा हो। अपनी भूमिका का वांछित परिणाम देखकर भी अनभिज्ञ-सा बोला, "आज कोई वाद-विवाद नहीं चला रहा?"

तभी वह उठ खड़ा हुआ। कहा, "मैं अब चलूंगा।"

राधा ने कुछ भी नहीं कहा। नरेन्द्र अभिनेता की-सी आश्चर्य-की मुद्रा से बोला, "इतनी जल्दी?"

"हां, ज़रा घूमने की तबीयत है।"

"फिर कब आ रहे हो?" नरेन्द्र के शब्दों में व्यंग्य स्पष्ट था।

"देखो, शायद कभी आ सकूं।"

इतना कहा और चल पड़ा। चलते-चलते राधा पर दृष्टि पड़ी। वह दूसरी ओर देख रही थी।

केसरी ने सिर उठाया। गिलास में ह्विस्की अब भी शेष थी। वर्मा मोहन के कानों के पास कोई शे'र गुनगुना रहा था। केसरी ने गिलास मुंह से लगाया और खाली कर दिया। फिर असमयन स्वर में बोला, "एक और···बड़ा।"

रात के बारह बज चुके थे जब मोहन के साथ वह रेस्तरां से बाहर निकला। मोहन ने कहा, "अरे, तू गया नहीं···तुझे कहीं जाना था न!"

केसरी बात भूल चुका था।

मोहन ने फिर पूछा, "किसी लड़की से तो मिलना नहीं था?"

केसरी झूलते स्वर में बोला, "लड़की? कौन लड़की? कोई लड़की नहीं। पत्नी।"

"क्या बकता है?" मोहन ने कहा, जैसे उसकी बेमतलब बहक का सब मतलब समझ रहा हो।

केसरी फिर बड़बड़ाया, "वह उस एक की पत्नी है। उसकी पत्नी जिसने उसे···।"

मोहन उसे खींचकर कार में ले चला। केसरी उसी तरह बड़बड़ाता रहा।

लक्ष्यहीन

आधी रात जा चुकी थी। केसरी अभी जाग रहा था। चाहता था सो जाए, पर नींद आए तब न। हारकर उसने टेबल लैंप जला लिया। फिर तकिए के सहारे बैठकर बाहर की ओर देखने लगा।

काली अंधेरी रात। सोते या जागते इसे बिता देना है। फिर सफेद दिन निकलेगा। हंसी या खेद में उसे भी काट देना है। फिर ऐसी ही रात आएगी। वह भी सोकर या जागकर···

ऐसा ही जीवन है। युगों से एक ही तरह सूर्योदय होता है और एक ही तरह सूर्यास्त। जीना-मरना सब एक-सा चलता है। इस सबकी आवश्यकता ही क्या है?

रोशनी बुरी लगने लगी। टेबल लैंप बुझा दिया। बेचैनी दूर नहीं हुई। नींद लाने की चेष्टा की, तो दिन की बातें मस्तिष्क में उभरने लगीं। पलकें मूंद लीं, तो आंखें झांककर अंदर की ओर देखने लगीं।

बात छोटी-सी थी, पर बिलकुल छोटी नहीं थी। कितनी ही बातें पहले हो चुकी हैं। कौन जानता है, कितनी बातें अभी और होनी हैं? कब तक जीवन की ऐसी धारा चलती रहेगी?

पहले वह मंजुला को नहीं जानता था। आज ही दूर से वह दिखाई दी, और आज ही यह लंबी काली छाया हृदय पर आ पड़ी।

यूनीवर्सिटी के मैदान में लड़कियों के खेल हो रहे थे। दर्शकों में वह सतीश और खन्ना के बीच में बैठा था। सतीश से परिचय खन्ना ने कराया था। कुछ ही मिनटों में वह काफी घनिष्ठता से बातें करने लगा था। सतीश के बड़े-बड़े बाल बार-बार फिसलते थे और छोटी-छोटी आंखें लगातार घूमती थीं।

"चंद्रहास के क्या माने हैं ?" सतीश ने पूछा।

"चांद की तरह हंसनेवाला," उसने उत्तर दिया।

"तब तो सचमुच ही तुम्हारे बंगले का बहुत अच्छा नाम है। ऐसा ही कोई नाम मुझे भी बताओ।"

उसी समय उसने दूर आधे ब्लाउज़ और अधकटे बालों वाली प्रौढ़ा स्त्री को देखा, जो कुर्सियां लांघकर उसीकी ओर आ रही थी। अपने ढले हुए यौवन को संभालने का उसका उत्साह देखकर हंसी भी आ सकती थी और सहानुभूति भी हो सकती थी।

"कोई नाम नहीं बता रहे ?" सतीश ने फिर उससे पूछा।

स्त्री निकट आती गई। सतीश के पास आकर उसने उसे कंधे से हिलाया और हंस पड़ी। सतीश ने पहचाना और अभिवादन किया। स्त्री ने पूछा, "मंजुला से नहीं मिले ?"

"नहीं, अभी नहीं मिला," सतीश ने कहा।

"वह चाटी-रेस में भाग ले रही है," स्त्री ने अपना कंधा खुजलाते हुए कहा, "मुझे तो विश्वास है, इस बार अवश्य जीत लेगी। पिछले साल दूसरी रही थी।"

वह बात तो सतीश से कर रही थी, और बार-बार देख उनकी ओर रही थी। उसकी अधेड़ शोखी में भी एक तरह का रस था। वह एक-दो बार ऐसा अनुभव करके रह गया जैसे कोई फीता लेकर उसे इंचों के हिसाब से नाप रहा हो।

चाटी-रेस के आरंभ की सूचना दी गई। स्त्री वहीं उसके पास रुकी रही। भाग लेने वाली बीस लड़कियां थीं। वे पंक्ति में खड़ी हो गईं। सीटी के साथ उन्होंने पैर बढ़ाए। सभी ओर हलचल हुई। सांवले रंग की लंबी लड़की उनमें आगे निकलने लगी।

"निकल आई मंजुला !" स्त्री ने सतीश के कंधे को झकझोरकर कहा। फिर

उत्तेजित स्वर में बोली, "शाबाश, मंजुल ! शाबाश !"

मंजुला आगे निकलती आई। दौड़ उसने जीत ली। स्त्री प्रसन्नता के आवेश में सतीश को खींचकर साथ ले गई।

तब वह चारों ओर की भीड़ पर दृष्टि घुमाने लगा। पुरुष थे, जिनमें व्यक्तित्वहीन गंभीरता थी। स्त्रियां थीं, जिनमें सौंदर्यहीन प्रदर्शन था। कटे-छटे शब्द। लिपी-पुती सजीवता।

थोड़ी देर में सतीश लौटकर आया और रुचिपूर्वक बात करने लगा। उसकी टाई हाथ में लेकर उसने रंग की प्रशंसा की और दाम भी पूछे। सतीश के कृत्रिम लहजे से प्रकट था कि वह कोई विशेष बात छेड़ने के लिए मानसिक भूमिका तैयार कर रहा है। अनुमान ठीक था। सतीश ने आखिर पुतलियां स्थिर करके कहा, "मंजुला बहुत ही चुस्त लड़की है, तुम्हारा क्या ख्याल है?"

वह चुप रहा। मंजुला को दौड़ते देखकर जो विचार हृदय में आया था, उसे उसने खुलते होंठों के नीचे दबाए रखा।

"अभी-अभी जो यहां मुझसे बात कर रही थी, वह उसकी ममी है," सतीश ने फिर कहा और एक तरह की मुसकराहट खींचकर बोला, "वह तुम्हारे विषय में पूछ रही थी।"

"क्यों?" उसने अनायास कहा। वह स्त्री गुस्से से लदी आंखों की कालिमा बार-बार जो उसपर छिटकाती रही थी, उसका अर्थ अब उसकी समझ में आने लगा।

सतीश यथासंभव स्वाभाविकता के साथ बोला, "कारण तुम जान लोगे। मैंने तुम्हारा परिचय दे दिया है, पता भी बता दिया है और सिफारिश भी कर दी है।"

"तो कल मैं अपने प्रमाण पत्र लेता आऊंगा, वे भी उन्हें दिखा देना," उसने व्यंग्य किया। साथ ही उसकी कल्पना में वह चित्र आया—सिर पर मटका रखे लम्बी-लम्बी टांगों से शुतुरमुर्ग की तरह दौड़ती मंजुला!

सतीश ने उसका व्यंग्य या तो छुआ नहीं या पी लिया। अपनी बात जारी रखते हुए उसने खन्ना से पूछा, "क्यों, खन्ना, मंजुला के विषय में तुम्हारी क्या राय है?"

"बहुत अच्छी लड़की है !" खन्ना ने दूर रहने के ढंग से कहा।

सतीश की आंखें फिर उससे आ मिलीं। वह मुसकराकर बोला, "लड़की अच्छी है, इसमें कोई संदेह नहीं। दूर से ही लगता है कि उसके शरीर में हर तरह के विटामिन हैं।"

सतीश की आंखों का घूमना बंद हो गया। वह नाखून से नाखून को छीलने लगा। अन्दर से उबलते शब्दों को थोड़ा चबाकर बोला, "इस तरह की बातें करना भद्र समाज का व्यवहार नहीं, मिस्टर केसरी।"

एक साधारण व्यंग्य से इतना छिल जाने का कोई कारण नहीं था। उसने सतीश की ओर बिना देखे कहा, "यह संभव है। मुझे छुरी-कांटे से खाना खाते अभी बहुत दिन नहीं हुए।"

यहीं तक विनोद रहा। इसके बाद बातें गंभीर हो गईं। केवल सतीश ने ही नहीं, खन्ना ने भी उसका तिरस्कार किया। यहां तक कहा कि वह किसी भली लड़की से परिचय कराए जाने का अधिकारी नहीं।

खिड़की से हवा का झोंका आया। केसरी ने करवट बदली। अन्दर-बाहर अन्धकार था। रात खामोश थी। झींगुर बोल रहे थे।

लम्बा जीवन काटना है। आज की बात ही एक बात नहीं। मनोहर, महेन्द्र, पूर्णिमा और राधा—इन सबकी बदली हुई मुद्राएं सामने आती हैं। घृणा, लांछन और तिरस्कार सहकर जिए जाना भी क्या संभव है ? यदि नहीं, तो उसे सचमुच बदलना चाहिए।

वह पलंग पर सीधा होकर बैठ गया।

धुएं का गोला छोटे से बड़ा हुआ, फिर बिखर गया और विलीन हो गया। केसरी ने मुंह से दूसरा गोला छोड़ा। वह भी कुछ पल लचकता रहा, फिर ओझल हो गया। घंटे-भर से वह ऐसे ही गोले बना रहा था। उसके विचार गोलों के साथ ही साथ बन रहे थे और साथ ही साथ बिखरते जा रहे थे।

रात को वह देर से सोया था, और सवेरे देर से जागा था। खाना खाने के बाद वह सोफे पर लेट गया था। उसके मन में संघर्ष चल रहा था।

वह क्या है ? कैसा है ? क्यों ऐसा है ? ऐसा तो नहीं है। फिर कैसा है ? और जैसे संध्या का बादल कभी अप्सरा और कभी दैत्य बनकर दिखाई

देता है, वैसे ही वह बदलते हुए रूपों में अपने-आपको देख रहा था। समझने के लिए रुकता था, तो रूप और बदल जाता था, फिर बदल जाता था, फिर बदल जाता था, फिर बदल जाता था।

कबीरा आकर दो चिट्ठियां दे गया। चिट्ठियां लेकर उसने जेब में रख लीं और सिगरेट पीता रहा। तीन बजे, चार बजे, साढ़े चार बजे। साढ़े चार बजे कबीरा ने चाय लाकर रखी। सिगरेट छोड़कर वह चाय पीने लगा। एक प्याला फिर दूसरा, फिर तीसरा, फिर चौथा। शीशे में देखा बाल बिगड़ रहे हैं। उठकर बाल ठीक करने लगा।

रात को एक पुस्तक निकालकर मेज पर रखी थी। वह उसे पढ़ने के लिए सोफे पर ले आया। पहले पृष्ठ पर केवल दो ही पंक्तियां थीं—

'जीना एक कला है। इस बात को जाननेवाला एक सफल कलाकार है।'

पन्ने पलटते-पलटते पुस्तक हाथ से फिसलकर गिर पड़ी। वह उसे उठाने के लिए झुका। जेब में से दो चिट्ठियां नीचे आ रहीं। तो ये चिट्ठियां अभी पढ़ी ही नहीं।

एक तो निमन्त्रण का कार्ड था। छपी हुई पंक्तियों के नीचे हाथ से लिखी गई एक पंक्ति भी थी। आज 'सोनाकुटी' में रात्रिभोज है। सरोज ने आने का अनुरोध किया है।

सरोज का हंसमुख चेहरा आंखों के सामने आ गया। वह कालेज में उसकी सहपाठिनी थी। उसकी पुस्तकों पर गोल-गोल अक्षरों में हस्ताक्षर किया करती थी। विवाह के बाद वह पति के साथ लंदन चली गई थी। आज वहां से लौटकर रात्रिभोज दे रही है।

उसने दूसरा पत्र खोला। पढ़कर आश्चर्य हुआ। अस्थिरता के क्षण में कभी कोयले की खानों के प्रबंधक-पद के लिए प्रार्थना पत्र भेजा था। कलकत्ते से उसे नियुक्ति पत्र आया था। लिखा था, 'आप आगामी मास के प्रथम सप्ताह में कलकत्ते आकर अधिकार ग्रहण कर सकते हैं।'

'सोनाकुटी' को बाहर से सजाया जा रहा था। केसरी वहां पहुंचा, तो बिखरी हुई झंडियों का ढेर उसके लिए हटाया गया। जमीन पर लेटे रंगीन 'स्वागतम्' के ऊपर से कूदकर उसने सरोज को देखा, जो बड़ी व्यस्तता से

नौकरों को आदेश दे रही थी। उसे देखते ही वह बोली, "हलो शर्मा, आओ! मैं सपना तो नहीं देख रही ?"

"मुझे डर है कि मैं सपना देख रहा हूं," केसरी ने उसके निकट पहुंचते हुए कहा। फिर इधर-उधर देखकर बोला, "मैं समय से पहले ही चला आया। सोचा, तुमसे लंदन के जीवन की चर्चा सुनूंगा। यह विचार ही नहीं आया कि तुम प्रबन्ध करने में व्यस्त होगी।"

"अरे! नहीं, नहीं, मुझे क्या करना है। इन लोगों को थोड़ा समझा रही थी," सरोज ने गृहिणी के स्वर में कहा, "चलो, अन्दर चलकर बैठें।"

केसरी ने अनुभव किया कि आज की सरोज भंडारी उस ज़माने की सरोज मेहरा से कहीं भिन्न है। वह प्राचीन भारत के शिलालेखों से उलझनेवाली लड़की विलायत से वहा की-सी वाणी सीखकर आई है। उसके शब्द एक बनावटी कोमलता लिए हुए व्यक्त होते हैं, और उनकी ध्वनि में से भी अर्थ निकलता है—मैं हूं! मैं हूं! मैं हूं!

गोल कमरे में आकर सरोज ने कहा, "तुम तो बिलकुल वैसे ही हो शर्मा, जैसे दो वर्ष पहले थे। एक मिलीमीटर का भी अन्तर नहीं आया।"

"तुम मुझे बदली-सी लगती हो," केसरी ने कहा।

"कैसी लगती हूं ?"

"लगती हो, जैसे नया खिलौना एक रात बरसात में भीग गया हो।"

सरोज हंस पड़ी। अपने बालों को झटककर बोली, "तुम वही हो शर्मा, बिलकुल वही। इन्हीं बातों के लिए तुम्हारी याद आया करती थी। आज मैंने सौ व्यक्तियों को निमंत्रित किया है। उनमें से निन्यानवे मिलकर एक बनते हैं, और तुम अकेले एक हो। तुमने लॉ कर लिया ?"

"नहीं छोड़ दिया।"

"तो आजकल क्या कर रहे हो ?"

"स्वतंत्र अध्ययन अर्थात् कुछ भी नहीं।"

"सो मैं समझ सकती हूं," सरोज ने मुसकराकर कहा, "तुम्हारे लिए जीवन-मार्ग का निश्चय कर लेना उतना आसान नहीं, जितना और लोगों के लिए। मैं तो समझती हूं कि तुम केवल एक आवारा ही बन सकते हो।" उसके स्वर में भारतीयता आती जा रही थी। "आव[illegible] राजनीतिज्ञ।"

"ठीक है ! तो मैं लंबे-लंबे बाल रख लूं और भूख और आजादी की बातें किया करूं ?"

सरोज फिर हंस दी। बोली, "मैं जानती हूं तुम सदा राजनीतिज्ञों पर व्यंग्य किया करते हो। पर फिर भी उस रूप में तुम बहुत कुछ कर सकते हो। क्या मैं कल्पना करूं कि तुम किसी इंश्योरेंस कंपनी के मैनेजर बन जाओगे या माल रोड पर होटल खोलकर ग्राहकों की सेवा किया करोगे ?"

बाहर कुछ प्लेटें टूटने की आवाज आई। सरोज बीच में ही उठती हुई बोली, "ठहरो, मैं देखूं यह लोग क्या कर रहे हैं।" और तत्परता से बाहर चली गई।

सामने बंगले की छत पर एक हवामुर्ग घूम रहा था। केसरी उसे देखने लगा। उसका मन भी हवामुर्ग की तरह घूम रहा था। अनुभव हो रहा था कि वह स्वयं ही एक तरह का असमंजस है। अपने-आप में उलझ जाता है और सुलझने के लिए हाथ पैर मारता है। पर गांठें मजबूत हो जाती हैं। प्रयत्न छोड देता है, तो धागे ढीले होने लगते हैं। इसमें कोई रहस्य है। और जब वह रहस्य की बात सोचता है, तो उलझन फिर बढ़ने लगती है; अन्तर फिर दुखने लगता है।

धीरे-धीरे उसने जेब में हाथ डाला। कलकत्ते से आया हुआ नियुक्ति पत्र निकाला और पढ़ने लगा।

दूर कहीं से मिल का भोंपू सुनाई दिया। केसरी के मस्तिष्क में उतरी कोयले की खानें मांसों में कोयला भरके मशीनों की तरह चलनेवाले मजदूर ! सूर्योदय और सूर्यास्त। लेख, व्याख्यान, सभाएं ! निर्वाचन और तालियां ! पद प्राप्ति और शान ! फिर रिश्वत, कालाबाजार, फूलों के हार और अभिनन्दन-पत्र !

उसने हाथ के कागज को देखा। उंगलियों ने कागज को एक ही आकार के सोलह टुकड़ों में फाड़ दिया था। वह टुकड़े उसने जेब में डाल लिए।

मिसेज वर्मा चम्मच से सूप पी रही थीं। केसरी मोटे-मोटे होंठों में चम्मच का आना-जाना देख रहा था।

दोनों एक ही मेज पर बैठे थे। सरोज उनका परिचय कराके दूसरे मेहमानों के पास चली गई थी।

मिसेज़ वर्मा ने चम्मच रखकर होंठ पोंछते हुए कहा, "आपने 'सदाचार' में मेरे लेख पढ़े हैं ?"

"एक-दो लेख मैंने पढ़े हैं। आपकी भाषा बहुत जानदार होती है, इसमें संदेह नहीं।" केसरी ने कहा।

मिसेज़ वर्मा के होंठ फैल गए। बोलीं, "मैं समाज का पूरा सुधार चाहती हूं। जो बातें मैंने लिखी हैं, उनकी सभी ने प्रशंसा की है।"

"भाषा की प्रशंसा मैं भी करता हूं, पर आपके विचारों से मैं सहमत नहीं," वह बोला।

मिसेज़ वर्मा ने रूमाल से माथा पोंछा और अपनी प्रौढ़ता को तराज़ू में डालकर भारी होने की चेष्टा करती बोलीं, "तुम अभी नौजवान हो भाई। मैंने तुमसे बीस वर्ष अधिक जीकर देखा है।"

"ठीक है, पर आपके विचार में समाज का अर्थ एक विशेष वर्ग है। सुधार का अर्थ एक विशेष तरह का व्यवहार है, जो उस वर्ग को अपना लेना चाहिए। वाद से आपका अभिप्राय है उस विषय में टीका-टिप्पणी। ये बहुत संकुचित धारणाएं हैं।"

मिसेज़ वर्मा जैसे अस्त्र चढ़ाती बोलीं, "पहले अपने वर्ग का ही सुधार होना चाहिए। उसके बाद ही कोई दूसरा कदम उठाया जा सकता है।"

केसरी बात नहीं सुन रहा था। उसकी आंखें कोने की मेज के पास जाकर रुक गईं थीं। वहां सरोज हरी साड़ीवाली नवयुवती से हंसकर बातें कर रही थी। वह नवयुवती थी मंजुला, जिसे कल चाटी-रेस में दौड़ते देखा था। उधर से ध्यान हटाकर उसने मिसेज़ वर्मा की ओर देखा, फ़िर प्लेट बढ़ाता बोला, "केक लीजिए !"

"नहीं धन्यवाद," मिसेज वर्मा ने बड़प्पन बिखेरते हुए कहा। फिर कुछ रुककर बोलीं, 'आप समाजवादी हैं ?"

पर वह फिर दूसरी ओर देखने लगा था। सरोज उसकी ओर संकेत करके मंजुला से कुछ कह रही थी। मंजुला ने सीधी नजर से उसे देखा। वह फिर मिसेज़ वर्मा से बात करने लगा। बोला, "आपने कोई पुस्तक भी लिखी है ?"

"शर्मा !" सरोज ने उसे दूर से पुकारा। उसने देखा सरोज उसे हाथ के [illegible] से अपने पास बुला रही है। यह भी देखा कि मंजुला की आंखों में एक

तरह का कुतूहल है। वह गंभीर मुद्रा धारण किए उठा और मिसेज वर्मा से बोला, "क्षमा कीजिएगा, मैं अभी आता हूं।"

"क्या उलझ रहे थे मिसेज वर्मा से ?" सरोज ने पूछा।

"कुछ नहीं, उन्हें उनके हित की एक बात बतलाने जा रहा था," उसने बैठते हुए कहा।

"कौन-सी बात ?"

"यही कि एक तो उन्हें सवेरे सिर की मालिश करवानी चाहिए और दूसरे रात को सोते समय गरम दूध के साथ एक चम्मच फ्रूट-साल्ट ले लेना चाहिए।"

"तुम तो नरमेध करते हो, शर्मा !" सरोज खिलती हुई बोली, "पहले मैं तुम्हारा परिचय कराऊं। मंजुला देवल—एम० ए० करके ऑक्सफोर्ड जाने वाली हैं। यह शर्मा। परिचय मैं पहले ही दे चुकी हूं।"

"मुझे आपसे मिलकर प्रसन्नता हुई," मंजुला ने उसकी आंखों में देखते हुए कहा।

"मुझे आपसे यह जानकर प्रसन्नता हुई," उसने उत्तर में कहा। मंजुला मुसकराई। बोली, "सरोज कह रही थी कि मैं ऑक्सफोर्ड जाने से पहले आपसे कुछ सीख सकती हूं।"

"मुझसे ?"

"क्यों नहीं ?" सरोज बीच में ही बोली, "मंजुला वहां के सामाजिक जीवन की बात पूछ रही थी। मैंने वहां अपनी लोकप्रियता का रहस्य इसे बतला दिया है।"

"कोई गुप्त रहस्य है ?"

"गुप्त रहस्य नहीं, चलता-फिरता रहस्य है, और वह तुम हो।"

"मैं ?"

"हां, तुम !"

शर्मा ने आश्चर्य से सरोज को देखा ! सरोज के स्वर में व्यंग्य नहीं था। मंजुला उसे ध्यान से देख रही थी। जैसे किसी रोचक कहानी का अंतिम पृष्ठ पढ़ रही हो। मंजुला के भरे हुए चेहरे पर उत्सुकता भी थी, व्यग्रता भी। वह मन की बात सोचने लगा।

×

'सोनाकुटी' से बाहर आकर मंजुला ने पूछा, "आपके साथ गाड़ी है ?"

"नहीं, मुझे अधिक दूर नहीं जाना है, मैं पैदल जा सकता हूं," केसरी ने कहा।

"मेरी गाड़ी में बैठ जाइए। मैं रास्ते में छोड़ दूंगी।"

गाड़ी सड़क पर लाकर मंजुला बोली, "आज का भोजन तो बहुत ही सफल रहा। कम से कम मैं इसे नहीं भूल सकती।"

"मैं भी ऐसा ही सोचता हूं," उसने कहा।

"मैं समझती हूं हमारा परिचय यहीं समाप्त नहीं हो जाएगा। क्यों ?"

"नहीं, मैं ऐसा नहीं समझता," उसके शब्दों की ध्वनि से दोनों अर्थ निकल सकते थे।

"सरोज आपकी बहुत तारीफ करती है।"

वह चुप रहा। गाड़ी चली जा रही थी। वह अंधेरे में पीछे हटते वृक्षों को देखने लगा। शरीर हल्का हो रहा था। चालीस पर चलती गाड़ी की रफ्तार उसे सुस्त मालूम दे रही थी। उसे लग रहा था कि वह मंजुला के साथ रेस में दौड़ रहा है। हाथ कोट की जेब में चला गया। कुछ कागज़ के टुकड़े हाथ लगे। वह उसने निकाल लिए और हवा में उड़ जाने दिए।

मंजुला के बाल उड़कर होंठों पर गिर रहे थे। वह जैसे तेजी से किसी पहाड़ से फिसल रही थी।

केसरी अपना रास्ता देख रहा था। चौड़ी सड़क पर आते ही उसने कहा, "मुझे दोराहे पर उतार देना। मैं वहां से लॉरेंस रोड पर पैदल चला जाऊंगा।"

"आप लॉरेंस रोड पर रहते हैं ?" मंजुला ने गाड़ी की गति धीमी करते हुए पूछा।

केसरी ने सिर हिला दिया।

"कौन-सा बंगला है आपका ?"

केसरी ने दो क्षण मौन रहकर कुछ सोचा। फिर बोला, "चन्द्रहास।"

"चन्द्रहास ?" मंजुला को जैसे शतरंज के तख्ते पर शह दे दी गई हो।

"वहां कोई और भी रहता है ?" उसने संभलते हुए पूछा।

"किस भाग में ? बंगले के कई भाग हैं।"

"यह मैं नहीं जानती। पर केसरी नाम का कोई आदमी है ?"

केसरी के मस्तिष्क में कल की घटना घूम गई—यूनीवर्सिटी का मैदान। छन्दा, सतीश, मंजुला की मां और मंजुला। फिर मंजुला की ओर देखकर बोला, "आप उसे जानती हैं ?"

मंजुला का रंग थोड़ा लाल हुआ, लाल से पीला, फिर ठीक हो गया। लापरवाही से वह बोली, "जानती तो नहीं, पर उसके विषय में कुछ सुना जरूर था कल।"

"क्या सुना था ?"

"वह काफी सनकी है, काफी बददिमाग और व्यवहार-शून्य। आप तो जानते होंगे।"

"नहीं, इतना नहीं जानता।"

गाड़ी दोराहे पर रुकी। केसरी बाहर निकला। मंजुला बोली, 'वह आपका मित्र तो नहीं ?"

"क्यों ?"

'सोचती हूं कहीं आपने मेरी बात का बुरा न माना हो।"

"नहीं, वह मेरा मित्र नहीं है।"

"इतना सुन्दर समय बिताने के लिए धन्यवाद," मंजुला ने उसकी आंखों में मुसकराकर कहा।

"गाड़ी में साथ लाने के लिए धन्यवाद," केसरी ने कहा।

'गुड नाइट !"

'गुड नाइट !"

गाड़ी आगे चली गई। केसरी पैदल चलने लगा। निर्जन और एकान्त। फैली हुई सड़क और दूर-दूर बत्तियां! रोशनी और छाया, रोशनी और छाया, रोशनी और छाया…

अपरिचित

कोहरे की वजह से खिड़कियों के शीशे धुंधले पड़ गए थे। गाड़ी चालीस की रफ्तार से सुनसान अंधेरे को चीरती चली जा रही थी। खिड़की से सिर सटाकर भी बाहर कुछ दिखाई नहीं देता था। फिर भी मैं देखने की कोशिश कर रहा था। कभी किसी पेड़ की हल्की-गहरी रेखा ही गुजरती नज़र आ जाती तो कुछ देख लेने का सन्तोष होता। मन को उलझाए रखने के लिए इतना ही काफी था। आंखों में ज़रा नींद नहीं थी। गाड़ी को जाने कितनी देर बाद कहीं जाकर रुकना था। जब और कुछ दिखाई न देता, तो अपना प्रतिबिम्ब तो कम से कम देखा ही जा सकता था। अपने प्रतिबिम्ब के अलावा और भी कई प्रतिबिम्ब थे। ऊपर की बर्थ पर सोये व्यक्ति का प्रतिबिम्ब अजब बेबसी के साथ हिल रहा था। सामने की बर्थ पर बैठी स्त्री का प्रतिबिम्ब बहुत उदास था। उसकी भारी पलकें पल-भर के लिए ऊपर उठतीं, फिर झुक जातीं। आकृतियों के अलावा कई बार नई-नई आवाज़ें ध्यान बंटा देतीं, जिनसे पता चलता कि गाड़ी पुल पर से जा रही है या मकानों की कतार के पास से गुजर रही है। बीच में सहसा इंजन की चीख सुनाई दे जाती, जिससे अंधेरा और एकान्त और गहरे महसूस होने लगते।

मैंने घड़ी में वक्त देखा। सवा ग्यारह बजे थे। सामने बैठी स्त्री की आंखें बहुत सुनसान थीं। बीच-बीच में उनमें एक लहर-सी उठती और विलीन हो

जाती। वह जैसे आखो से देख नही रही थी, सोच रही थी। उसकी बच्ची, जिसे फर के कम्बलो मे लपेटकर सुलाया गया था, जरा जरा कुनमुनाने लगी। उसकी गुलाबी टोपी सिर से उतर गई थी। उसने दो-एक बार पैर पटके, अपनी बंधी हुई मुट्ठियां ऊपर उठाईं और रोने लगी। स्त्री की सुनसान आंखें सहसा उमड़ आई। उसने बच्ची के सिर पर टोपी ठीक कर दी और उसे कम्बलो समेत उठाकर छाती से लगा लिया।

मगर इससे बच्ची का रोना बन्द नहीं हुआ। उसने उसे हिलाकर और दुलारकर चुप कराना चाहा, मगर वह फिर भी रोती रही। इस पर उसने कम्बल थोड़ा हटाकर बच्ची के मुह मे दूध दे दिया और उसे अच्छी तरह अपने साथ सटा लिया।

मैं फिर खिड़की से सिर सटाकर बाहर देखने लगा। दूर बत्तियों की एक कतार नज़र आ रही थी। शायद कोई आबादी थी, या सिर्फ सड़क ही थी। गाड़ी तेज़ रफ्तार से चल रही थी और इजन बहुत पास होने से कोहरे के साथ धुआ भी खिडकी के शीशे पर जमता जा रहा था। आबादी या सड़क, जो भी वह थी, अब धीरे-धीरे पीछे रही जा रही थी। शीशे में दिखाई देते प्रतिबिम्ब पहले से गहरे हो गए थे। स्त्री की आंखें मुद गई थी और ऊपर लेटे व्यक्ति की बाह जोर-जोर से हिल रही थी। शीशे पर मेरी सास के फैलने से प्रतिबिम्ब और धुधले हो गए थे। यहा तक कि धीरे-धीरे सब प्रतिबिम्ब अदृश्य हो गए। मैंने तब जेब मे रूमाल निकालकर शीशे को अच्छी तरह पोंछ दिया।

स्त्री ने आखें खोल ली थी और एकटक सामने देख रही थी। उसके होंठों पर हल्की-सी रेखा फैली थी जो ठीक मुसकराहट नही थी। मुसकराहट से बहुत कम व्यक्त उस रेखा मे कही गम्भीरता भी थी और अवसाद भी—जैसे वह अनायास उभर आई किसी स्मृति की रेखा थी। उसके माथे पर हल्की-सी सिकुड़न पड़ गई थी।

बच्ची जल्दी ही दूध से हट गई। उसने सिर उठाकर अपना बिना दात का मुह खोल दिया और किलकारी भरती हुई मा की छाती पर मुट्ठियों से चोट करने लगी। दूसरी तरफ से आती एक गाड़ी तेज रफ्तार में पास से गुज़री तो वह जरा सहम गई, मगर गाड़ी के निकलते ही और भी मुह खोलकर किल-कारी भरने ... च्ची का चेहरा गदराया हुआ था और उसकी टोपी के

नीचे से भूरे रंग के हल्के-हल्के बाल नज़र आ रहे थे। उसकी नाक ज़रा छोटी थी, पर आंखें मां की ही तरह गहरी और फैली हुई थीं। मां के गाल और कपड़े नोंचकर उसकी आंखें मेरी तरफ घूम गईं और वह बांहें हवा में पटकती हुई मुझे अपनी किलकारियों का निशाना बनाने लगी।

स्त्री की पलकें उठीं और उसकी उदास आंखें क्षण-भर मेरी आंखों से मिली रहीं। मुझे उस क्षण-भर के लिए लगा कि मैं एक ऐसे क्षितिज को देख रहा हूं जिसमें गहरी सांझ के सभी हल्के-गहरे रंग झिलमिला रहे हैं और जिसका दृश्यपट क्षण के हर सौवें हिस्से में बदलता जा रहा है···।

बच्ची मेरी तरफ देखकर बहुत हाथ पटक रही थी, इसलिए मैंने अपने हाथ उसकी तरफ बढ़ा दिए और कहा, 'आ बेटे, आ···।"

मेरे हाथ पास आ जाने से बच्ची के हाथों का हिलना बन्द हो गया और उसके होंठ रुआंसे हो गए।

स्त्री ने बच्ची को अपने होंठों से छुआ और कहा, "जा बिट्टू, जाएगी उनके पास ?"

लेकिन बिट्टू के होंठ और रुआंसे हो गए और वह मां के साथ सट गई।

"ग़ैर आदमी से डरती है," मैंने मुसकराकर कहा और हाथ हटा लिए।

स्त्री के होंठ भिच गए और माथे की खाल में थोड़ा खिंचाव आ गया। उसकी आंखें जैसे अतीत में चली गईं। फिर सहसा वहां से लौट आईं और वह बोली, "नहीं, डरती नहीं। इसे दरअसल आदत नहीं है। यह आज तक या तो मेरे हाथों में रही है या नौकरानी के···," और वह उसके सिर पर झुक गई। बच्ची उसके साथ सटकर आंखें झपकने लगी। महिला उसे हिलाती हुई थपकियां देने लगी। बच्ची ने आंखें मूंद लीं। महिला उसकी तरफ देखती हुई जैसे चूमने के लिए होंठ बढ़ाए उसे थपकियां देती रही। फिर एकाएक उसने झुककर उसे चूम लिया।

'बहुत अच्छी है हमारी बिट्टू, झट-से सो जाती है," यह उसने जैसे अपने से कहा और मेरी तरफ देखा। उसकी आंखों में एक उदास-सा उत्साह भर रहा था।

"कितनी बड़ी है यह बच्ची ?" मैंने पूछा।

"दस दिन बाद पूरे चार महीने की हो जाएगी," वह बोली, "पर देखने में अभी उससे छोटी लगती है। नहीं?"

मैंने आखों से उसकी बात का समर्थन किया। उसके चेहरे में एक अपनी ही सहजता थी—विश्वास और सादगी की। मैंने सोई हुई बच्ची के गाल को जरा-सा सहला दिया। स्त्री का चेहरा और भावपूर्ण हो गया।

'लगता है आपको बच्चों से बहुत प्यार है," वह बोली, "आपके कितने बच्चे हैं?"

मेरी आखें उसके चेहरे से हट गईं। बिजली की बत्ती के पास एक कीड़ा उड़ रहा था।

"मेरे?" मैंने मुसकराने की कोशिश करते हुए कहा, "अभी तो कोई नहीं है मगर…।"

"मतलब ब्याह हुआ है, अभी बच्चे-अच्चे नहीं हुए," वह मुसकराई "आप मर्द लोग तो बच्चों से बचे ही रहना चाहते हैं न?"

मैंने होंठ सिकोड़ लिए और कहा, "नहीं, यह बात नहीं…।"

"हमारे ये तो बच्ची को छूते भी नहीं," वह बोली, 'कभी दो मिनट के लिए भी उठाना पड़ जाए तो झल्लाने लगते हैं। अब तो खैर वे इस मुसीबत से छूटकर बाहर ही चले गए हैं।" और सहसा उसकी आखें छलछला आईं। रुलाई की वजह से उसके होंठ बिलकुल उस बच्ची जैसे हो गए थे। फिर सहसा उसके होंठों पर मुसकराहट लौट आई—जैसा अक्सर सोए हुए बच्चों के साथ होता है। उसने आखें झपककर अपने को सहेज लिया और बोली, "वे डॉक्टरेट के लिए इंगलैण्ड गए हैं। मैं उन्हें बम्बई में जहाज पर चढ़ाकर आ रही हूं। …वैसे छ-आठ महीने की बात है। फिर मैं भी उनके पास चली जाऊंगी।"

फिर उसने ऐसी नजर से मुझे देखा जैसे उसे शिकायत हो कि मैंने उसकी इतनी व्यक्तिगत बात उससे क्यों जान ली!

"आप बाद में अकेली जाएंगी?" मैंने पूछा, "इससे तो आप अभी साथ चली जातीं…।"

उसके होंठ सिकुड़ गए और आखें फिर अन्तर्मुख हो गईं। वह कई पल अपने में डूबी रही और उसी भाव में बोली, "साथ तो नहीं जा सकती थी क्योंकि अकेले उनके जाने की भी सुविधा नहीं थी। लेकिन उनको मैंने किसी तरह

भेज दिया है। चाहती थी कि उनकी कोई तो चाह मुझसे पूरी हो जाए। ''दीशी की वाहर जाने की वहुत इच्छा थी।'''अव छः-आठ महीने में अपनी तनखाह में से कुछ पैसा बचाऊंगी और थोड़ा-बहुत कहीं से उधार लेकर अपने जाने का इंतजाम करूंगी।"

उसने सोच में डूबती-उतराती अपनी आंखों को सहसा सचेत कर लिया और फिर कुछ क्षण शिकायत की नज़र से मुझे देखती रही। फिर बोली, "अभी विट्टू भी बहुत छोटी है न ? छः-आठ महीने में यह बड़ी हो जाएगी और मैं भी तव तक थोड़ा और पढ़ लूंगी। दीशी की वहुत इच्छा है कि मैं एम० ए० कर लूं। मगर मैं ऐसी जड़ और नाकारा हूं कि उनकी कोई भी चाह पूरी नहीं कर पाती। इसीलिए इस बार उन्हें भेजने के लिए मैंने अपने सब गहने वेच दिए हैं। अव मेरे पास वस मेरी विट्टू है, और कुछ नहीं'।" और वह बच्ची के सिर पर हाथ फेरती हुई, भरी-भरी नज़र से उसे देखती रही।

वाहर वही सुनसान अंधेरा था, वही लगातार सुनाई देती इंजन की फक्-फक्। शीशे से आंख गड़ा लेने पर भी दूर तक वीरानगी ही वीरानगी नज़र आती थी।

मगर उस स्त्री की आंखों में जैसे दुनिया-भर की वत्सलता सिमट आई थी। वह फिर कई क्षण अपने में डूबी रही। फिर उसने एक उसांस ली और बच्ची को अच्छी तरह कम्बलों में लपेटकर सीट पर लिटा दिया।

ऊपर की वर्थ पर लेटा हुआ आदमी खुर्राटे भर रहा था। एक वार करवट वदलते हुए वह नीचे गिरने को हुआ, पर सहसा हड़बड़ाकर संभल गया। फिर कुछ ही देर में वह और ज़ोर से खुर्राटे भरने लगा।

"लोगों को जाने सफर में कैसे इतनी गहरी नींद आ जाती है!" वह स्त्री वोली, 'मुझे दो-दो रातें सफर करना हो, तो भी मैं एक पल नहीं सो पाती। अपनी-अपनी आदत होती है!"

"हां, आदत की ही वात है," मैंने कहा, "कुछ लोग वहुत निश्चिन्त होकर जीते हैं और कुछ होते हैं कि'''।"

"वगैर चिन्ता के जी ही नहीं सकते!" और वह हंस दी। उसकी हंसी का स्वर भी वच्चों जैसा ही था। उसके दांत वहुत छोटे-छोटे और चमकीले थे। मैंने भी उसकी हंसी में साथ दिया।

"मेरी बहुत खराब आदत है," वह बोली, "मैं बात-बेबात के सोचती रहती हूं। कभी-कभी तो मुझे लगता है कि मैं सोच-सोचकर पागल हो जाऊंगी। ये मुझसे कहते हैं कि मुझे लोगों से मिलना-जुलना चाहिए, खुलकर हंसना, बात करना चाहिए, मगर इनके सामने मैं ऐसे गुम-सुम हो जाती हूं कि क्या कहूं ? वैसे और लोगों से भी मैं ज्यादा बात नहीं करती लेकिन इनके सामने तो ऐसी चुप्पी छा जाती है जैसे मुंह में जबान हो ही नहीं ''।'''अब देखिए न, इस वक्त कैसे लतर-लतर बात कर रही हूं !" और वह मुसकराई। उसके चेहरे पर हल्की-सी संकोच की रेखा आ गई।

"रास्ता काटने के लिए बात करना जरूरी हो जाता है," मैंने कहा, 'खास-तौर से जब नींद न आ रही हो।"

उसकी आखें पल-भर फैली रहीं। फिर वह गरदन जरा झुकाकर बोली, "ये कहते हैं कि जिसके मुंह में जबान ही न हो, उसके साथ पूरी जिंदगी कैसे काटी जा सकती है ? ऐसे इन्सान में और एक पालतू जानवर में क्या फर्क है ? मैं हजार चाहती हूं कि इन्हें खुश दिखाई दूं और इनके सामने कोई न कोई बात करती रहूं, लेकिन मेरी सारी कोशिशें बेकार चली जाती हैं। इन्हें फिर गुस्सा आ जाता है और मैं रो देती हूं। इन्हें मेरा रोना बहुत बुरा लगता है।" कहते हुए उसकी आंखों में आंसू छलक आए, जिन्हें उसने अपनी साड़ी के पल्ले से पोंछ लिया।

"मैं बहुत पागल हूं," वह फिर बोली, "ये जितना मुझे टोकते हैं, मैं उतना ही ज्यादा रोती हूं। दरअसल ये मुझे समझ नहीं पाते। मुझे बात करना अच्छा नहीं लगता, फिर जाने क्यों ये मुझे बात करने के लिए मजबूर करते हैं ?" और फिर माथे को हाथ से दबाए हुए बोली, "आप भी अपनी पत्नी से जबर्दस्ती बात करने के लिए कहते हैं ?"

मैंने पीछे टेक लगाकर कन्धे सिकोड़ लिए और हाथ बगलों में दबाए बत्ती के पास उड़ते कीड़े को देखने लगा। फिर सिर को जरा-सा झटककर मैंने उसकी तरफ देखा। वह उत्सुक नजर से मेरी तरफ देख रही थी।

"मैं ?" मैंने मुसकराने की चेष्टा करते हुए कहा, "मुझे यह कहने का कभी मौका ही नहीं मिल पाता। मैं बल्कि पांच साल से यह चाह रहा हूं कि वह जरा कम बात किया करे। मैं समझता हूं कि कई बार इन्सान चुप रहकर

ज़्यादा बात कह सकता है। ज़बान से कही बात में वह रस नहीं होता जो आंख की चमक से या होंठों के कंपन से या माथे की एक लकीर से कही गई बात में होता है। मैं जब उसे यह समझाना चाहता हूं, तो वह मुझे विस्तारपूर्वक बता देती है कि ज़्यादा बात करना इन्सान की निश्छलता का प्रमाण है और कि मैं इतने सालों में अपने प्रति उसकी भावना को समझ ही नहीं सका! वह दरअसल कालेज में लेक्चरर है और अपनी आदत की वजह से घर में भी लेक्चर देती रहती है।"

"ओह!" वह थोड़ी देर दोनों हाथों में अपना मुंह छिपाए रही। फिर बोली, "ऐसा क्यों होता है, यह मेरी समझ में नहीं आता। मुझे दीशी से यही शिकायत है कि वे मेरी बात नहीं समझ पाते। मैं कई बार उनके बालों में अपनी उंगलियां उलझाकर उनसे बात करना चाहती हूं, कई बार उनके घुटनों पर सिर रखकर मुंदी आंखों से उनसे कितना-कुछ कहना चाहती हूं। लेकिन उन्हें यह सब अच्छा नहीं लगता। वे कहते हैं कि यह सब गुड़ियों का खेल है, उनकी पत्नी को जीता-जागता इंसान होना चाहिए। और मैं इंसान बनने की बहुत कोशिश करती हूं, लेकिन नहीं बन पाती, कभी नहीं बन पाती। इन्हें मेरी कोई आदत अच्छी नहीं लगती। मेरा मन होता है कि चांदनी रात में खेतों में घूमूं, या नदी में पैर डालकर घंटों बैठी रहूं, मगर ये कहते हैं कि ये सब आइडल मन की वृत्तियां हैं। इन्हें क्लब, संगीत-सभाएं और डिनर-पार्टियां अच्छी लगती हैं। मैं इनके साथ वहां जाती हूं तो मेरा दम घुटने लगता है। मुझे वहां ज़रा अपनापन महसूस नहीं होता। ये कहते हैं कि तू पिछले जन्म में मेंढकी थी जो तुझे क्लब में बैठने की बजाय खेतों में मेंढकों की आवाजें सुनना ज्यादा अच्छा लगता है। मैं कहती हूं कि मैं इस जन्म में भी मेंढकी हूं। मुझे बरसात में भीगना बहुत अच्छा लगता है। और भीगकर मेरा मन कुछ न कुछ गुनगुनाने को करने लगता है—हालांकि मुझे गाना नहीं आता। मुझे क्लब में सिगरेट के धुएं में घुटकर बैठे रहना नहीं अच्छा लगता। वहां मेरे प्राण गले को आने लगते हैं।"

उस थोड़े-से समय में ही मुझे उसके चेहरे का उतार-चढ़ाव काफी परिचित लगने लगा था। उसकी बात सुनते हुए मेरे मन पर हल्की उदासी छाने लगी थी, हालांकि मैं जानता था कि वह कोई भी बात मुझसे नहीं कह रही—वह

अपने से बात करना चाहती है और मेरी मौजूदगी उसके लिए सिर्फ एक बहाना है। मेरी उदासी भी उसके लिए न होकर अपने लिए थी, क्योंकि बात उससे करते हुए भी मुख्य रूप से मैं सोच अपने विषय मे रहा था। मैं पाच साल से मजिल-दर-मजिल विवाहित जीवन से गुजरता आ रहा था—रोज यही सोचते हुए कि शायद आनेवाला कल जिन्दगी के इस ढाचे को बदल देगा। सतह पर हर चीज ठीक थी, कही कुछ गलत नही था, मगर सतह से नीचे जीवन कितनी-कितनी उलझनो और गाठो से भरा था! मैंने विवाह के पहले दिनो में ही जान लिया था कि नलिनी मुझसे विवाह करके सुखी नही हो सकी, क्योंकि मैं उसकी कोई भी महत्वाकाक्षा पूरी करने मे सहायक नही हो सकता। वह एक भरा-पूरा घर चाहती थी, जिसमे उसका शासन हो और ऐसा सामाजिक जीवन जिसमे उसे महत्व का दर्जा प्राप्त हो। वह अपने से स्वतन्त्र अपने पति के मानसिक जीवन की कल्पना नहीं करती थी। उसे मेरी भटकने की वृत्ति और साधारण का मोह मानसिक विकृतिया लगती थी जिन्हें वह अपने अधिक स्वस्थ जीवन-दर्शन से दूर करना चाहती थी। उसने इस विश्वास के साथ जीवन आरम्भ किया था कि वह मेरी त्रुटियो की क्षतिपूर्ति करती हुई बहुत शीघ्र मुझे सामाजिक दृष्टि से सफल व्यक्ति बनने की दिशा में ले जाएगी। उसकी दृष्टि में यह मेरे संस्कारो का दोष था जो मैं इतना अन्तर्मुख रहता था और इधर-उधर मिल-जुलकर आगे बढ़ने का प्रयत्न नही करता था। वह इस परिस्थिति को सुधारना चाहती थी, पर परिस्थिति सुधरने की जगह बिगड़ती गई थी। वह जो कुछ चाहती थी, वह मैं नही कर पाता था और जो कुछ मैं चाहता था, वह उससे नहीं होता था। इससे हममें अक्सर चख-चख होने लगती थी और कई बार दीवारो से सिर टकराने की नौबत आ जाती थी। मगर यह सब हो चुकने पर नलिनी बहुत जल्दी स्वस्थ हो जाती थी और उसे फिर मुझसे यह शिकायत होती थी कि मैं दो दो दिन अपने को उन साधारण घटनाओं के प्रभाव से मुक्त क्यों नहीं कर पाता। मगर मैं दो-दो दिन क्या, कभी उन घटनाओं के प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाता था, और रात को जब वह सो जाती थी, तो घंटो तकिये में मुह छिपाए कराहता रहता था। नलिनी अपनी झगड़े को उतना अस्वाभाविक नही समझती थी, जितना मेरे रात-भर जागने को, और उसके लिए मुझे नर्व टॉनिक लेने की सलाह दिया करती थी। विवाह के पहले दो वर्ष इसी तरह

बीते थे और उसके बाद हम अलग-अलग जगह काम करने लगे थे। हालांकि समस्या ज्यों की त्यों बनी थी, और जब भी हम इकट्ठे होते, वही पुरानी जिन्दगी लौट आती थी, फिर भी नलिनी का यह विश्वास अभी कम नहीं हुआ था कि कभी न कभी मेरे सामाजिक संस्कारों का उदय अवश्य होगा और तब हम साथ रहकर सुखी विवाहित जीवन व्यतीत कर सकेंगे।

"आप कुछ सोच रहे हैं ?" उस स्त्री ने अपनी बच्ची के सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा।

मैंने सहसा अपने को सहेजा और कहा, "हां, मैं आप ही की बात को लेकर सोच रहा था। कुछ लोग होते हैं, जिनसे दिखावटी शिष्टाचार आसानी से नहीं ओढ़ा जाता। आप भी शायद उन्हीं लोगों में से हैं।"

"मैं नहीं जानती," वह बोली, "मगर इतना जानती हूं कि मैं बहुत-से परिचित लोगों के बीच अपने को अपरिचित, बेगाना और अनमेल अनुभव करती हूं। मुझे लगता है कि मुझमें ही कुछ कमी है। मैं इतनी बड़ी होकर भी वह कुछ नहीं जान-समझ पाई, जो लोग छुटपन में ही सीख जाते हैं। दीशी का कहना है कि मैं सामाजिक दृष्टि से बिलकुल मिसफिट हूं।"

"आप भी यही समझती हैं ?" मैंने पूछा।

"कभी समझती हू, कभी नहीं भी समझती," वह बोली, "एक खास तरह के समाज में मैं ज़रूर अपने को मिसफिट अनुभव करती हूं। मगर ··कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनके बीच जाकर मुझे बहुत अच्छा लगता है। ब्याह से पहले मैं दो-एक बार कालेज की पार्टियों के साथ पहाड़ों पर घूमने के लिए गई थी। वहां सब लोगों को मुझसे यही शिकायत होती थी कि मैं जहां बैठ जाती हूं, वहीं की हो रहती हूं। मुझे पहाड़ी बच्चे बहुत अच्छे लगते थे। मैं उनके घर के लोगों से भी बहुत जल्दी दोस्ती कर लेती थी। एक पहाड़ी परिवार की मुझे आज तक याद है। उस परिवार के बच्चे मुझसे इतना घुल-मिल गए थे कि मैं बड़ी मुश्किल से उन्हें छोड़कर उनके यहां से चल पाई थी। मैं कुल दो घंटे उन लोगों के पास रही थी। दो घंटे में मैंने उन्हें नहलाया-धुलाया भी, और उनके साथ खेलती भी रही। बहुत ही अच्छे बच्चे थे वे। हाय, उनके चेहरे इतने लाल थे कि क्या कहूं ! मैंने उनकी मां से कहा कि वह अपने छोटे लड़के किशनू को मेरे साथ भेज दे। वह हंसकर बोली कि तुम सभी को ले जाओ, यहां कौन

इसके लिए मोती रखे हैं ! यहा तो दो साल में इनकी हड्डियां निकल आएगी, वहा खा-पीकर अच्छे तो रहेंगे। मुझे उसकी बात सुनकर रुलाई आने को हुई। ...मैं अकेली होती, तो शायद कई दिनों के लिए उन लोगों के पास रह जाती। ऐसे लोगों मे जाकर मुझे बहुत अच्छा लगता है। ..अब तो आपको भी लग गया होगा कि कितनी अजीब हूं मैं ! ये कहा करते हैं कि मुझे किसी अच्छे मनोविद् से अपना विश्लेषण कराना चाहिए, नही तो किसी दिन मैं पागल होकर पहाड़ों पर भटकती फिरूगी !"

"यह तो अपनी-अपनी बनावट की बात है," मैंने कहा, "मुझे खुद आदिम संस्कारों के लोगों के बीच रहना बहुत अच्छा लगता है। मैं आज तक एक जगह घर बनाकर नही रह सका और न ही आशा है कि कभी रह सकूगा। मुझे अपनी ज़िन्दगी की जो रात सबसे ज्यादा याद आती है, वह रात मैंने पहाड़ी गूजरों की एक बस्ती मे बिताई थी। उस रात उस बस्ती मे एक ब्याह था, इसलिए सारी रात वे लोग शराब पीते और नाचते-गाते रहे। मुझे बहुत हैरानी हुई जब मुझे बताया गया कि वही गूजर दस-दस रुपये के लिए आदमी का खून भी कर देते हैं !"

"आपको सचमुच इस तरह की ज़िन्दगी अच्छी लगती है ?" उसने कुछ आश्चर्य और अविश्वास के साथ पूछा।

'आपको शायद खुशी हो रही है कि पागल होने की उम्मीदवार आप अकेली ही नहीं हैं," मैंने मुसकराकर कहा। वह भी मुसकराई। उसकी आंखें सहसा भावनापूर्ण हो उठीं। उस एक क्षण मे मुझे उन आखो मे न जाने कितना-कुछ दिखाई दिया—करुणा, क्षोभ, ममता, आर्द्रता, ग्लानि, भय, असमंजस और स्नेह ! उसके होंठ कुछ कहने के लिए कांपे, लेकिन कांपकर ही रह गए। मैं भी चुपचाप उसे देखता रहा। कुछ क्षणो के लिए मुझे महसूस हुआ कि मेरा दिमाग बिलकुल खाली है और मुझे पता नहीं कि मैं क्या कर रहा था और आगे क्या कहना चाहता था। सहसा उसकी आंखो में फिर वही सूनापन भरने लगा और क्षण-भर मे ही वह इतना बढ़ गया कि मैंने उसकी तरफ से आंखें हटा लीं।

बत्ती के पास उड़ता कीड़ा उसके साथ सटकर झुलस गया था।

बच्ची नींद में मुसकरा रही थी।

खिड़की के शीशे पर इतनी धुंध जम गई थी कि उसमें अपना चेहरा भी दिखाई नहीं देता था।

गाड़ी की रफ्तार धीमी हो रही थी। कोई स्टेशन आ रहा था। दो-एक बत्तियां तेज़ी से निकल गई। मैंने खिड़की का शीशा उठा दिया। बाहर से आती बर्फानी हवा के स्पर्श ने स्नायुओं को थोड़ा सचेत कर दिया। गाड़ी एक बहुत नीचे प्लेटफार्म के पास आकर खड़ी हो रही थी।

"यहां कहीं थोड़ा पानी मिल जाएगा ?"

मैंने चौंककर देखा कि वह अपनी टोकरी में से कांच का गिलास निकालकर अनिश्चित भाव से हाथ में लिए है। उसके चेहरे की रेखाएं पहले से गहरी हो गई थीं।

"पानी आपको पीने के लिए चाहिए ?" मैंने पूछा।

"हां। कुल्ला करूंगी और पिऊंगी भी। न जाने क्यों होंठ कुछ चिपक-से रहे हैं। बाहर इतनी ठंड है, फिर भी···।"

"देखता हूं, अगर यहां कोई नल-वल हो, तो···।"

मैंने गिलास उसके हाथ से ले लिया और जल्दी से प्लेटफार्म पर उतर गया। न जाने कैसा मनहूस स्टेशन था कि कहीं पर भी कोई इन्सान नजर नहीं आ रहा था। प्लेटफार्म पर पहुंचते ही हवा के झोंकों से हाथ-पैर सुन्न होने लगे। मैंने कोट के कालर ऊंचे कर लिए। प्लेटफार्म के जंगले के बाहर से फैलकर ऊपर आए दो-एक पेड़ हवा में सरसरा रहे थे। इंजन के भाप छोड़ने से लम्बी शूं-ऊं की आवाज़ सुनाई दे रही थी। शायद वहां गाड़ी सिग्नल न मिलने की वजह से रुक गई थी।

दूर कई डिब्बे पीछे एक नल दिखाई दिया, तो मैं तेजी से उस तरफ चल दिया। ईंटों के प्लेटफार्म पर अपने जूते का शब्द मुझे बहुत अजीब-सा लगा। मैंने चलते-चलते गाड़ी की तरफ देखा। किसी खिड़की से कोई चेहरा बाहर नहीं झांक रहा था। मैं नल के पास जाकर गिलास में पानी भरने लगा। तभी हल्की-सी सीटी देकर गाड़ी एक झटके के साथ चल पड़ी। मैं भरा हुआ पानी का गिलास लिए अपने डिब्बे की तरफ दौड़ा। दौड़ते हुए मुझे लगा कि मैं उस डिब्बे तक नहीं पहुंच पाऊंगा और सर्दी में उस अंधेरे और सुनसान प्लेटफार्म पर ही मुझे बिना सामान के रात बितानी होगी। यह सोचकर मैं और तेज दौड़ने लगा। किसी

गह अपने डिब्बे के बराबर पहुंच गया। दरवाज़ा खुला था और वह दरवाज़े के पास खड़ी थी। उसने हाथ बढ़ाकर गिलास मुझसे ले लिया। फुटबोर्ड पर चढ़ते हुए एक बार मेरा पैर ज़रा-सा फिसला, मगर अगले ही क्षण मैं स्थिर होकर खड़ा हो गया। इंजन तेज़ होने की कोशिश में हल्के हल्के झटके दे रहा था और ईंटों के प्लेटफार्म की जगह अब नीचे अस्पष्ट गहराई दिखाई देने लगी थी।

"अन्दर आ जाइए," उसके ये शब्द सुनकर मुझे एहसास हुआ कि मुझे फुटबोर्ड से आगे भी कहीं जाना है। डिब्बे के अन्दर कदम रखा, तो मेरे घुटने ज़रा-ज़रा कांप रहे थे।

अपनी जगह पर आकर मैंने टांगें सीधी करके पीछे टेक लगा ली। कुछ पल बाद आंखें खोलीं तो लगा कि वह इस बीच मुंह धो आई है। फिर भी उसके चेहरे पर मुर्दनी-सी छा रही थी। मेरे होंठ सूख रहे थे, फिर भी मैं थोड़ा मुसकराया।

"क्या बात है, आपका चेहरा ऐसा क्यों हो रहा है?" मैंने पूछा।

"मैं कितनी मनहूस हूं ··," कहकर उसने अपना निचला होंठ ज़रा-सा काट लिया।

"क्यों?"

"अभी मेरी वजह से आपको कुछ हो जाता···।"

"यह खूब सोचा आपने!"

"नहीं। मैं हू ही ऐसी ," वह बोली, "ज़िन्दगी मे हर एक को दुख ही दिया है। अगर कहीं आप न चढ़ पाते···।"

"तो?"

"तो?" उसने होंठ ज़रा सिकोड़े, "तो मुझे पता नहीं···पर···।"

उसने खामोश रहकर आंखें झुका लीं। मैंने देखा कि उसकी सांस जल्दी-जल्दी चल रही है। महसूस किया कि वास्तविक संकट की अपेक्षा कल्पना का संकट कितना बड़ा और खतरनाक होता है। शीशा उठा रहने से खिड़की से ठण्डी हवा आ रही थी। मैंने खींचकर शीशा नीचे कर दिया।

"आप क्यों गए थे पानी लाने के लिए? आपने मना क्यों नहीं कर दिया?" उसने पूछा।

उसके पूछने के लहजे से मुझे हंसी आ गई।

"आप ही ने तो कहा था•••।"

"मैं तो मूर्ख हूं, कुछ भी कह देती हूं। आपको तो सोचना चाहिए था।"

'अच्छा, मैं अपनी गलती मान लेता हूं।"

इससे उसके मुरझाए होंठों पर भी मुसकराहट आ गई।

"आप भी कहेंगे, कैसी लड़की है," उसने आन्तरिक भाव के साथ कहा। "सच कहती हूं, मुझे ज़रा अक्ल नहीं है। इतनी बड़ी हो गई हूं, पर अक्ल रत्ती-भर नहीं है—सच!"

मैं फिर हंस दिया।

"आप हंस क्यों रहे हैं?" उसके स्वर में फिर शिकायत का स्पर्श आ गया।

"मुझे हंसने की आदत है!" मैंने कहा।

"हंसना अच्छी आदत नहीं है।"

मुझे इसपर फिर हंसी आ गई।

वह शिकायत-भरी नज़र से मुझे देखती रही।

गाड़ी की रफ्तार फिर तेज़ हो गई थी। ऊपर की वर्थ पर लेटा आदमी सहसा हड़वड़ाकर उठ वैठा और ज़ोर-ज़ोर से खांसने लगा। खांसी का दौरा शान्त होने पर उसने कुछ पल छाती को हाथ से दवाए रखा, फिर भारी आवाज में पूछा, "क्या वजा है?"

"पौने वारह," मैंने उसकी तरफ देखकर उत्तर दिया।

"कुल पौने वारह?" उसने निराश स्वर में कहा और फिर लेट गया। कुछ ही देर में वह फिर खुर्राटे भरने लगा।

"आप भी थोड़ी देर सो जाइए।" वह पीछे टेक लगाए शायद कुछ सोच रही थी या केवल देख रही थी।

"आपको नींद आ रही है, आप सो जाइए," मैंने कहा।

"मैंने आपसे कहा था न मुझे गाड़ी में नींद नहीं आती। आप सो जाइए।"

मैंने लेटकर कम्वल ले लिया। मेरी आंखें देर तक ऊपर की वत्ती को देखती रहीं जिसके साथ झुलसा हुआ कीड़ा चिपककर रह गया था।

"रज़ाई भी ले लीजिए, काफी ठंड है," उसने कहा।

"नहीं, अभी जरूरत नहीं है। मैं गरम-से गरम कपड़े पहने हूं।"

"ले लीजिए, नहीं बाद में ठिठुरते रहिएगा।"

"नहीं, ठिठुरूंगा नहीं," मैंने कम्बल गले तक लपेटते हुए कहा, "और थोड़ी-थोड़ी ठंड महसूस होती रहे, तो अच्छा लगता है।"

"बत्ती बुझा दूं?" कुछ देर बाद उसने पूछा।

"नहीं, रहने दीजिए।"

"नहीं, बुझा देती हूं। ठीक से सो जाइए।" और उसने उठकर बत्ती बुझा दी। मैं काफी देर अंधेरे में छत की तरफ देखता रहा। फिर मुझे नींद आने लगी।

शायद रात आधी से ज्यादा बीत चुकी थी, जब इंजन के भोंपू की आवाज से मेरी नींद खुली। वह आवाज कुछ ऐसी भारी थी कि मेरे सारे शरीर में एक झुरझुरी-सी भर गई। पिछले किसी स्टेशन पर इंजन बदल गया था।

गाड़ी धीरे-धीरे चलने लगी तो मैंने सिर थोड़ा ऊंचा उठाया। सामने की सीट खाली थी। वह स्त्री न जाने किस स्टेशन पर उतर गई थी। इसी स्टेशन पर न उतरी हो, यह सोचकर मैंने खिड़की का शीशा उठा दिया और बाहर देखा। प्लेटफार्म बहुत पीछे रह गया था और बत्तियों की कतार के सिवा कुछ साफ दिखाई नहीं दे रहा था। मैंने शीशा फिर नीचे खींच लिया। अन्दर की बत्ती अब भी बुझी हुई थी। बिस्तर में नीचे को सरकते हुए मैंने देखा कि कम्बल के अलावा मैं अपनी रजाई भी लिए हूं जिसे अच्छी तरह कम्बल के साथ मिला दिया गया है। गरमी की कई-एक सिहरनें एक साथ शरीर में भर गईं।

ऊपर की बर्थ पर लेटा आदमी अब भी उसी तरह जोर-जोर से खुर्राटे भर रहा था।

मरुस्थल

मरुस्थल अर्थात् रेत और गुवार का देश। मगर उससे रूखा एक और भी मरुस्थल है।

मेरे कमरे का वातावरण बहुत रूखा और बोझिल है। घड़ी में केवल घंटे की सूई है और जीवन उसीके हिसाब से चलता है। हर चीज जैसे अंगड़ाइयां ले रही है। किताबें शेल्फ में सो जाना चाहती हैं, दरी फर्श पर बेसुध-सी ऊंघ रही है। बाहर जहां तक आंख जाती है, रेत ही रेत फैली है। रेत के बवंडर बार-बार खिड़की के किवाड़ों से आ टकराते हैं। हवा हू-हू की आवाज करती हुई बार-बार किवाड़ों को हिला जाती है।

उधर साथ के कमरे में इन्दु बेताब करवटें ले रही है।

रतनाडा रोड का यह बंगला जोधपुर शहर से दो मील के फासले पर है। बंगले में हम दस व्यक्ति रहते हैं और सबका परिचय अपने इस दायरे तक ही सीमित है। काम अलग-अलग होते हुए भी हम सबका पेशा एक है—सब राजस्थान फिल्म कार्पोरेशन में नौकर हैं। नसीम और सकीना कभी वेश्याएं थीं, अब अभिनेत्रियां कहलाती हैं। धनपतराय कभी थियेटर में पर्दे खींचता था, आज फिल्म कार्पोरेशन का मैनेजिंग डायरेक्टर है। शंकर, शर्मा और लतीफ तीनों एक्टर हैं। इन्दु नसीम की बेटी है। धनपतराय उसका बाप है। सकीना उसकी छोटी मां अर्थात् मां की बहन है।

इन्दु छटपटा रही है, नसीम अपने कमरे मे घुटकर रो रही है, सकीना उसे दिलासा दे रही है और धनपतराय अपने कमरे मे शराब पी रहा है। बाकी लोग बड़े कमरे में बैठकर ताश खेल रहे हैं।

जब मैं पहले-पहल आया तो यह सारा घर नसीम और सकीना के कहकहों से गूंजा करता था। वे दोनो मिलकर ऐसे हंसती थी, जैसे खोटी चांदी के बहुत-से सिक्के एक साथ खनखनाए जा रहे हो। दोनो बहनें दिन-भर बरामदे मे आवारा घूमती रहती थी। अब कई दिनो से अपने कमरे के बाहर उनकी सूरत भी नजर नही आती।

इन्दु बिलकुल मेरे साथ के कमरे में है, इसलिए उसकी हर कराहट मुझे सुनाई दे जाती है। शुरू-शुरू मे वह सारा दिन मेरे कमरे मे आकर चहकती रहती थी। इस बंगले मे आने पर, पहले दिन से वह मुझसे बहुत हिलमिल गई थी। हर रोज चार-छ: बार आकर वह मेरा दरवाजा खटखटाती—'इन्दु बाई अन्दर आ सकती है?'

और अपने-आप 'हा, आ सकती है' कहकर वह अन्दर आ जाती। फिर वह बैठकर देर-देर तक बताती रहती थी कि दिल्ली और कलकत्ते में उसकी कौन-कौन सहेलियां हैं, उसे दिल्ली शहर और शहरों की अपेक्षा क्यों ज्यादा अच्छा लगता है और जब वह बड़ी होगी तो अपनी कोठी किस ढग की बनवाएगी। वह कभी मुझे अपने साथ खेलने के लिए मजबूर करती। कभी मुझे नाचकर दिखाती और कभी मेरे गले में बाहें डालकर सौ-सौ तरह के सवाल पूछती। बंगले के लोगों मे उसे ही मुझमें सबसे ज्यादा दिलचस्पी थी और मेरा ज्यादातर समय उसीके साथ बीतता था।

उस दिन बाहर बहुत जोर के बवंडर उठ रहे थे, जब इन्दु ने रोज की तरह दरवाजा खटखटाया, "इन्दु बाई अन्दर आ सकती है?" और दरवाजा खोलकर वह अन्दर आ गई। उसके पीछे-पीछे एक अपरिचित युवक भी कमरे मे आ गया। इन्दु ने उसका परिचय दिया, "ये गोपाल बाबू हैं, आपसे मिलने आए है।"

गोपाल ने पहले सारे कमरे मे नजर दौड़ाकर देखा, फिर अनुगृहीत करने के ढग से मेरी ओर हाथ बढ़ा दिया। मेरे कहने पर वह पल-भर के लिए कुर्सी पर बैठ गया और बड़े आदमियो की तरह दो बातें करके, मतलब कम होने की

शिकायत करता हुआ चला गया। उसके चले जाने पर इन्दु मेरी गोद में आ बैठी और बोली, "इस आदमी से हमको डर लगता है। यह हमको बहुत घूर-घूरकर देखता है।"

"मैं भी तो तुझे घूर-घूरकर देखता हूं, तुझे मुझसे डर नहीं लगता ?" मैंने मुसकराकर पूछा।

"तुम इसकी तरह थोड़े ही देखते हो ?" वह बोली, "यह तो ऐसे देखना है जैसे मैं कोई तसवीर हूं। यह बाबूजी का दोस्त है और अम्मीं के साथ आजकल बहुत घुलकर बातें किया करता है। आज यह अम्मीं से एक बहुत बुरी बात कहता था।"

पहले उसने वह बात नहीं बताई। मेरे बहुत पूछने पर बहुत धीरे-से बोली, "अम्मीं से कहता था कि तू क्यों धनपतराय के साथ जिन्दगी खराब करती है ? मैं होटल खोलता हूं, तू मेरे साथ चलकर काम कर, हम लाखों रुपया कमाएंगे। फिर हमारी तरफ देखकर बोला—अच्छा, तू इन्दु को मेरे हवाले कर दे, उसका जो तू चाहे ले ले। मैं तो ऐसी बात पर इसके थप्पड़ मारती, मगर अम्मी चुपचाप सुनकर हंसती रही।"

मैंने उसके सिर को थपथपाया और कहा, "पगली, वह मज़ाक करता होगा।"

"नहीं जी, मज़ाक की बात और होती है, हमको सब पता है," और फिर आवाज़ और भी धीमी करके बोली, "अम्मीं वैसे तो हमको पीटती है, पर उसके सामने ऐसे तारीफ करती थी जैसे सचमुच हमको बेचना ही हो।"

नौ बरस की इन्दु सचमुच बहुत कुछ जानती थी। गोपाल वाकई नसीम पर डोरे डाल रहा था और नसीम उनमें उलझ रही थी। गोपाल के बायल के कुर्ते की जेब में सौ-सौ के नोट चमकते रहते थे जिनके बल पर उसे लखपती होने का दावा था। नसीम के सौदे में उसकी आंख ज्यादा इन्दु पर ही थी। एक दिन वह खूब पिए हुए मेरे कमरे में आ गया। नशे की बहक में उसने सारी बात मेरे सामने उगल दी। वह बम्बई में होटल खोलने की सोच रहा था, जिससे उसे लाखों की आमदनी की आशा थी। उसने उल्लास से झूमते हुए कहा, "देखना, चार दिन में वह धनपत के मुंह पर थूककर मेरे साथ चली जाएगी। उसने मेरे साथ पक्का वायदा कर लिया है।"

फिर वह काफी देर मिलें और कारखाने चलाने के प्रोग्राम बनाता रहा, और अन्त मे ठंडे पानी का गिलास पीकर चला गया।

धनपतराय गोपाल की चाल न समझता हो, ऐसा नही था। वह बहुत खुर्राट आदमी है और अपने-आपको बहुत कुछ समझता भी है। वैसे उसके हाथ-पैर भी काफी मजबूत हैं। पचपन बरस का होकर भी वह बात-बात मे जवानी की कसम खाकर पुरुषत्व की डीग मारता है। गोपाल से उसने कुछ नही कहा, लेकिन एक दिन नसीम की लगामे खीच दी। नसीम दो-चार दिन गोपाल से दूर-दूर रही। मगर वास्तव मे इसमे भी गोपाल की योजना ही काम कर रही थी।

एक दिन इन्दु ताश का एक पैकेट मुझे दिखाने के लिए लाई। मेरे कन्धे के साथ सटकर वह धीरे-से बोली "बाबूजी, आज बाहर गए हुए हैं न, अम्मी ने गोपाल को आज फिर बुलाया है। आज वो कमरे मे बैठ धीरे-धीरे बात कर रहे हैं।"

"तू यह ताश कहां से लाई है?" मैंने बात बदलने के लिए पूछा।

"वही गोपाल लेकर आया है। हमने पहले नही लिए तो अम्मी हमको डाटने लगी। फिर हमने ले लिए तो हमसे कहा कि बाहर जाकर खेलो। गोपाल कहता था कि कल तेरे लिए छोटा पियानो लेकर आऊगा।"

"अच्छा?" मैंने कहा, "यह ताश तो वह बहुत बढ़िया लाया ..."

"बढ़िया हो चाहे कैसा हो, हम यह ताश नही खेलेंगे," इन्दु हठ और तिरस्कार के साथ बोली, "वह पियानो लाएगा तो हम उसका पियानो भी नही बजाएंगे।"

"क्यो, उससे लड़ाई हो गई है?"

"अम्मी आज फिर उसके साथ बम्बई जाने की सलाह बना रही हैं।"

"सच?"

"सच नहीं तो क्या? अम्मी कहती थी कि बाबूजी हमें पैसा नहीं देते। वह बोला कि चलकर दो-चार साल तू आप कमा ले, फिर तेरी इन्दु लाखो की हो जाएगी।"

मैं उसे बाहों मे लिए हुए पुचकार उसके बालों के साथ खेलता रहा। कुछ रुककर वह फिर बोली, "मैं बड़ी होकर डाक्टरी पढ़ूंगी। मेरी सहेली की बड़ी

बहन डाक्टरी पढ़ती है।"

मैंने उस समय लक्षित किया कि उसका चेहरा पहले से कुछ पीला पड़ गया है और उसके गोरे गालों पर बारीक नीली धारियां उभर आई हैं। वह उस दिन काफी देर तक मेरे पास बैठकर मुझसे बातें करती रही। मैं उसे बाहर-बाहर से बहलाने के लिए अपना एलबम दिखलाने लगा। एलबम में मेरे एक मित्र के ब्याह के समय की तसवीर को वह देर तक देखती रही। फिर उसने पूछा, "ये कौन हैं ?"

"यह मेरा दोस्त है और यह उसीकी बीबी है," मैंने कहा।

"आप भी अपने ब्याह के दिन ऐसी फोटो खिचवाएंगे ?" उसने फिर पूछा।

मैं पल-भर उसके मासूम चेहरे को देखता रहा। फिर मैंने कहा, "मेरा ब्याह पता नहीं होगा कि नहीं, पर जिस दिन तेरा ब्याह होगा, उस दिन तेरी जरूर ऐसी तसवीर खिचेगी।"

'हिश् !" वह बोली, "हम तो डाक्टरी पढ़ेंगे, हम ब्याह थोड़े ही करवाएंगे ?"

कुछ देर वह चुपचाप एलबम के पन्ने उलटती रही। फिर उसने पूछा, "अच्छा आप बताइए मैं हिन्दू हूं कि मुसलमान ?"

"तेरा नाम क्या है ?" मैं उसे बहलाने लगा।

"इन्दु।"

"तो तू हिन्दू है।"

"नाम से क्या होता है ?" वह बोली, "बाबूजी हिन्दू हैं और अम्मीं मुसलमान हैं। मैं न हिन्दू हूं न मुसलमान।"

"नहीं है तो न सही। हिन्दू-मुसलमान होने से क्या होता है ?"

"अब तो नहीं होता, पर जब मैं बड़ी हो जाऊंगी, तब तो होगा।"

"क्या होगा ?"

"यह आप अपने-आप समझ लें। हम नहीं बताएंगे।"

मैंने उसे अपने साथ सटा लिया और कहा, "क्या होगा ? कुछ नहीं होगा। तू तो बिलकुल पागल लड़की है।"

और मैं देर तक उसके बालों में हाथ फेरता रहा।

मगर उसी रात नंगी वास्तविकता पर्दे से बाहर आ गई।

खा गया ।

उस रात की घटना के बाद से ही नसीम का लापरवाही से घूमना बंद हो गया । तब से वह बहुत तत्परता के साथ धनपतराय के हर आदेश का पालन करने लगी । आप उसका खाना लगाती, और जब उसकी बुलाहट होती तो शराब की बोतल लेकर चुपचाप उसके कमरे में चली जाती । उसका चेहरा भी पहले से बदलने लगा । चेहरे की सुर्खी धोने पर ऐसा लगता जैसे उसे यरकान हो रहा हो । लिपस्टिक के नीचे उसके होंठों की पपड़ियां छिप नहीं पातीं । वह दिन-भर कमरे में बन्द रहती और शाम को कभी-कभी बंगले से दूर टहलने चली जाती ।

उस घटना के कुछ ही दिन बाद एक दिन धनपतराय ने दो बड़े-बड़े सेठों को चाय पर बुलाया । चाय की टेबुल पर नसीम और सकीना मेजबान थीं । दोनों सेठ सफेद खद्दर में सजे हुए, पान चबाते हुए बैठे थे । इन्दु भड़कीली फ्राक पहने धनपतराय की गोद में बैठी हुई गुड़िया की तरह उन लोगों की तरफ देख रही थी । सुना गया था कि वे सेठ कम्पनी में दो लाख रुपया लगाएंगे ।

बात चलते-चलते इन्दु पर आ गई और धनपतराय सेठों को उसकी मार्केट वैल्यू समझाने लगा । वह इन्दु का इस तरह बखान करने लगा जैसे एक जीवित बच्ची की नहीं, एक पुतली की बात कर रहा हो और कह रहा हो कि मैं इस पुतली को जैसे चाहूं नचा सकता हूं; इसे नचाने के लिए किसी तार की जरूरत नहीं, मेरे हाथ में तिजुर्बा है, चौबीस साल का तिजुर्बा । सेठ लोग इन्दु को देखते हुए सिर हिलाते रहे । धनपतराय ने उन्हें विदा करते समय शीघ्र ही एक दिन वेरायटी शो रखने और उन्हें इन्दु की कला दिखाने का वायदा किया ।

सेठों की सुविधा को देखते हुए इसके लिए इतवार का दिन निश्चित हुआ । बंगले के वातावरण में उस एक दिन के लिए काफी हलचल भर गई ।

इन्दु पैर में घुंघरू बांधे हुए बरामदे में घूम रही थी । मैं उसकी बांह पकड़कर उसे बरामदे से अपने कमरे में ले आया । वह खुशबू से महक रही थी । आसमानी रंग के रेशमी फ्राक के साथ उसके बालों में बंधा हुआ सुनहरा रिबन बहुत खिल रहा था । मगर उसकी बड़ी-बड़ी आंखें जैसे बरसने को हो रही थीं । मैंने उसे हाथों में उठा लिया और कहा, "इन्दु, आज तो तू बिलकुल परी लग रही है !"

दो आंसू ढुलककर इन्दु के गालों पर आ गए। मैं उसे सोफे पर बिठाकर उसके पास बैठ गया। वह सोफे की बाह पर सिर रखकर सुबकने लगी। मैंने उसे थपथपाकर कहा, "क्या बात है पगली, रोती क्यों है?"

इन्दु ने सोफे की बाह से सिर हटाकर मेरी छाती में मुह छिपा लिया और उसी तरह सुबकती हुई बोली, "आप आज मुझे दिल्ली ले चलिए। मेरी वहा एक सहेली है, मुझे उसके घर छोड़ आइए।"

"कौन सहेली है तेरी वहां?"

"कमला का घर वहा है। मैं कमला के घर रहूगी। मैं यहा नही नाचूगी।"

"क्यों नाचने मे क्या है?" मैंने चुमकारकर उसके गालों को थपथपाया और कहा, "तुझे इतना अच्छा तो नाचना आता है। आज इतने बड़े-बड़े लोग तेरा नाच देखने आएंगे। आज तो तुझे कितने ही इनाम मिलेंगे।"

इन्दु ने सिर उठाकर मेरी ओर देखा और बोली, "हमने लोगों से इनाम लेने के लिए थोड़े ही नाचना सीखा है? कमला को भी नाचना आता है। पर वह तो अपने घर में ही नाचती है। मैं कोई तमाशा हूं?"

उसके होंठ कांपने लगे और आंखें जल्दी-जल्दी झपकती रहीं।

"तू आज अकेली थोड़े ही नाचेगी।" मैंने रूमाल से उसकी आखें पोंछते हुए कहा, "तेरी अम्मी भी तो नाचेगी।"

"अम्मी तो थियेटर में भी नाचती थी," वह बोली, "पता है, लोग उनको क्या-क्या कहते हैं? मैं नाचूगी तो वही बातें मुझको भी कहेंगे।"

"नहीं, नहीं तुझको कैसे कहेंगे? इन्दु रानी को भला कोई कुछ कह सकता है?"

"क्यों नहीं कह सकता?" वह उसी तरह कापते हुए होंठों से बोली, "शंकर अभी-अभी शर्मा से कह रहा था कि यह लड़की बड़ी होकर अपनी मां को भी मात करेगी।"

"शंकर यह कह रहा था?"

"हां, शंकर शर्मा से कह रहा था और शर्मा उससे बोला कि हां, रंडी की औलाद है, रंडियों के तो खून में नखरा होता है।"

और कुछ क्षण चुपचाप आंखें झपकाकर उसने पूछा, "आप बताइए, मैं रंडी हूं?"

मैंने उसकी ठुड्डी हाथ से उठाकर उसका माथा चूम लिया और कहा, "जो ऐसी बात कहता है, उसकी अपनी ज़बान गंदी होती है। तू ऐसी बात सुनती ही क्यों है ?" और मैंने फिर रूमाल से उसकी आंखें पोंछ दीं।

उस रात काफी देर तक चहल-पहल रही। खाना हो चुकने पर पहले धनपतराय ने एक गीत गाया। फिर नसीम और सकीना के गीत और नसीम का एक नाच हुआ। उसके बाद इन्दु ने बादल में चमकती हुई बिजली का नृत्य किया। वह थिरकती हुई जब बांहें फैलाती तो नेपथ्य में बादल का गर्जन सुनाई देता। फिर वह सहमी-सी सिमटने लगती। जब उसने वह नृत्य समाप्त किया तो बहुत देर तक तालियों का शोर सुनाई देता रहा।

मैंने मेकअप के कमरे में जाकर उसे शाबाशी दी और पूछा, "बता, तुझे इसके लिए क्या इनाम दूं?"

"कुछ नहीं, तुम यहां हमारे पास बैठो, बस !" वह बोली, "हमसे कहीं कुछ खराब तो नहीं हुआ ?"

"नहीं। क्यों ?" मैंने देखा कि उसकी आंखों का भाव कुछ और-सा हो रहा है।

"हमसे रिहर्सल में थोड़ा बिगड़ गया था तो बाबूजी ने थप्पड़ मारा था।" उसने पुतलियों को फैलाकर और पलकें जल्दी-जल्दी झपकाकर उमड़ते हुए आंसुओं को वापस लौटा देने की चेष्टा की और उस चेष्टा को कामयाब बनाने के लिए हंसने लगी।

दूसरी बार वह फूलों की रानी बनकर आई। उसे सिर से पैर तक फूलों से लादा गया था। वह एक हाथ में एक फूलों से भरी हुई डाली लिए थी और दूसरे हाथ में फूलों के गजरे। उसे उस रूप में देखकर सेठ लोगों के सिर ज़रा-ज़रा हिले। धनपतराय के चेहरे पर चमक आ गई। इन्दु ने नाचना आरम्भ किया।

धीरे-धीरे तबले के साथ उसके पैरों की तेज़ी बढ़ने लगी। उसके पैर ताल के अनुसार ठीक पड़ तो रहे थे, मगर शायद उससे फूलों का बोझ संभाला नहीं जा रहा था, या शायद उसका ध्यान कहीं और हट गया था...मैंने लक्षित किया कि वह दो-एक जगह बीच में उखड़ गई है। अगले ही क्षण यह निश्चय करना कठिन हो गया कि वह डगमगा रही है या नाच रही है...बस उसकी बांहें हि

रही थीं और कदम चल रहे थे ! आखिर उसके पैर उखड़ गए और फूलों की डाली और गजरे उसके हाथ से गिर गए। इन्दु गिरने को हुई लेकिन सभल गई, मगर संभलती-सभलती फिसलकर गिर गई।

बाजे रुक गए। पल-भर के लिए खामोशी छाई रही।

ऐसे अवसर पर धनपतराय का तिजुर्बा काम आ गया। वह उसी क्षण मंच पर पहुंच गया और गिरी हुई इन्दु को बाहों में उठाकर मुसकराता हुआ उपस्थित लोगों को सलाम देने लगा। बाजे बजने लगे और ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ पीटने लगे, जैसे इन्दु का गिरना भी तमाशा ही था। जैसे तालियों के शोर में गुदगुदाई जाकर भी वह धनपतराय की बाहों पर पड़ी हुई अपना अभिनय ही पूरा कर रही थी। धनपतराय बाहें हिला-हिलाकर सलाम देता रहा और लोग तालियां पीट-पीटकर उसका अभिनन्दन करते रहे…।

आज उस बात को आठ दिन हो गए हैं। इन्दु की बेहोशी तो दूसरे दिन दूर हो गई थी, मगर उसका बुखार अभी तक नहीं उतरा। सात दिन में उसके शरीर की हड्डियां निकल आई हैं। बुखार के दबाव में जब वह आंखें उघाड़कर देखती है तो उससे आंखें देखी नहीं जातीं। उसके सामने से हट जाने पर भी वे आंखें बार-बार सामने आकर यह सवाल पूछती हैं, "मैं रंडी हूं ? आप बताइए, मैं रंडी हूं ?"

धनपतराय के कमरे में उसका दौर अभी तक चल रहा है। सबीना नसीम के पास से उठकर धनपतराय के कमरे में चली गई है।

इधर बड़े कमरे में शंकर और रफीक ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहे हैं। उन्होंने शानदार ताश की बाज़ी जीत ली है।

भूरेव

पहली बार उस महिला को मैंने शिमले की मालरोड पर देखा था।

तब वह शिमले में नई ही आई थी। शिमले में नये आनेवाले लोग, यदि उनमें कुछ भी विशेषता हो, तो बहुत जल्दी पहचाने जाते हैं, और मेरे दोस्त सतीश जैसे लोग चार-छः दिनों में ही उनकी आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक स्थिति का पूरा ब्योरा भी ढूंढ निकालते हैं। सतीश यह सब पता किस प्रकार पा लेता था यह मैं नहीं कह सकता, अलबत्ता इतना जरूर है कि उसकी बात कभी गलत नहीं निकलती थी। इसीलिए हम उसे चलता-फिरता एन्साइक्लोपीडिया कहा करते थे। जिस समय हमने उस महिला को पहली बार देखा उसी समय मैंने सोच लिया था कि सतीश जरूर उसकी खोज-खबर निकालेगा। वह सुन्दर तो थी ही पर उससे भी बड़ी बात यह थी कि भारतीय न होने पर भी उसके शरीर पर सलवार-कमीज़ बहुत खिल रही थी। वैसे तो मालरोड पर कोई न कोई अंग्रेज़ या एंग्लो-इण्डियन लड़की गाहे-बगाहे सलवार-कमीज पहने नजर आ जाती थी, पर अक्सर उसके शरीर पर वे वस्त्र पराये-से लगते थे। शायद उनके कन्धों की बनावट ज़रा भिन्न होती है या शायद उनका बांहें हिलाने का अन्दाज जरा और-सा होता है। पर वह उन वस्त्रों में उसी स्वाभाविक ढंग से चल रही थी जैसे पंजाबी लड़कियां चलती हैं। उसकी उम्र तीस-बत्तीस वर्ष के लगभग होगी पर उसका शरीर जरा भी नहीं ढला था और

पहली नजर में तो वह बीस-बाईस वर्ष की ही प्रतीत होती थी। उसकी आखें नीली थी और बाल घुघराले और सुनहरे थे। उसका पाच-छः वर्ष का बच्चा उसके साथ था जो खूब गोरा-चिट्टा था और लाल और सफेद ऊन के वस्त्रो मे और भी सुन्दर लगता था। वह मा से अग्रेजी मे पूछ रहा था, "ममी, शिमला कौन-सी जगह का नाम है ?" और वह उसे समझा रही थी कि वह सारा शहर ही शिमला है, उनके घर से बहुत आगे तक।

"यह सड़क भी शिमला है ?"

"हां, यह भी शिमला है।"

"और यह बर्फवाला पहाड़ भी ?"

"नही, वह शिमला नही है।"

"वह शिमला क्यो नही है ?"

और वह उसे समझाने लगी कि वह पहाड वहा से बहुत दूर है और शिमला का विस्तार उतनी दूर तक नही है।

"खूब चीज है !" उसके पास से निकल जाने पर सतीश ने कहा।

और मुझे उसी समय निश्चय हो गया कि सतीश उसका इतिहास जानने में जरूर दिलचस्पी लेगा।

और सचमुच एक दिन बाद रिज से ऊपर 'दो पैसा बेंच' पर बैठे हुए उसने मुझे उसका पूरा इतिहास सुना दिया।

लगभग सात वर्ष पहले सत्यपाल नामक एक पंजाबी युवक, जे० जे० स्कूल आफ आर्ट से चित्रकला मे डिप्लोमा लेकर, आगे और विशेष अध्ययन करने के उद्देश्य से, अपने मित्रो से डेढ हजार रुपया उधार लेकर फ्रास चला गया था। वहा रहकर छ महीने उसने किसी तरह निकाल लिए, परन्तु उसके बाद गुजारा करना कठिन हो गया तो वह काम करके कुछ पैसे बनाने के इरादे से इगलैण्ड चला आया। वहां वह एक जूता बनाने के कारखाने में कुछ दिन चमडा साफ करने का काम करता रहा। वहा काम करते हुए ही उसका एवलीन वार्कर से परिचय हुआ जो कारखाने के एक क्लर्क फ्रेड बार्कर की चचेरी बहन थी और कभी-कभी उससे मिलने आया करती थी। फ्रेड बार्कर को भी चित्रकला का थोडा शौक था और वह उसे अपने पेंसिल के खाके दिखाने के लिए आया करती थी। सत्यपाल के बनाए हुए कुछ खाके और चित्र देखने के बाद वह

अपने खाके उसके पास भी ले जाने लगी और धीरे-धीरे उनका परिचय प्रेम में बदल गया और उन्होंने विवाह कर लिया। एवलीन के पास अपनी चार सौ पौंड की पूंजी थी। उन्होंने निश्चय किया कि उस पूंजी की सहायता से साल-भर फ्रांस में रहकर सत्यपाल अपना अध्ययन पूरा कर ले, फिर वे भारत में जाकर रहेंगे। साल-भर बाद जब वे भारत पहुंचे तो एवलीन एक बच्चे की मां बन चुकी थी। भारत आकर उन लोगों को एक नई आर्थिक समस्या का सामना करना पड़ा। सत्यपाल का ख्याल था कि वह बम्बई में अपना छोटा-सा स्टुडियो बना लेगा, पर बम्बई में बगैर अच्छी पगड़ी दिए जगह मिलना असम्भव था। वह अकेला होता तो चार-छः महीने इधर-उधर धक्के खा लेता, पर एवलीन और बच्चे के साथ होने से उसके लिए तुरन्त आय का कोई न कोई ज़रिया पा लेना आवश्यक था। बम्बई में रहकर वह ज़्यादा से ज़्यादा किसी कमर्शियल स्टुडियो में नौकरी कर सकता था, जो उसे पसन्द नहीं था। पर क्योंकि और कोई चारा नहीं था, इसलिए उसने वही काम आरम्भ कर दिया और तीन साढ़े तीन साल उस चक्कर में फंसा रहा। इस बीच उसने कई दूसरे चित्र भी बनाए जिन्हें चित्रकारों के सर्किल में काफी पसन्द किया गया, पर ऊंची कीमत के समझे जाने पर भी उसके चित्र उसके लिए आय का ज़रिया नहीं बन सके। अन्त में वह बम्बई से दिल्ली चला आया और छः-आठ महीने वहां भटकता रहा। लगातार चिन्ता और संघर्ष के कारण उसका स्वास्थ्य काफी गिर गया था और तभी एक डाक्टर से उसे पता चला कि उसे टी० बी० हो गया है।

एवलीन अपना सब कुछ बेच-बाचकर उसे शिमले ले आई थी। हालांकि पहाड़ पर रहकर भी उसके रोगमुक्त हो जाने की आशा नहीं थी, फिर भी वह उसे अपने पास एकान्त में रखना चाहती थी। उसने समरहिल में एक छोटा-सा खस्ताहाल घर किराये पर लिया था। वह खुद घर की सफाई करती थी, खाना बनाती थी, अस्पताल से दवाई लाती थी और एक ओर पति की ओर दूसरी ओर बच्चे की देखभाल करती थी। बच्चे को पति से दूर रखने के लिए उसे जो चेष्टा करनी पड़ती थी वह कई बार उसे रुला देती थी। पर वह यथा-सम्भव आत्मवश रहकर बच्चे को टहलाने भी ले जाती थी और उसे गुब्बारे भी खरीद देती थी।

कहानी पूरी करने तक सतीश काफी भावुक हो गया। उसने सामने दूर की पहाड़ियों पर दृष्टि गड़ाए हुए कहा, 'इसे प्यार कहते हैं दोस्त! है न एक कमाल? फिर लोग कहते हैं कि जिन्दगी में पैसा ही सब कुछ है। क्या चीज़ है पैसा? इन्सान की भूख पैसे से नहीं मिटती, प्यार से मिटती है।"

और वह आँखें मूँदकर सिगरेट के लम्बे-लम्बे कश खींचने लगा।

कुछ दिन बाद मैंने एक होटल में छ सात तैलचित्र लगे हुए देखे जिनके साथ यह नोटिस लगा था कि वे बिकाऊ हैं। साथ पूछताछ के लिए एवलीन कपूर का समरहिल पता दिया हुआ था।

दिन के दस-ग्यारह बजे का समय था जबकि होटलों में प्राय. सभी सीटें खाली होती हैं। उस समय सारे हाल में अकेला ही था। होटल की शीशे-वाली खिड़कियों से छनकर धूप उस चित्र पर आकर पड़ रही थी। उन चित्रों में धूमिल से लाल और मटमैले रंग का विशेष प्रयोग किया गया था। मैं काफी देर तक उन चित्रों को देखता रहा। मुझे चित्रों की ज्यादा समझ नहीं है, फिर भी मेरे हृदय पर उनका कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा जैसे कोई मेरी ओर देखकर दीवानावार प्रलाप कर रहा हो। एक चित्र का शीर्षक था 'गिद्ध'। उसमें गिद्धों की आँखें कुछ ऐसी थी जैसे वह दुनिया की हर चीज़ का मज़ाक उड़ा रही हों और चोंचें कुछ इस तरह खुली थीं जैसे वे हर चीज़ को निगल जाना चाहती हों। चोंचों और पंजों पर पुराने जमे हुए लहू के निशान थे। वह एक ऐसा चित्र था जिसे देखकर लेने को मन होता था और आँखें हटा लेने पर फिर देखने की कामना होती थी। 'दाता' शीर्षक चित्र भी कुछ ऐसा ही था। उसमें एक हड्डियों का ढाँचा एक ठूँठ के नीचे बैठा हाथ का खाली कटोरा शून्य की ओर उठाए था। वे ऐसे चित्र थे जो डरावनी छायाओं की तरह दिमाग में घर कर जाते थे। मैं होटल के मैनेजर के पास जाकर उससे पूछ आया, उन चित्रों में से कोई बिका भी है या नहीं!

'इन भूतों की तसवीरों को कौन खरीदेगा?" उसने बिल-बुक खोलकर पेंसिल से बिल बनाते हुए कहा, "मैंने उस औरत का दिल रखने के लिए यहाँ पर लगा दी थीं, अब चार-छ दिन में . . . ।"

"कोई तुम्हारे पास कीमत पूछने . . . ?" मैंने उससे पूछा।

"कीमत तो लोग शौकिया पूछ लेते हैं," वह बोला, "पर किसी का दिमाग बिगड़ा है कि हज़ार-हज़ार रुपया देकर इन तसवीरों को खरीदेगा ? मैं तो कहता हूं कि कोई दस-दस रुपये में भी खरीदने को तैयार हो जाए, तो बहुत मेहरबानी करेगा। मगर वह जाने इन्हें क्या समझती है ?"

"कितने दिन हो गए इन तसवीरों को यहां लगे हुए ?"

"चौदह-पन्द्रह दिन हो गए हैं।"

'इतने दिनों में कोई भी उससे बात करने नहीं गया ?"

"अरे यार," वह होंठों को जरा सिकोड़कर बोला, "बात करने के लिए तो पचास आदमी जाते हैं मगर उनका बात करने का मकसद तसवीरें खरीदना थोड़े ही होता है ? वे तो इसलिए जाते हैं कि दस मिनट बात का लुत्फ ले लें। ···तुम भी हो आओ। पहले तो तीन-चार दिन वह खुद ही यहां आती रही है, मगर अब नहीं आती। समरहिल से दिन में दो-दो बार यहां तक पैदल आती थी और पैदल वापस जाती थी। एक सरदार तो उसपर बुरी तरह रीझ गया था।" और वह बिल मेरी ओर बढ़ाता हुआ दांत निकालकर मुसकरा दिया।

दूसरी बार जब मैंने उसे देखा तब उसके पति की मृत्यु हो चुकी थी।

लोअर बाज़ार के आरम्भ में ही तीन-चार ढाबे हैं जिनमें मज़दूर, छोटे-मोटे दुकानदार और दफ्तरों के बाबू रोटी खाते हैं। उन्हीमें से एक ढाबे में एक रात मैं खाना खा रहा था, जब वह बच्चे की उंगली पकड़े हुए ढाबे के पास से निकलकर आगे चली गई। बच्चा चलता हुआ किसी चीज़ की ज़िद कर रहा था और वह मनाने की कोशिश कर रही थी। थोड़ी देर बाद वह लौटकर आई और इस बार ढाबे के सामने रुक गई। बच्चा उसका हाथ पकड़कर उसे ढाबे की ओर खींचने लगा। होटल के लाला, नौकरों और वहां बैठकर खाना खानेवाले सब लोगों की नजरें उसपर केन्द्रित हो गईं। उसने क्षण-भर दुविधा में इधर-उधर देखा और फिर बच्चे को साथ लिए हुए ढाबे के अन्दर आ गई। अन्दर बैठे हुए लोग आंखों ही आंखों में एक दूसरे की ओर इशारे करके मुसकराए। एक सरकारी दफ्तर का क्लर्क स्वर के साथ उंगलियां चाटने लगा। एक नौकर के हाथ से दाल की कटोरी गिर गई। वह बच्चे को लिए हुए कोने में बने हुए लकड़ी के केबिन में गई और महीनों का मैला पर्दा उसने आगे खींच लिया। नौकर उधर आर्डर लेने जाने लगा तो लाला ने उसे इशारे

से रोक दिया और स्वयं उठाकर आर्डर लेने पहुंच गया। पीछे से एक बाबू ने फबती कसी, "हम भी बैठे हैं सूद साहब!"

लाला आर्डर लेकर मुसकराता हुआ अपनी गद्दी पर लौट आया और नौकर से बोला कि अन्दर एक आलू की टिकिया दे आए।

लोगों की बातचीत प्राय: बन्द हो गई थी और खामोशी में खाना खाया जा रहा था। लोगों की आखें, नासिकाएं और होंठ मुसकरा रहे थे। जो बातें कही नहीं जा सकती थी उनका चटखारा लोग इशारों में ले रहे थे। नौकर जब आलू की टिकिया प्लेट में डालकर अन्दर ले गया तो सहसा अन्दर से बच्चे के रुआंसे स्वर में चिल्लाने का शब्द सुनाई दिया,

"मैं अण्डे खाऊंगा, मैं अण्डे खाऊंगा।"

"मैं तुझे अण्डे खिलाऊंगी, जरूर खिलाऊंगी," उसकी मां का सघन स्वर सुनाई दिया, "पर इस समय नहीं, फिर कभी आएंगे।"

"मैं अभी खाऊंगा!" बच्चा फिर उसी तरह रोया।

"तुमसे कहा अभी नहीं," मां बोली, "मैं तुझे रोज अण्डे खिलाया करूंगी, थोड़े दिन ठहर जा।"

बाहर खामोशी और गहरी हो गई थी। इशारेबाजी भी बन्द हो गई थी। लोगों के चेहरे पर हल्का खिसियानापन दिखाई दे रहा था।

"रोज नहीं खाऊंगा, सिर्फ आज ही खाऊंगा!" बच्चा मचल रहा था।

"आज तुम टिकिया खाओगे! खाओ!"

"नहीं, मैं सिर्फ टिकिया नहीं खाऊंगा।"

लाला अपनी जगह से फिर उठा और प्लेट में दो उबले हुए अण्डे रखकर अन्दर ले गया। लोगों की दृष्टियों का भाव फिर बदल गया और एक आदमी थोड़ा खांस दिया।

"यह बच्चे को दे दीजिए," उसने अन्दर आकर कहा।

"आपसे किसने लाने को कहा है?"

"कहा तो किसी ने नहीं, ये मैं अपनी तरफ से...।"

"इन्हें वापस ले जाइए।"

वह बुदबुदाता हुआ वापस लौट आया।

एक आवाज सुनाई दी, "सूद साहब, अण्डे घर की मुर्गियों के हैं या

बाजार की ?"

लाला ने एक बार आग्नेय दृष्टि से कहनेवाले की ओर देखा और फिर हिसाब की कापी के पन्ने पलटने लगा।

अन्दर से बच्चे के सुबकने का स्वर सुनाई दे रहा था।

"तू यह खाएगा या नहीं ?" मां ने उससे तीखे स्वर में पूछा।

बच्चा कुछ उत्तर न देकर सुबकता रहा।

"तो उठ चल यहां से।" उसने और भी सख्त स्वर में कहा, और बच्चे को लगभग घसीटती हुई बाहर निकल आई।

उसके बाहर आने पर मैंने उसे गौर से देखा। वह पहले से काफी बदली हुई थी। उसकी नीली आंखों के नीचे हल्के-हल्के काले दायरे बन गए थे। उसके होंठों पर पपड़ियां जम रही थीं और गालों पर खुश्क सफेदी झलक आई थी। यद्यपि उसके शरीर का कसाव पहले जैसा ही था, फिर भी चेहरे पर प्रौढ़ता आ गई थी। पंजाबी वस्त्र उस समय उसके शरीर पर उतने स्वाभाविक नहीं लग रहे थे। उसका बच्चा भी पहले से कुछ दुबला हो गया था और उसके होंठ लगातार रोनेवाले बच्चे के-से लग रहे थे। उसके नरम बाल सिर पर उलझ रहे थे और पलकों में दो आंसुओं की दो बूंदें अटकी हुई थीं। वह केबिन के बाहर आते ही तेज़ी से अपना हाथ झटककर मां से पहले ढाबे के बाहर चला गया। एवलीन ने गद्दी के पास रुककर पैसों के विषय में पूछा तो लाला ने त्योरी चढ़ाए हुए उत्तर दिया, "चार आने!"

वह जानती थी कि एक टिकिया के उसे दो आने चाहिए, इसलिए उसने तीखी नजर से लाला को देखा मगर बिना कुछ कहे दो दुअन्नियां उसकी गद्दी पर फेंककर बाहर चली गई।

"आज रेट बढ़ा दिए हैं सूद साहब ?" उसके चले जाने पर एक आवाज सुनाई दी।

"बड़ा दिमाग दिखा रही थी," लाला सब खानेवालों को लक्षित करके बोला, "अब सारा दिमाग निकल गया कि नहीं ?"

और फिर सब कुछ पहले की तरह चलने लगा—बातें, कहकहे और दाल-सब्जी के लिए ज़ोर-ज़ोर की पुकार। थोड़ी देर के लिए जो विराम आया था उसने लोगों की भूख और बढ़ा दी थी क्योंकि तन्दूर में रोटी लगाने वाला

बहुत फुर्ती करता हुआ भी लोगों की माग पूरी नही कर पाया।

तीसरी बार मैंने उसे काफी दिनो मे देखा।

सतीश और मैं शाम को वालरूम की तरफ जा रहे थे। महीने के पहले सप्ताह मे हम लोग एकाध बार यह ऐयाशी कर लिया करते थे। हमे खुद नाचना नही आता था और न ही वहा हमारा किन्ही लोगों से परिचय था। मगर अपने लिए इतना ही बहुत था कि कोने मे बैठकर वहा नाचती हुई आकृतियो को देख लेते थे। सतीश उनमे से कइयो के इतिहास भी सुनाया करता था। शिमले की प्रायः सभी सोसाइटी गर्ल्ज वहा आती थी। उनका मेकअप और उनकी मुसकराहटें दूर से बहुत सुन्दर लगती थी। वहा मित्रता के नाम पर वे सौदे आसानी से हो जाते थे जिन्हे सरे आम करना अपराध था।

वह हमे बालरूम से थोडी दूर कच्चे रास्ते पर दिखाई दी। वह अपने बच्चे को साथ लिए इम्पीरियम होटल की तरफ से आ रही थी। उसने साधारण क्रीम का फ्राक पहन रखा था। उसके बच्चे ने वही लाल और सफेद ऊन के कपड़े पहन रखे थे जो अब मैले हो रहे थे। वह बच्चे की उगली पकड़े ऐसी सूनी नजर से सामने देखती चल रही थी जैसे उसे आसपास किसी वस्तु की स्थिति का आभास ही न हो। उसे देखकर मेरे हृदय पर उस समय कुछ वैसी ही छाप पड़ी जैसी कि उसके पति के बनाए हुए चित्रों को देखकर पड़ी थी। उसके चेहरे के सौन्दर्य मे विशेष अन्तर नही आया था। परन्तु चेहरे का भाव इतना बदल रहा था कि मैं उसे शिमले मे न देखकर और कही देखता तो शायद पहचान भी नही पाता। वह जैसे स्वाभाविक रूप से एक स्पन्दाकृति मे बदल गई थी।

सड़क के मोड़ के पास आकर मूगफली वाले के पास रुक गई। वह दो पैसे निकालकर मूगफली वाले को देने लगी तो बच्चे ने उसका हाथ पकड़कर मचलकर कहा, "नहीं, मैं नही लूगा।"

उसने बच्चे की ठुड्डी को छूकर उसे पुचकारा और कहा, "तू मेरा कितना अच्छा बेटा है! मम्मी की हर बात मानता है। देख न कितनी अच्छी मूगफली है।"

"नहीं मैं यह नही खाऊगा," रूठता हुआ पलटकर बोला, "मैं बादाम खाऊगा,

नहीं मांग रही। अपना जो-कुछ छोड़ आई हूं, उसी का रोना रो रही हूं।"

"तू अकेली नहीं छोड़ आई, हम सब अपने घर-बार पीछे छोड़ आए हैं। शुक्र कर तुझे छः हज़ार तो मिल गए हैं। यहां हम जैसे भी हैं जिन्हें आज तक एक पाई नहीं मिली हमारा कसूर यही है कि मियां-बीवी दोनों सलामत हैं। मैं अगर मर-खप गया होता, तो मेरे बच्चों को भी अब तक दो रोटियां नसीब हो जातीं। आंखें मेरी अंधी हो रही हैं, जोड़ मेरे दर्द करते हैं—मैं जीता हुआ भी क्या मुर्दों से बेहतर हूं? मगर सरकार के घर में ऐसा अंधेर है कि लोग इन्सान की ज़रूरत को नहीं देखते, बस जीते और मरे हुए का हिसाब करते हैं। मुझे आज ये एक हज़ार ही दे दें तो मैं कोई छोटी-मोटी दुकान डालकर बैठ जाऊं। मेरे बच्चों के पास तो एक-एक फटी हुई कमीज़ भी नहीं हैं।"

"अपनी-अपनी तकदीर की बात है भाई साहब, कोई किसी दूसरे की तकदीर थोड़े ही ले सकता है?" सरदार मध्यस्थता करता हुआ बोला, "हम और आप भी दुखी हैं, और यह भाई भी दुखी है—कौन यहां दुखी नहीं है? कोई कम दुखी है, कोई ज़्यादा दुखी है।"

"आपको साठ हज़ार मिल रहे हैं, आपको किस चीज़ का दुख है?" वह व्यक्ति अब और कुढ़ गया।

"मिल रहे हैं, यह भी तकदीर की बात है," सरदार बोला, "क्लेम भरते हमें अक्ल आ गई, उसी का फल समझिए। नहीं हमें भी ये दस-बीस हज़ार देकर टरका देते।"

"आपने क्लेम ज़्यादा का भरा था?"

"हमारी डेढ़ लाख की जायदाद थी। मगर हमें पता था कि असली क्लेम भरेंगे तो कुछ भी पल्ले नहीं पड़ेगा। सो वाहे गुरु का नाम लेकर हमने इस तरह फार्म भरा कि जायदाद की असली कीमत तो कम-से-कम वसूल हो ही जाए। मगर इन बेईमानों ने फिर भी कुल साठ हज़ार का ही क्लेम मंजूर किया है। हम छः भाई हैं—दस-दस हज़ार लेकर बैठ रहेंगे।"

"मैं इनसे कितना कहती रही, पर इन्होंने मेरी एक न सुनी!" स्त्री हताश भाव से हाथ मलने लगी।

दोनों व्यक्ति सवालिया नज़र से उसे देखते रहे।

"मैं कहती रही कि जितना छोड़ आए हो, उससे ज़्यादा का क्लेम भरो।

मगर ये ऐसे मूरख थे कि हठ पकड़े रहे कि जितना था, उतने का ही क्लेम भरेंगे—पहले ही इतने दुख उठाए हैं, अब और बेईमानी क्यों करें ? आज ये मेरे सामने होते, तो मैं पूछती कि बताओ बेईमानी करनेवाले सुखी हैं या हम लोग सुखी हैं ? लोगों ने जितना छोड़ा था, उसका दुगुना-तिगुना वसूल कर लिया, और मैं बैठी हूं छः हज़ार लेकर ! ···हाय, इन लोगों ने तो मेरे बच्चों को भूखों मार दिया !" और अब वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

उसके साथ बैठे व्यक्ति ने दूसरी तरफ मुंह करके माथे पर हाथ रख लिया ! सरदार फिर सहानुभूति प्रकट करने लगा। "रोने से कुछ नहीं होता माई ! जो लिखा है, वही मिलता है। करतार ने पहले ही सब करनी कर रखी है। जो मिला है, उसीसे सन्तोष कर।"

"सन्तोष करने को एक मैं ही रह गई हूं ? सारी दुनिया मौज करे और मैं सन्तोष करके बैठी रहूं ?" और वह रोती रही।

"जल्दी पहुंचा भाई, इतना आहिस्ता क्यों चला रहा है ?" माई के साथ बैठा व्यक्ति उतावला होकर बोला।

साधूसिंह झुंझलाकर बार-बार लगाम को झटके दे रहा था, मगर घोड़े की चाल में फर्क नहीं आ रहा था। अब वह लगाम का सिरा ज़ोर-ज़ोर से उसकी पीठ पर मारने लगा। "तेरी अफसर की ऐसी की तैसी ! तेरी पूछ पर तिनैया काटे ! चल पुतरा जल्दी !"

मगर तिनैया के डर से भी अफसर की चाल तेज़ नहीं हुई।

कलेक्ट्रेट के दफ्तर के बाहर उन लोगों को उतारकर लौटते हुए साधूसिंह को एक भी सवारी नहीं मिली। वह काफी देर मार्केट के मोड़ के पास रुका रहा, मगर तीनों सड़कों में से किसी पर भी उस वक्त कोई इन्सान चलता दिखाई नहीं दे रहा था। तेरह नम्बर दुकान के साये में दो-एक रिक्शावाले सोए थे। तेरह नम्बर का सरदार अन्दर बर्फ कूट रहा था। साधूसिंह का मन हुआ कि सरदार से एक गिलास शिकंजबी बनवाकर पी ले और कुछ देर रिक्शा-वालों के पास ही एक तरफ लेट रहे। मगर तांगा खड़ा करने के लिए वहां कोई छायादार जगह नहीं थी और न ही नज़दीक कोई चहबच्चा था, जहां से घोड़े को पानी पिला सकता। घोड़ा गरमी के मारे हूक रहा था और बार-बार ज़बान बाहर निकाल रहा था। साधूसिंह की जेब में जो सतह आने थे वे भी हिसाब से

उसके अपने नहीं थे। घोड़े के लिए चारा खरीदने के लिए ही उसे कम से कम दो रुपये चाहिए थे। उसने ज़बान से होंठों को गीला किया और घोड़े का रुख शहर की तरफ करा दिया।

लम्बी सीधी, वीरान सड़क पर वह अकेला तांगा चला रहा था। आसपास के पेड़ भी गरमी से परेशान सिर झुकाए खड़े थे। फिर भी न जाने किन झुर-मुटों में बैठी कुछ चिडियां बोल रही थीं—चिचिचि···चिचि···ह्विश्···च्यु-यु-यु-यू-यु···चिचिचि···चिचि···!

साधुसिंह लगाम ढीली छोड़कर पिछली सीट पर अधलेटा-सा हो रहा। उसका मन उस समय उस आम के पेड़ की डालों के गिर्द मंडरा रहा था, जो उसने बड़े चाव से अपने पत्तोकी के घर के आंगन में लगाया था। नौ रुपये महीने का वह मकान बरसों के परिचय के कारण अपना मकान ही लगता था। हीरां ने कितनी ही बार कहा था कि पराये घर में पेड़ लगा रहे हो, पाल-पोसकर एक दिन दूसरों के लिए छोड़ जाओगे! मगर तब यह कहां सोचा था कि वह घर इस तरह छूटेगा कि जिन्दगी-भर उसके पास से गुज़रना तक नसीब न होगा!

आम का पेड़ इन दिनों खूब फल रहा होगा।···और हीरां?

उस साल पेड़ पर पहली बार फल आया था। फल आने की खुशी में उसने न जाने कितनी कच्ची अंबियां खा डाली थीं।

"क्यों जान-बूझकर दांत खट्टे करते हो?" हीरां चिढ़ती।

"यह अपने पेड़ का फल है, जानी! इसे खाकर दांत खट्टे नहीं होते।"

और हीरां के अधखिले यौवन को वह गाढ़े आलिंगन में समेट लेता।

आम हरे से पीले और पीले से सुर्ख हो आए थे, जब बलवा शुरू हुआ। पत्तोकी की हर गली में खून बहने लगा। आधी रात को बलवई उनके मोहल्ले में घुस आए। जब उनके घर का दरवाज़ा तोड़ा गया, तो वह हीरां को साथ सटाए दम-साधकर चारपाई पर पड़ा था। उन्होंने जल्दी से पिछवाड़े की तरफ कूद जाने का निश्चय किया। वह तो झट-से कूद गया, मगर हीरां दो बार उचककर भी कूद नहीं पाई। और इससे पहले कि वह फिर एक बार साहस करती, किसी हाथ ने उसे पीछे खींच लिया।

अंधेरा, खेत और रेल की पटरियां···बेजान हाथ-पैर और भूख···टिकट,

कूपन, काई और नम्बर···

नाम, साधूसिंह।

वल्द, मिलखासिंह।

कौम, खत्री।

जमीन-जायदाद, कोई नही।

रुपया-पैसा, कोई नहीं।

क्लेम··?

उसका वह आम का पेड़, जिसके पकने की उसने बेसब्री से इन्तजार की थी और जिसकी अंबियां खा-खाकर वह अपने दांत खट्टे करता रहा था—उस पेड़ की छाया में उसे भविष्य के जो साल बिताने थे···?

उस घर की अपनी एक खास तरह की गन्ध थी, जो कपड़ो की गांठ से लेकर आगन की दीवारों तक हर चीज मे समाई रहती थी। वह गन्ध···?

और वे रातें जो आगन मे लेटकर आसमान की ओर ताकते हुए बीतती थीं?

और आनेवाली जिन्दगी के वे सब मनसूबे, जो उस घर की दहलीज़ के अन्दर-बाहर जाते मन मे उठा करते थे···?

"हीरा, बता पहले तेरे लड़का होगा या लड़की?"

"हाय, शरम करो, कैसी बात करते हो?"

"अच्छा, मैं बताऊं? पहले तेरे एक लड़की होगी, फिर दो लड़के होंगे, फिर एक लड़की होगी···।"

"चुप भी रहो, क्यों यूं ही बके जाते हो?"

"दूसरी लड़की पहली लड़की से···ज्यादा खूबसूरत होगी। उसके तेरे जैसे ही मुलायम बाल होंगे, ऐसी ही बड़ी-बड़ी आखें होंगी, और ठोड़ी के पास यहीं एक तिल होगा···।"

"हाय, क्या करते हो?"

"मैं उसके इसी तरह चिकुटी काटूंगा, और वह इसी तरह चीख उठेगी।"

वह स्पर्श···? वह सिहरन···? वह कल्पना···? वह भविष्य···? साधूसिंह, वल्द मिलखासिंह, कौम खत्री—नम्बर···? क्लेम···?

आम का पेड़ अब बड़ा हो गया होगा। घर की दीवारों की गन्ध पहले से

बदल गई होगी। और हीरां···? आज उसकी गोद में न जाने किसके बच्चे होंगे ?

साधुसिंह सीधा होकर बैठ गया। तांगा धोबी मोहल्ले में पहुंच गया था। चारों तरफ हर चीज़ अब भी ऊंघ रही थी। उसने लगाम को लगातार कई झटके दिए। घोड़े की गरदन थोड़ा ऊपर उठी, फिर उसी तरह झुक गई।

अड्डे पर पहुंचकर साधुसिंह ने घोड़े को चहबच्चे से पानी पिलाया और सीट के नीचे से चारा निकालकर उसके आगे डाल दिया। घोड़ा चारे में मुंह मारने लगा, और वह उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा।

"तेरी बरकत रही अफसरा, तो अपने पुराने दिन फिर आएंगे ! खा ले, अच्छी तरह पेट भर ले। अपने सब क्लेम तुझी को पूरे करने हैं, तेरी जान की खैर···।"

और अफसरा गरदन लम्बी किए चुपचाप चारा खाता रहा।

फौलाद का आकाश

ड्राइंग-रूम काफी खुला और बड़ा था, अकेले बैठने के लिए बहुत ही बड़ा। रात को वहां से गुजरकर पैंट्री में जाना पड़ता तो मीरा को अपने अन्दर एक डर-सा महसूस होता। ड्राइंग-रूम का खालीपन एक तसवीर की तरह लगता, दीवारों के चौखटे में जड़ी तसवीर की तरह। बेडरूम के अलावा और सब कमरों की बत्तियां बुझाकर जब शंकर अपने क्वार्टर में सोने चला जाता, तो किसी-न किसी काम से रोज उसे उधर जाना पड़ता था। कभी अपनी जरूरत से, कभी रवि के कुछ मांगने पर। बिजली के बटन पर हाथ रखने तक गद्दों और कुर्सियों की आकृतियां उसे अंधेरे में ऊंघती-सी-जान पड़ती। कई बार वह बटन दबाने का हौसला न करती—कि कहीं ऊंघती आकृतियों की बत्ती जल जाने से उलझन न हो।

रवि रात को देर तक काम करता रहता था। ढेर-ढेर कागज आकड़ों और ग्राफों से भरे रहते थे। उसके हाथ इस तरह हिलते रहते थे जैसे काम करने के लिए उसे जरा भी सोचना न पड़ता हो। कागज पर उसकी कलम फिसलती जाती थी, फिसलती जाती थी। फिर एकाएक वह कागज सरकाकर कुर्सी की पीठ से टेक लगा लेता और दायें हाथ को बायें हाथ से दबाने लगता। तब भी मीरा को लगता कि दिमाग उसका नहीं थका, सिर्फ हाथ थक जाने से उसे मजबूरन रुक जाना पड़ा है। चीखने की-सी हल्की आवाज के साथ

चिप्स के फर्श पर कुर्सी पीछे को सरकती और रवि उठता हुआ कहता, "तो तुम अभी तक जाग रही हो ? कितनी बार तुमसे कहा है कि वक्त पर सो जाया करो ।"

मीरा मुसकराती हुई उठती और उसे गिलास में पानी दे देती । वह जानती थी कि रवि जान-बूझकर रोज़ तकल्लुफ में यह बात कहता है । उसके काम खत्म करने तक अगर वह सचमुच सो जाए, तो रवि को झुंझलाहट होती है । ऐसे में वह सुराही से पानी लेने में भी इतनी आवाज़ करता है कि खामखाह दूसरे की नींद खुल जाए । या फिर भारी कदमों से कमरे में चहलकदमी करने लगता है । या अलमारी से मोटी-मोटी कितावें निकालकर धप्-धप् उनकी धूल झाड़ने लगता है । चैन उसे तभी मिलता है जब किसी-न किसी आवाज़ से वह अचानक जाग जाती है । उसपर भी वह तकल्लुफ छोड़ता नहीं । कहता है, "अरे तुम ज़रा-सी आवाज़ से जाग गई ? बहुत कच्ची नींद है तुम्हारी ।"

बिस्तर में लेट जाने के बाद अचानक रवि को अपनी किसी फाइल का ध्यान हो आता, जिसे वह बाहर बरामदे में भूल आया होता । या हल्की भूख का एहसास होता । या अपनी मल्टी विटामिन टिकिया की याद हो आती । कहता वह बहुत उलझे ढंग से, "देखो, हो सके तो···" या, "देखो, कर सको तो···" दस साल साथ रहकर मीरा जान चुकी थी कि इस तरह बात उसकी मर्ज़ी पर नहीं छोड़ी जाती, सिर्फ आदेश को तकल्लुफ का जामा पहना दिया जाता है । वह चुपचाप उठती, ड्राइंग-रूम पार करके जाती और जो कुछ मांगा गया होता, लेकर लौट आती । आदेश का पालन हो चुकने पर रवि के मन में न जाने कैसी कुण्ठा जाग आती कि वह उसे कसकर बांहों में भरने का प्रयत्न करता । पूछने लगता, "मेरे साथ अपनी ज़िन्दगी तुम्हें बहुत रूखी लगती है न ?" कहकर किसी भी उत्तर की प्रतीक्षा या अपेक्षा वह न करता—कुछ भी बोलने से पहले उसके होंठों को अपने होंठों से भींच देता । फिर फुसफुसाकर कहता, "मैं बहुत बुरा हूं, हूं न ?" इसपर भी उसे किसी उत्तर की आशा न रहती । वह अपने-आप सवाल पर सवाल किए जाता । "तुम्हें मैं बहुत दुःखी करता हूं, नहीं ? पर अब तो तुम्हें सहने की आदत हो गई है, नहीं ?" साथ ही उसके हाथ उसके शरीर की गोलाइयों को मसलने लगते, उसके दांत जगह-जगह उसके मांस को काटने लगते । "साथ तुम यह भी जानती हो कि मैं तुम्हें कितना

प्यार करता हूं, कितना ज्यादा प्यार करता हूं, नही ?" और मंजिल-दर-मंजिल शारीरिक निकटता की हदें पार होती जाती। आखिर जब पसीना-पसीना होकर वह उससे अलग होता, तो भी मीरा को यही लगता जैसे अब भी लिखते-लिखते हाथ थक जाने से उसने कागज परे हटा दिए हों और इसके बाद अब पानी का गिलास मांगने जा रहा हो। वह अनायास ही उसे पानी देने के लिए उठना चाहती, पर तब तक रवि के खर्राटे भरने की आवाज सुनाई देने लगती। वह चुपचाप कुछ देर उसके माथे के जख्म को और अधपके बिखरे बालों को देखती रहती, फिर उसांस भरकर सिर तकिए पर डाल लेती। कुछ देर बाद उठकर गुसलखाने मे जाती और वापस आकर फिर उसी तरह लेट रहती। बाहर कच्ची सडक से कोई टूटी साइकिल खरड़-खरड़ की आवाज करती निकल जाती।

बीच रात मे अचानक नींद खुलने पर मीरा को लगा कि वह किसी ऐसी साइकिल की आवाज सुनकर ही जागी है। सुबह-सुबह दूधवाले बडे-बडे पीपे साइकिलो से लटकाए उधर से गुजरकर जाया करते थे। पर सुबह अभी हुई नही थी, रोशनदान के शीशो की स्याही अभी जरा भी नही बुझी थी। बाहर झींगुरो की तेज आवाज सुनाई दे रही थी—जैसे की एक तेज चर्खी लगातार घूम रही हो। मीरा को वह आवाज उस वक्त रोज से ज्यादा ऊंची, ज्यादा तेज, ज्यादा चुभती हुई लगी। खिड़की के बाहर पेड़ो के पीछे जितना आकाश झुक आया था, उसमे एक सितारा बहुत तेज चमक रहा था। इतना तेज कि वह सितारा नहीं लगता था। मीरा बिस्तर से उठी कि खिडकी बन्द कर दे—कि हवा और झींगुरो की आवाज उससे कुछ कम हो जाए। पर खिड़की के पास आई तो देर तक वहीं रुकी रही। फौलादी जाली से आंख सटाकर उस सितारे को देखती रही। फौलाद का ठण्डा स्पर्श आंख पर अच्छा नहीं लगा तो ड्राइंग-रूम मे से होकर बाहर बरामदे मे आ गई। आते हुए नजर पड़ी ड्राइंग-रूम की रोगनी मूर्तियों पर अजदहे की शक्ल की ऐश-ट्रे पर, वाट सिक्स्टी नाइन की बोतल के बने टेबल लैम्प पर और असमिया मछुओं की टोपी जैसी वाल-प्लेट पर। बत्ती जलते ही ये सब चीजें एक साथ चमक उठी थीं। बरामदे मे आकर उसने मुक्ति की सांस ली—उन सब चीजों से मुक्ति की। उस सितारे की सीध में पेड़ों और पत्तियों के पीछे कांपता आकाश जैसे उसके अन्दर

बहुत गहरे में किसी चीज़ को छू गया। उसने अपने ठण्डे चेहरे को हथेलियों से छुआ और बरामदे में पड़ी आरामकुर्सी पर ढीली-सी बैठ गई। हवा से पत्तियों का कांपना, घास का सरसराना और उंगलियों का सर्द पड़ते जाना उसे ऐसे लगा जैसे कोई कसी हुई गांठ उसके अन्दर ढीली पड़ रही हो, कोई सोई हुई चीज़ धीरे-धीरे करवट बदल रही हो। उसकी हथेलियां गालों से फिसलकर आंखों पर आ गईं, जिससे ठण्डी आंखें कुछ गरमा गईं, हथेलियां कुछ ठण्डी पड़ गईं। फिर उसने चार-चार उंगलियों की जालियों से बाहर देखा, तो लगा कि सितारा लॉन की घास पर उतर आया है—वहां से आंख झपकता हुआ उसे ताक रहा है। वह उठी और अपनी रबड़ की चप्पल वहां छोड़कर लॉन में उतर गई। पास जाकर देखा कि शबनम की एक अकेली बूंद उस सितारे को अपने में समेटे है। अंधेरे के बावजूद घास की नमी में सुबह की ताज़गी भर आई थी। वह अपने तलुओं से उस ताज़गी को पीती हुई चलने लगी। शबनम के कई-कई कतरे शरीर को सिहरा गए। लगा कि घास की महक से सारा शरीर गमक उठा है।

पैर बहुत ठण्डे पड़ गए थे, जब पुरवइया के स्पर्श ने शरीर को फिर सिहरा दिया। पूरब में अंधेरे की सतह पर एक हल्की लाल किरण तैर आई थी। मीरा देखती रही कि कैसे वह लाली उजली होकर सफेद होती है, कैसे रंगों की झिलमिल अंधेरे में घुलती-फैलती अपनी तरफ बढ़ती आती है। एकाएक वह अपने मन में चौंक गई। उसे अहसास हुआ कि पच्छिम का आकाश आज रात गहरा काला रहा है, फौलाद की भट्ठी की तांबई लौ वहां दिखाई नहीं दी। फौलाद की भट्ठी चौबीसों घंटे सुलगती रहती थी, पर उसका आभास मिलता था रात को ही—जब वह साथ आस-पास के आकाश को भी सुलगा देती थी। उसे पहली बार उस तरह देखा था, तो लगा था कि जंगल या किसी घर-मोहल्ले में आग लग गई है। बताए जाने पर भी विश्वास नहीं हुआ था कि वह लौ फौलाद की भट्ठी की है। बाद में धीरे-धीरे ऐसी आदत हो गई थी कि लगता था उनके हिस्से में आकाश का रंग ही वैसा है। रात के वक्त ड्राइव से लौटने पर मीलों दूर से आकाश का चेहरा तमतमाया नज़र आता था। वह रवि से देखने को कहती, तो वह झुंझला उठता। "क्या बच्चों की-सी बातें करती हो? आज फौलाद का

गुण है। देखना एक दिन पूरे आसमान का रंग बदलकर ऐसा हो जाएगा।" वह कल्पना में सारे आकाश को उस रंग में गुलगते देखती और कांप जाती। क्या बिना सितारों के तांबई आकाश के नीचे भी जिन्दगी उसी तरह जी जाएगी?

यह पहला मौका था जब पश्चिम के आकाश में एक सितारा चमकता दिखाई दिया था। आठ महीने में पहली बार उधर का आकाश तांबई नहीं था। उसे आश्चर्य हुआ कि इतनी बड़ी घटना पहले उसके ध्यान में क्यों नहीं आई? हर रात सुलगता रहनेवाला आकाश आज धुए की कालिख की तरह निर्जीव था और सुबह की लौ ने अब उसमें हल्की काई निकाल दी थी। उसका मन हुआ कि जाकर रवि से कहे कि उठो, देखो आज फौलाद की भट्ठी बुझ गई है। पर यह सोचकर उसका उत्साह ठण्डा पड़ गया कि रवि शायद यह बात पहले से जानता होगा। वह झुंझलाकर इतना ही कहेगा, "तुम्हें मैंने बतलाया नहीं था कि आज से प्लांट में स्ट्राइक है?" और उसे याद आया कि दिन में किसी वक्त सचमुच रवि ने प्लांट की स्ट्राइक का जिक्र किया था। सुनकर उसने अनमने ढंग से हूं-हां भी किया था जैसे कि उसकी हर बात पर किया करती थी। यह नहीं सोचा था कि स्ट्राइक होने से आसमान से वह रंग भी बुझ जाएगा।

पैर सुन्न हो रहे थे। उसने बरामदे में आकर चप्पल पहनी और कमरे में लौट आई। रवि तब तक जाग गया था। उसके पास आते ही करवट बदलकर बोला "शंकर से कहोगी चाय दे जाए?" वह चुपचाप वापस चल दी। जानती थी चाय लाने के लिए उसीसे कहा गया है। शंकर इतनी जल्दी नहीं उठता, यह रवि अच्छी तरह जानता था।

नीम की टहनियों पर कांपती सुबह धीरे-धीरे कमरे में उतर आई। धूप की चकत्तियां रोज की परिचित जगहों पर छितरा गईं। सुबह-सुबह कितने ही लोग रवि से मिलने आ गए। मैनेजमेंट का दासचौधरी, पर्सनेल का मुकर्जी और श्रम-विभाग का जे० दारूवाला। शाम को क्लब में मिलनेवाले लोगों का सुबह-सुबह घर आना एक नई-सी बात थी। मीरा खुद किचन में व्यस्त रहकर शंकर के हाथ उन्हें चाय भिजवाती रही। रवि से कोई भी मिलने के लिए आए, किसी भी समय आए, चाय की मांग जरूर होती थी। नाश्ते से पहले तीन बार चाय जा चुकी थी, अब चौथी बार ट्रे तैयार हो रही थी। सब लोग ड्राइंग-रूम में थे, पर लगता था जैसे कहीं दूर बैठे बात कर रहे हों। विषय वही था—प्लांट के मजदूरों की

हड़ताल। जे० दारूवाला के हर दिन के मज़ाक उस समय उसकी ज़बान पर नहीं आ रहे थे। हकला भी वह रोज से ज़्यादा रहा था। मुकर्जी बहुत कम बात कर रहा था। ज़्यादातर आवाज़ दासचौधरी की ही सुनाई दे रही थी। जब रवि बोलता, तो उसकी बात में शब्द कम और आंकड़े ज़्यादा होते। आंकड़े, आंकड़े, आंकड़े! क्या बिना आंकड़ों के रवि कोई बात सोच ही नहीं सकता था? मीरा को लगता कि उससे प्यार करते वक्त भी वह मन-ही-मन चुम्बनों की गिनती करता रहता होगा···तभी तो न उसका आवेश एक चरम पर पहुंचकर एकाएक रुक जाता था।

इस बार चाय की ट्रे वह खुद बाहर ले गई। उसके आने पर पल-भर के लिए बातचीत रुक गई। फिर रवि ने ही बात को आगे बढ़ाया। "मुझसे पूछा जाए, तो इसमें बहुत-कुछ लंच के मीनू पर निर्भर करता है," उसने कहा।

मीरा एक तरफ हटकर बैठ गई जिससे उसकी उपस्थिति उनकी बातचीत के रास्ते में न आए और प्यालियों में चाय बनाने लगी। रवि की बात पर पहली बार सब लोगों के गले से हंसी फूटी। दारूवाला के सुर्ख चेहरे की लकीरें फैल गईं। "दैट्स इट," उसने कहा, "मेरा तजुर्बा भी यही कहता है कि जो काम वैसे बहुत मुश्किल नज़र आते हैं, लंच का मीनू ठीक होने से वे आसान हो जाते हैं।"

मीरा ने प्यालियां उन्हें दे दीं। मीनू की बात ने उसके मन में उत्सुकता जगा दी थी। उसे आश्चर्य हो रहा था कि रवि जो प्लेट में सामने पड़ी चीज़ों को कभी ध्यान से देखता भी नहीं, वह आज कैसे लंच के मीनू में इतनी दिलचस्पी दिखा रहा है!

दासचौधरी ने मीनू बताया, तो रवि उसमें संशोधन करने लगा। मीरा स्थिर दृष्टि से उसके चेहरे की तरफ देखती रही। क्या सचमुच रवि रोस्ट मटन और रोस्ट चिकन के अन्तर को महत्त्वपूर्ण समझता था?

वापस किचन में पहुंचने तक वह इतना जान गई कि मालिकों और मजदूरों के झगड़े में मध्यस्थता करने के लिए कोई व्यक्ति बाहर से आ रहा है, और दोनों पक्ष अपना-अपना केस आज उसके सामने रखने जा रहे हैं। दोपहर को स्थानीय कांग्रेस के प्रधान के यहां उसकी दावत है। उसी खाने का मीनू इस वक्त वहां तय किया जा रहा है। वह जब वहां से उठी, तो रवि कह रहा था,

"मैं उसे अच्छी तरह जानता हूं। मुझे पता है उसके मेदे को क्या चीज मुआफ़िक़ आती है।"

लोगों के चले जाने के बाद रवि दफ्तर जाने के लिए तैयार हुआ, तो मीरा ने पूछ लिया, "देखो, आज वहां कुछ गड़बड़ तो नहीं होगी?"

"हड़ताल प्लाट में है, दफ्तर में नहीं," रवि ने कुछ उलझकर कहा, "तुम नाहक परेशान होने लगती हो।"

मीरा पल-भर रवि के ऊंचे डीलडौल को, कसे हुए भूरे सूट और नुकीले जूते को, देखती रही। रवि को जब उसने अपने लिए पसन्द किया था, तो उसमें उसका ऊंचा डीलडौल क्या एक बड़ा कारण नहीं था? उन दिनों रवि की जबान पर हर वक्त आंकड़े नहीं रहते थे और वह इतना उलझता भी नहीं था। तब वह एक डिग्री कॉलेज में साधारण लेक्चरर था—स्टील प्लाट में लेबर-एडवाइजर नहीं।

"यह रंग तुम्हारे जिस्म पर बहुत खिलता है," मीरा ने आंखों की चोरी पकड़े जाने से कहा। रवि के माथे पर हल्की शिकन पड़ गई। "तुम आज भी उन दिनों जैसी ही बातें करती हो," कहते हुए उसका निचला होंठ खास ढंग से सिकुड़ गया, "इतने साल साथ रहकर भी तुममें ज़रा फर्क नहीं आया।"

मीरा की आंखें छलछला आईं। रवि जब ऐसी बात कह देता था, तो वह अपने को उससे बहुत दूर महसूस करती थी। रवि के चेहरे का भाव उस फासले को और भी बढ़ा देता था। उस फासले को भरने की कोशिश उसे एक ऐसा झूठ लगता था जो वह दस साल से लगातार अपने से बोल रही थी। रात-दिन साथ रहकर भी वह फासला कम होने में नहीं आता था। जितना ही वह उसके नजदीक आती, फासले का एहसास उतना ही ज्यादा होता था।

चलते वक्त अपनी फाइलें समेटते हुए रवि ने कहा, "आज मैं लंच के लिए घर नहीं आऊंगा। कुमरा जी के यहां आज राजकृष्ण की दावत है। मुझे भी वहां जाना है।"

"राजकृष्ण आए आया है?"

"हां," रवि फाइल देखता हुआ दरवाजे की तरफ बढ़ गया, "वह [illegible]

हाउस में ठहरा है। हो सके, तो तुम किसी वक्त उसे फोन कर लेना। नहीं तो वह बुरा मानेगा कि उसके यहां होने की बात जानते हुए भी तुमने उससे मिलने या बात करने की कोशिश नहीं की।"

मीरा भी उसके साथ-साथ बरामदे में आ गई। रवि कार में बैठकर उसे रिवर्स में बाहर ले चला, तो वह वहीं खड़ी उसे देखती रही। कार के निकल जाने पर कच्ची सड़क की धूल बरामदे की तरफ बढ़ आई। मीरा फिर भी खड़ी रही, जैसे कि धूल में घिर जाना ही उसका उद्देश्य रहा हो।

अजदहे की शक्ल की ऐश-ट्रे में काफी राख और टुकड़े जमा हो गए थे। रवि किसी बात से उत्तेजित होता था, तो उसके चेहरे से उतना पता नहीं चलता था, जितना उसके लगातार सिगरेट फूंकने से। पिछले कुछ सालों में उसका सिगरेट पीना लगातार बढ़ता गया था। डॉक्टर का कहना था कि इसका उसकी सेहत पर बुरा असर पड़ रहा है, फिर भी वह सिगरेट पीना कम नहीं कर पाता था। कभी कभी तो आधी रात को न जाने क्या सोचता हुआ वह बिस्तर से उठ पड़ता था और खिड़की के पास खड़ा लगातार एक के बाद एक सिगरेट फूंकता जाता था।

मीरा ने ऐश-ट्रे उठाकर झाड़ दी। फिर राख लगे हाथों को साबुन से धो लिया। ऐश-ट्रे झाड़ते हुए उसे हमेशा लगता था जैसे वह भुरभुरी राख रवि के व्यक्तित्व का ही एक हिस्सा हो—जैसे लगातार सिगरेट पीने से रवि का शरीर अन्दर से वैसा ही हो गया हो। उसे रवि से सहानुभूति होती, पर उस सहानुभूति में एक तटस्थता भी रहती। ब्याह से पहले वह जिस तरह रवि के व्यक्तित्व के साथ घुल-मिल जाने की बात सोचा करती थी, उसका आभास भी अब उसे अपने में नहीं मिलता था। अन्तरंग से अन्तरंग क्षणों में भी अपने को रवि से अलग, बिलकुल अलग, पाती थी। कभी उसे लगता कि ऐसा उम्र के बढ़ते सालों की वजह से है। पर इससे आगे के सालों की बात सोचकर मन में और टीस जागती। कभी उसे लगता कि इसमें सारा दोष रवि का है। कभी लगता कि दोषी रवि नहीं, वह स्वयं है।

रवि को लंच के लिए घर नहीं आना था, इसलिए उसे खाना बनाने का

उत्साह नहीं हो रहा था। बहुत उत्साह पहले भी नहीं होता था, पर रोज की बँधी हुई लकीर वक्त पर उसे गैस के चूल्हे के पास ले जाती थी। शकर के हाथ का खाना रवि को पसन्द नहीं था; इसलिए दोनों वक्त का खाना वह अपने हाथ से ही बनाती थी? दो आदमियों का खाना बनाने में देर भी कितनी लगती थी? कभी यह सोचकर भी उसके शरीर में झुरझुरी भर जाती कि इतने सालों से वह हर रोज दोनों वक्त, दो आदमियों का, सिर्फ दो आदमियों का खाना बनाती आ रही है। ज़िन्दगी की यह एकतारता दो-एक बार तभी टूटी थी जब उसकी एबार्शन हुई थी और उसे अस्पताल जाना पड़ा था।

शकर को उसने दोपहर के लिए छुट्टी दे दी थी, इसलिए उसका पूरा वक्त खाली ड्राइंग-रूम में अलसाते हुए बीता। तीन बजे के करीब शकर लौटकर आया। उससे पता चला कि प्लांट के बाहर मजदूरों का बहुत भारी जमघट है। मजदूर इस तरह बेकाबू हो रहे हैं कि उनके नेताओं के लिए भी उन्हें सभालना मुश्किल हो रहा है। कोई मिनिस्टर फ़ैसला कराने के लिए बाहर से आए हैं, पर मजदूरों का एक बहुत बड़ा वर्ग उनकी मध्यस्थता स्वीकार करना नहीं चाहता। नेता लोग उन्हें समझा रहे हैं, पर मजदूरों का जोश अभी काबू में नहीं है।

मीरा को इस सब में खास दिलचस्पी नहीं थी। फिर भी अकेलेपन की ऊब को कम करने के लिए वह यह सब सुनती रही। फिर अचानक उसे याद आया कि रवि ने जाते हुए राजकृष्ण को फोन करने के लिए कहा था। उसने वहीं सोफ़े से हाथ लम्बा करके सरकिट हाउस का नम्बर मिलाया। नाम और काम पूछने के बाद उसे बताया गया कि मिनिस्टर साहब अभी-अभी बाहर से लौटकर आए हैं। होल्ड-ऑन करें, तो उनसे पूछ लिया जाए कि वह इस वक्त बात कर सकेंगे या नहीं। एक मिनट बाद उससे कहा गया कि मिनिस्टर साहब फोन पर है, वह बात कर ले। फिर उधर से राजकृष्ण की भारी आवाज सुनाई दी, "कहो मीरा, क्या हाल हैं?"

मीरा को समझ नहीं आया कि वह क्या उत्तर दे। बातें सब की सब जैसे एकाएक दिमाग से गायब हो गईं। उसे अजीब लगा कि जिस आदमी के साथ

कभी एक ही टीम में वह यूनिवर्सिटी की डिबेटों में हिस्सा लिया करती थी, आज टेलीफोन पर उसकी आवाज़ सुनकर वह एकाएक पथरा क्यों गई है ? उसने कोशिश करके किसी तरह कहा, "रवि ने आज सुबह बताया था कि आप आए हुए हैं···।"

"हां, अभी थोड़ी देर पहले एक लंच में रवि से मुलाकात हुई थी," उधर की आवाज़ पहले से भी भारी लगी, "उसने बताया था कि तुम भी यहीं हो और शायद किसी वक्त फोन करोगी।"

मीरा को अपने अंधेरे दिमाग में टटोलते हुए अब भी कुछ कहने को नहीं मिल रहा था। पल-भर के वक़्फे के बाद उधर से आवाज़ आई, "हलो, आर यू ऑन द लाइन ?"

"हां-हां," मीरा बोली, "आप अभी दो-एक दिन रुकेंगे न यहां ?"

"मुझे रात के प्लेन से चले जाना है," उधर से सुनाई दिया। "मगर उससे पहले किसी वक्त मिल सको, तो बहुत अच्छा है। इधर चार-पांच साल से तो तुम्हें देखा ही नहीं है। मैं शाम को खाली हूं, पांच और छः के बीच। चाय तुम यहीं आकर पियो। रवि के पास वक्त हो, तो उसे भी साथ ले आना।"

रिसीवर रखने के बाद मीरा का हाथ देर तक वहीं रुका रहा। जिस आदमी के साथ कितनी ही बार कॉलेज की कैण्टीन में बैठकर चाय पी थी, आज उसीके साथ सरकिट हाउस में चाय पीना इतना अस्वाभाविक क्यों लग रहा था ?

पहले से आए हुए लोग अन्दर बात कर रहे थे इसलिए उसे बाहर के कमरे में इन्तजार करने को कहा गया। सरकिट हाउस की इमारत उसके लिए अपरिचित नहीं थी। दो-एक बार पहले भी वह वहां आ चुकी थी। पर उस वक्त वह जगह उसे बेगानी-सी लग रही थी। रोशनदान से झांकती एक चिड़िया जैसे लगातार कोई सवाल पूछ रही थी, "चि-चि-चि-चि-चु-चु-चु-चि-चि···?" लॉन में बिखरी अलसाई धूप फीकी पड़ रही थी। धूप की उदासी उसे अपने तन-मन में समाती-सी लगी, तो अपनी जगह से उठकर वह अलमारी के पास चली गई। अलमारी में सभी किताबें बहुत पुरानी थीं···अंग्रेजों के जमाने की

खरीदी हुई। बरसों से शायद किसी ने भी न तो अलमारी को खोला था, न किताबों को छुआ था। जिल्दों का सुनहरा रंग गर्द की परतों में मटियाला हो चला था। चमड़े में सफेदी उभर आई थी और गत्ते कागजों से चिपक गए-से लगते थे। मालों की बास जैसे कांच की दीवारें लांघकर बाहर आ रही थी। वहां से हटते हुए उसने दीवार-घड़ी की तरफ देखा। दिए गए वक्त से पन्द्रह मिनट ऊपर हो चुके थे।

"साहब ने कहा है कि अभी पांच मिनट में बुला रहे हैं," उस दुबले-से व्यक्ति ने आकर कहा जो उसे वहां छोड़ गया था। "तब तक आपके लिए ठण्डा या गरम कुछ भेजूं?"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए," मीरा ने अन्यमनस्कता से कहा और अपने में व्यस्त हो रही। "वह खाली हों, तो मुझे पता दे दें।"

दीवारों पर लगी तसवीरें भी शायद जॉर्ज पंचम के जमाने की थीं। विगनेन···सेण्ट पॉल्ज···टेम्ज का पुल···उसे लगा जैसे उस कमरे में जिन्दगी बरसों से एक जगह पर रुकी है··· वक्त को सन् चालीस के मॉडल की दीवार घड़ी ने अपने में बन्द कर रखा है···और टिक्-टिक् की आवाज लगातार उसपर पहरा दे रही है।

"आइए, साहब बुला रहे हैं।" दुबले व्यक्ति ने कुछ देर बाद फिर आकर कहा। वह चौंककर उसके साथ चल दी। बरामदे में गुजरते हुए उसने इस तरह हवा को अन्दर खींचा जैसे जॉर्ज पंचम के जमाने की सारी गर्द अपने फेफड़ों में बुहार देना चाहती हो।

राधाकृष्ण हाल के उस तरफ छोटे कमरे में था। हाल में से गुजरते हुए मीरा को लगा कि कितनी ही आंखें एकटक उसे देख रही हैं। न जाने किस-किस काम से कितने-कितने लोग वहां आकर बैठे थे। भीड़ में अचानक किसी परिचित व्यक्ति से नजर न मिल जाए, इसलिए वह आंखें नीची किए रही। छोटे कमरे का दरवाजा खुलते ही वह जल्दी से अन्दर चली गई।

राधाकृष्ण ने उसे देखकर हाथ के कागज मेज पर रख दिए और उठकर उसकी तरफ बढ़ आया। वही उजला खादी का लिबास जो वह उन दिनों पहना

कभी एक ही टीम में वह यूनिवर्सिटी की डिबेटों में हिस्सा लिया करती थी, आज टेलीफोन पर उसकी आवाज़ सुनकर वह एकाएक पथरा क्यों गई है ? उसने कोशिश करके किसी तरह कहा, "रवि ने आज सुबह बताया था कि आप आए हुए हैं···।"

"हां, अभी थोड़ी देर पहले एक लंच में रवि से मुलाकात हुई थी," उधर की आवाज़ पहले से भी भारी लगी, "उसने बताया था कि तुम भी यहीं हो और शायद किसी वक्त फोन करोगी।"

मीरा को अपने अंधेरे दिमाग में टटोलते हुए अब भी कुछ कहने को नहीं मिल रहा था। पल-भर के वक़फे के बाद उधर से आवाज़ आई, "हलो, आर यू ऑन द लाइन ?"

"हां-हां," मीरा बोली, "आप अभी दो-एक दिन रुकेंगे न यहां ?"

"मुझे रात के प्लेन से चले जाना है," उधर से सुनाई दिया। "मगर उससे पहले किसी वक्त मिल सको, तो बहुत अच्छा है। इधर चार-पांच साल से तो तुम्हें देखा ही नहीं है। मैं शाम को खाली हूं, पांच और छः के बीच। चाय तुम यहीं आकर पियो। रवि के पास वक्त हो, तो उसे भी साथ ले आना।"

रिसीवर रखने के बाद मीरा का हाथ देर तक वहीं रुका रहा। जिस आदमी के साथ कितनी ही बार कॉलेज की कैण्टीन में बैठकर चाय पी थी, आज उसीके साथ सरकिट हाउस में चाय पीना इतना अस्वाभाविक क्यों लग रहा था ?

पहले से आए हुए लोग अन्दर बात कर रहे थे इसलिए उसे बाहर के कमरे में इन्तज़ार करने को कहा गया। सरकिट हाउस की इमारत उसके लिए अपरिचित नहीं थी। दो-एक बार पहले भी वह वहां आ चुकी थी। पर उस वक्त वह जगह उसे बेगानी-सी लग रही थी। रोशनदान से झांकती एक चिड़िया जैसे लगातार कोई सवाल पूछ रही थी, "चि-चि-चि-चि-चु-चु-चु-चि-चि···?" लॉन में बिखरी अलसाई धूप फीकी पड़ रही थी। धूप की उदासी उसे अपने तन-मन में समाती-सी लगी, तो अपनी जगह से उठकर वह अलमारी के पास चली गई। अलमारी में सभी किताबें बहुत पुरानी थीं···अंग्रेजों के ज़माने की

खरीदी हुई। बरसों से शायद किसी ने भी न तो अलमारी को खोला था, न किताबों को छुआ था। जिल्दों का सुनहरा रंग गर्द की परतों से मटियाला हो चला था। चमड़े में सफेदी उभर आई थी और गत्ते कागजों से चिपक गए-से लगते थे। सालों की बास जैसे कांच की दीवारें लांघकर बाहर आ रही थी। वहां से हटते हुए उसने दीवार-घड़ी की तरफ देखा। दिए गए वक्त में पन्द्रह मिनट ऊपर हो चुके थे।

"साहब ने कहा है कि अभी पांच मिनट में बुला रहे हैं," उस दुबले-से व्यक्ति ने आकर कहा जो उसे वहां छोड़ गया था। "तब तक आपके लिए ठण्डा या गरम कुछ भेजूं ?"

"मुझे कुछ नहीं चाहिए," मीरा ने अन्यमनस्कता से कहा और अपने में मग्न हो रही। "वह खाली हों, तो मुझे पता दे दें।"

दीवारों पर लगी तसवीरें भी शायद जॉर्ज पंचम के जमाने की थीं। बिग-बेन···सेण्ट पॉल्ज···टेम्ज का पुल···उसे लगा जैसे उस कमरे में जिन्दगी बरसों से एक जगह पर रुकी है··वक्त को सन् चालीस के मॉडल की दीवार घड़ी ने अपने में बन्द कर रखा है···और टिक्-टिक् की आवाज लगातार उसपर पहरा दे रही है।

"आइए, साहब बुला रहे हैं।" दुबले व्यक्ति ने कुछ देर बाद फिर आकर कहा। वह चौंककर उसके साथ चल दी। बरामदे से गुजरते हुए उसने इस तरह हवा को अन्दर खींचा जैसे जॉर्ज पंचम के जमाने की सारी गर्द अपने फेफड़ों में बुहार देना चाहती हो।

रामकृष्ण हाल के उस तरफ छोटे कमरे में था। हाल में से गुजरते हुए मीरा को लगा कि कितनी ही आंखें एकटक उसे देख रही हैं। न जाने किस-किस काम से कितने-कितने लोग वहां आकर बैठे थे। भीड़ में अचानक किसी परिचित व्यक्ति से नजर न मिल जाए, इसलिए वह आंखें नीची किए रही। छोटे कमरे का दरवाजा खुलते ही वह जल्दी से अन्दर चली गई।

रामकृष्ण ने उसे देखकर हाथ के कागज मेज पर रख दिए और उठकर उसकी तरफ बढ़ आया। वही उसका खादी का लिबास जो वह उन दिनों पहना

करता था। लम्बे चेहरे पर वही चमक, वही गोराई। वही आंखें—ऑपरेशन के औज़ारों की तरह तीखी। "आओ, मीरा," उसने कहा, "ज़्यादा देर तो नहीं बैठना पड़ा ?"

"ज़्यादा नहीं, सिर्फ बीसेक मिनट !" वह मुसकराई।

"मुझे बहुत अफसोस है, पर किया क्या जाए ?" राजकृष्ण ने सोफे की तरफ इशारा कर दिया, "वही स्ट्राइक वाला मामला फसा हुआ है। लोग किसी भी तरह मानने में नहीं आते। आजकल लेबर के नखरे इतने बढ़े हुए हैं कि कुछ पूछो नहीं···।"

मीरा बैठ गई। राजकृष्ण पास आ बैठा। "तुम बहुत दुबली लग रही हो," उसने कहा।

"मैं दुबली लग रही हूं ? नहीं तो ···" मीरा ने अपने को थोड़ा समेट लिया। वह इतनी आत्मीयता के लिए तैयार नहीं थी।

"या कहो कि मुझे तुम्हारे उन दिनों के चेहरे की ठीक से याद नहीं रही।"

मीरा अन्दर-ही-अन्दर सकपका गई। क्या ज़रूरी था कि इस वक्त उन की चर्चा की जाए ? "कह नहीं सकती," वह कुछ अटकती हुई बोली। "छः-सात साल से वज़न तो मेरा लगभग एक-सा रहा है।"

"मैंने वज़न की बात नहीं कही।"

मीरा को लगा कि राजकृष्ण की आंखें कैण्टीन के दिनों की तरह उस वक्त भी उसकी आंखों से अपने को बचा रही हैं कि वह उसी तरह उन बचती आंखों का पीछा कर रही है—कहीं किसी तरह उन्हें अपनी पकड़ में ले आना चाहती है।

"यूं मेरा ख्याल है, देखने में भी मैं अब तक वैसी ही लगती हूं," उसने कहा।

"अपना चेहरा आईने में देखती हो न ?"

मीरा और सकपका गई, "मुझे तो नहीं लगता कि मुझमें कोई खास फर्क आया है।"

"हां, जिस तरह का फर्क आना चाहिए, उस तरह का फर्क नहीं आया।"

मीरा को लगा कि अब राजकृष्ण की आंखें बचने की जगह उसकी आंखों का पीछा कर रही हैं। "मतलब ?" उसने पूछ लिया।

"मतलब कुछ नहीं। बस ऐसे ही कह रहा था। शायद इसलिए कि मन में कहीं ख्याल था कि दो-एक बच्चे-अच्चे हो जाने से अब तक तुम मुटिया गई होगी।"

मीरा को अपना गला खुश्क होता जान पड़ा। सहसा कोई भी बात उसके होंठों पर नहीं आई। बैरा तभी चाय की ट्रे लेकर आ गया, इसलिए वह कुछ कहने से बची रही।

लौटकर घर आते ही मीरा ने अपना कमरा अन्दर से बन्द कर लिया। उससे पहले शंकर से कह दिया कि रात का खाना वही बना ले, उसकी तबीयत ठीक नहीं है। यह भी कि साहब आए, तो भी उसे न बुलाया जाए—वह कुछ देर सोना चाहती है। मगर कमरा बन्द करके वह लेटी नहीं, पलंग की पीठ पर हाथ रखे काफी देर चुपचाप खड़ी रही।

उसे लग रहा था कि उसके दांत दर्द कर रहे हैं, माथा दर्द कर रहा है, आंखें दर्द कर रही हैं। गले से नीचे सांस की नाली में भी उसे दर्द महसूस हो रहा था। नाभि के दाईं तरफ एक गांठ-सी पड़ गई लगती थी, जैसे किसी ने उस हिस्से को मुट्ठी में कस लिया हो और ज़ोर से भींच रहा हो। अपने-आप से, सामने बिस्तर पर बिखरे कपड़ों से, और कोने में रवि की टेबल पर रखे कागज़ों से जॉर्ज पंचम के ज़माने की चिपचिपी किताबों की बू आ रही थी। लग रहा था कि वह बू उसकी सांसों में और रोम-रोम में समा गई है। बू के मारे एक चिड़िया पंख फड़फड़ाती हुई पास ही कहीं तड़प रही है—चि-चि-चु-चु-चु-चु-चि ··चि-चि-चि-चि···।

खिड़की के बाहर शाम गहराकर रात में घुल रही थी। पेड़, पत्ते, घास, सड़क और सड़क पर चलते लोग—सब स्याह धूल की परतों में ओझल होते जा रहे थे। हवा से पत्ते सरसराते, तो सारे शरीर पर नाखून-से रेंगने लगते। कच्ची सड़क पर आती मोटरों की बत्तियां दूर से अपने को घूरती हुई लगतीं। मैदान के उस तरफ पुरानी बस्ती के घर ऐसे लग रहे थे जैसे शराब पीकर औंधे पड़े हों। सिर चकरा रहा था और उसे लग रहा था कि अभी उसे कै होने लगेगी।

उसने साड़ी निकाल दी और माथा पकड़ बिस्तर पर बैठ गई। हर आहट से मन चौंक जाता कि रवि आ गया है और अभी दरवाज़े पर दस्तक देने वाला है। कोशिश करके अपने को समझाना पड़ता कि रवि के आने से पहले बाहर कार का हार्न सुनाई देगा, फिर कार अन्दर आकर रुकेगी, फिर दरवाज़ा बन्द होने के साथ रवि की आवाज़ सुनाई देगी, "शंकर!"

हर बार यह विश्वास हो जाने पर कि रवि अभी नहीं आया, मन को कुछ सहारा मिलता। अन्दर और बाहर की हर आहट से वह बची रहना चाहती थी। रवि से, या किसी से भी, बात करने से पहले वह वक्त चाहती थी—अभी काफी और वक्त। इतना कि कम से कम उसके बीतने में सुबह हो जाए।

उसका दायां हाथ सरककर कन्धे पर आ गया···वहां जहां राजकृष्ण ने कुछ देर पहले उसे छुआ था। उसे लगा कि राजकृष्ण की गरम सांस अब भी उसके गाल को चुनचुना रही है, उसके होंठों से निकलते शब्द अब भी कानों में लकीरें खींच रहे हैं। "कितनी बार सोचता हूं, मीरा, कि तब मैंने कितनी गलती की थी। खामखाह झूठे आदर्शवाद में पड़कर तुम्हें और अपने को छलता रहा कि वह ज़िन्दगी मेरे लिए नहीं है जो तुम मुझे देना चाहती थीं···!"

राजकृष्ण का हाथ कन्धे से हटाकर, अपने होंठों पर झुके उसके होंठों से बचकर, वह एकाएक उठ खड़ी हुई थी। राजकृष्ण कुछ देर अपनी जगह से हिला नहीं था, वहीं बैठा चुभती नज़र से उसे देखता रहा था। "मेरी बात से तुम्हें चोट पहुंची है?" उसने पूछा था।

तब तक उसने अपने को थोड़ा संभाल लिया था और मेज़ के सहारे खड़ी होकर बालों की पिनें ठीक कर रही थी। "मुझे अब चलना चाहिए," उसने कहा था, "रवि के आने का वक्त हो रहा है।"

"रवि को यह पता तो है ही कि तुम यहां आई हो," राजकृष्ण कुछ अटकते स्वर में बोला था, "अभी कुछ देर पहले वह यूनियन के नेताओं के साथ यहीं था। घर पहुंचने में आज उसे काफी देर हो जाएगी।"

"फिर भी मुझे चलना चाहिए," रूमाल से मुंह और माथे का पसीना पोंछते हुए उसने कहा था, "घर पर खाना मैं खुद ही बनाती हूं—आज मेरी तबीयत भी कुछ ठीक नहीं है।"

राजकृष्ण अपनी जगह से उठा, तो उसे लगा कि उसके पैर डर के मारे ज़मीन से चिपक गए हैं। "आज बहुत थका हुआ था," राजकृष्ण ने कहा, "सोचा था, तुम आओगी तो कुछ देर थोड़ा रिलैक्स कर लूंगा। तुम सोच भी नहीं सकती कि इस ज़िन्दगी में रात-दिन कितना तनाव मन मे रहता है ''।"

वह ठीक से सोच भी नही पा रही थी कि कब और कैसे राजकृष्ण के होंठ उसके होंठों से आ मिले थे। उसने ज़ोर से चीखना चाहा था, पर गले से आवाज़ नही निकली थी। "मुझे जाने दीजिए," सिर्फ इतना कहकर और उसकी बाहों से अपने को अलग करके जल्दी से वह बाहर चली आई थी। यह ध्यान भी उसे बाद मे आया था कि अपना रूमाल और पर्स वह उस कमरे में ही भूल आई है।

गांठ कस रही थी और शरीर पसीने से तर-ब-तर हो रहा था। मन हो रहा था कि बाकी कपड़े भी जिस्म से उतार दे और जाकर शॉवर के नीचे खड़ी हो जाए। घंटा-दो घंटे फुहार को अपने ऊपर लेती रहे, जिससे जिस्म का एक-एक हिस्सा, एक-एक मुसाम, सीज जाए और उसमें उस सीजन के अलावा कुछ भी महसूस करने की शक्ति न रहे। साथ ही एक नामालूम-सा डर उसके रोएं-रोएं मे काप गया। यह सास-सांस में उभरती जलन ''यह कसती गाठ मे बसा हुआ दर्द'''आज तक क्या कभी उसका शरीर पसीने से इस तरह भीगा था?

शरीर सुन्न होता-सा लगा, तो उसने जैसे डर से सिहरकर दरवाज़े की चटखनी खोल दी। ड्राइंग-रूम की बत्ती जल रही थी। जल्दी में उसने शरीर को साड़ी में लपेट लिया। मन में बहुत अचम्भा हुआ। रवि कब आया और कब ड्राइंग-रूम में सोफे पर लेटकर किताब पढ़ने लगा? फाटक के बाहर गाड़ी का हार्न क्यों सुनाई नही दिया? अन्दर आकर उसने शंकर को आवाज़ क्यों नही दी?

तकिये का सहारा लेकर वह बिस्तर पर लेटने जा रही थी कि रवि के जूते की आवाज़ बहुत पास सुनाई दी। अन्दर आकर भी रवि ने बत्ती नहीं

जलाई थी। "कैसी तबीयत है ?" उसने बिस्तर पर पास बैठकर पूछा। स्वर में वही उदासीनता थी जिससे वह दस साल से लड़ती आ रही थी। मन में शायद अब भी रवि दफ्तर की, स्ट्राइक की, आंकड़ों की, बात सोच रहा था।

"ठीक नहीं है," उसने फुसफुसाकर कहा और रवि के कन्धे का सहारा ले लिया। सिर उसका रवि की छाती पर झुक गया।

"डाक्टर को दिखाना चाहोगी ?"

फिर सवाल ! पर वह जानती थी कि रवि के किसी सवाल का अर्थ निश्चयात्मक नहीं होता। उसकी सांस तेज़ हो गई। सिर झुककर रवि की छाती पर और नीचे आ गया और उसके होंठ उसके सीने के बालों को सहलाने लगे।

"मुझे अभी फिर जाना होगा," रवि ने कहा, "राजकृष्ण को एयरपोर्ट पर सी-ऑफ करना है।"

मीरा ने सिर उसकी छाती से हटा लिया और तकिये में मुंह छिपाकर पड़ रही।

'कहो तो पहले डाक्टर को बुला दूं ?" रवि बात करता रहा, "नहीं तो आते हुए साथ लेता आऊंगा···राजकृष्ण ने मेरे आंकड़ों के आधार पर ही झगड़े का निपटारा किया है···सबसे कहता रहा कि हम लोग बहुत पुराने दोस्त हैं···।"

मीरा ने चादर ओढ़कर जैसे अपने को ओट में कर लिया। "तुम्हें जाना है, जाओ," उसने कहा, "मेरी तबीयत ऐसी ज्यादा खराब नहीं है। तुम्हारे लौटने तक शायद ठीक भी हो जाऊंगी।"

रवि ने उसकी बांह को हल्के-से थपथपा दिया और वहां से चलने के लिए उठ खड़ा हुआ। "बत्ती जला दूं ?" उसने चलते-चलते पूछा।

"नहीं, रहने दो," मीरा ने करवट बदल ली। "जरूरत होगी, तो शंकर से कहकर जलवा लूंगी।"

रवि के जूते की आवाज ड्राइंग-रूम से होकर बाहर चली गई। कार का दरवाजा खुलकर बन्द हुआ। कार के पहिये कच्ची सड़क पर दूर तक आवाज करते रहे।

मीरा तकिये में सिर छिपाए कल्पना में देखती रही—पहियों के नीचे

दुबकती सड़क···व्याकुल होकर पनाह के लिए इधर-उधर चक्कर काटती धूप···पीछे पेड़ों की घनी रेखाएं···दूर नई बस्ती के घरों की बत्तियां··· और उनके पीछे फौलाद की भट्ठी का तांबई आकाश···स्ट्राइक खत्म हो गई थी। चार दिन में भट्ठी फिर जल उठेगी।

मीरा ने सिर उठाया और तकिये में अपने सिर से बने निशान पर हाथ रखे आकाश में वह जगह ढूंढ़ने लगी जहां सुबह-सुबह एक सितारा चमकता देखा था ··यह सोचकर उसकी उदासी गहरी हो गई कि भट्ठी जलने के बाद वह अब फिर वहां दिखाई नहीं देगा—कभी, किसी भी सुबह ·।

तलुओं में सुबह की घास और शबनम की ठण्डक ताजा हो आई। मन हुआ कि कुछ देर फिर उसी तरह घास पर टहले, वहां से खुले आकाश को देखे। अभी तीन-चार रातें तो पच्छिम में सितारों की चमक देखी ही जा सकती थी।

साड़ी ठीक से बांधकर उसने बालों में पिनें फिर से लगाईं। चलते-चलते आईने में अपने पर एक नज़र डाली और बाहर ड्राइंग-रूम में आ गई। ड्राइंग-रूम उस वक्त उसे और दिनों से भी खुला और बड़ा लगा। अजदहे की शक्ल की ऐश-ट्रे में कितनी ही सिगरटें बुझी हुई थीं और वहीं पास में तिपाई पर उसका पर्स और रूमाल रखा था। इससे पहले कि वह शंकर से पूछती, शंकर ने खुद ही उसे बता दिया, 'सरकिट हाउस का चौकीदार ये चीज़ें दे गया था।"

मीरा पल-भर उन चीज़ों को देखती रही। फिर बरामदे से होकर बाहर लॉन में आ गई, आते हुए शंकर से कह आई, "देखो, पर्स उठाकर अलमारी में रख दो। और रूमाल···रूमाल को धोबी के कपड़ों में डाल देना।"

क्वार्टर

दरवाज़े के चौखट पर काल-वेल है। काल-वेल के पास ही नेम-प्लेट। काल-वेल जितनी नई है, नेम-प्लेट उतनी ही मैली। नेम-प्लेट पर तिरछी-सी लिखावट है—शंकर राजवंशी।

नई दिल्ली में, गोल डाकखाने के पास, कनाट प्लेस से कुल आधा मील दूर, पांच कमरे का फ्लैट। यह बात अपने में इतनी बड़ी है कि बातचीत में अक्सर इसका ज़िक्र आ ही जाता है।

शंकर अपनी तनखाह की गिनती करता है। "मिलते तो स्कूल से पांच ही सौ हैं, पर मुझे कुल मिलाकर डेढ़ हज़ार के करीब पड़ जाते हैं। चार सौ तो क्वार्टर के ही जोड़ने चाहिए। कम से कम। हालांकि चार सौ में इससे आधी जगह भी नहीं मिलती इस इलाके में। फिर बिजली पानी का कुछ नहीं देना पड़ता। सेंट्रल जगह होने से स्कूटर-टैक्सी की बहुत बचत होती है। एम्पोरियम भी बहुत पास में है, जहां राधा नौकरी करती है। साढ़े तीन सौ वह ले आती है।"

उसकी आंखें चमकने लगती हैं। "और काम कितना है? हफ्ते के कुल बाईस पीरियड। सात दिन में पन्द्रह घंटे पढ़ाना, बल्कि उससे भी बहुत कम। कितनी छुट्टियां आ जाती हैं। कितनी बार पीरियड लिए ही नहीं जाते।"

पता वह बहुत संक्षिप्त बताता है। चौदह-ए, अविन लेन, नई दिल्ली-एक।

"अविन लेन में बाहर की तरफ से आइए। दायें हाथ क्वार्टरों की लबी कतार मिलेगी। हरे रंग के दरवाजे हैं। उनमे आठवा दरवाजा।"

अपनी आखों की चमक वह दूसरे की आखो मे भी खोजता है। उसे और विश्वास दिला सकने के लिए अनुरोध करता है कि वह किसी दिन उसके यहा जरूर आए। "बारह बजे के बाद मैं अक्सर घर पर ही होता हू। आप जब भी टेलीफोन कर लीजिए। नम्बर है…।"

डिग-डाग-डिग—काल-बेल की आवाज सारे क्वार्टर में गूज जाती है।

दरवाजे के सामने पहला कमरा पापा का है। पापा गरदन उचकाकर और आखें गोल करके प्रतीक्षा करते है कि कोई दरवाजा खोलने आ रहा है या नही। अगर गुन्नू या पुन्नू मे से कोई आ जाता है, तो उनकी गरदन तकिये पर सीधी हो जाती है। आखें उदासीन भाव से छत से जा जुड़ती हैं। मुह मे वे गुनगुनाने लगते हैं, "बस के दुशवार है…।"

मगर दो-तीन बार बेल बजने पर भी कोई नहीं आता, तो 'पड़े मो रहे होंगे सब…' जैसा कुछ बुदबुदाते, एक हाथ से दो-गजा लुंगी को सभाले झटके से जाकर वे कुडी खोल देते हैं। खोलते ही वापस अपनी चारपाई की तरफ लपकते हैं जिसमे आनेवाले को अपनी पहले की स्थिति मे लेटे नजर आए।

पापा देखें चाहे छत की तरफ या दीवार की तरफ, पर जो कोई भी बाहर मे आता है, उसका पूरा जायजा वे कनखियों से ले लेते हैं। गुन्नू को बाजार जाते और कोका कोला की बोतलो के साथ लौटते देखकर वे पूछ लेते हैं, "फिर वही आई है पटेल नगर वाली जोड़ी ? आज अभी वही बोतल नहीं खोली साहब ने ?"

गुन्नू मुसकरा देता है। मुसकराने मे होंठ उसके आधे ही खुलते हैं, चेहरे का आधा हिस्सा गम्भीर बना रहता है। "आज ड्राई डे है, पापा।" कहता हुआ वह सामने से गुजर जाता है। पापा तकिये से थोड़ा उचकते है, फिर ढीले पड़कर करवट बदल लेते है। "ड्राई डे है। इसके लिए भी कोई ड्राई डे होता है जैसे। हराम की कमाई आती है, खर्च किए जाते हैं।" खिड़की से आती धूप से आँखें मिचकाते वे तकिये की स्थिति बदलने की कोशिश करते है। "और कमाई भी कहां की है ? कर्ज का पैसा है सब। ठीक है। फिर आओ कर्ज और

हो, तब तो बिलकुल ही नही आती। वे आसपास से गुजरने वाली हर आहट का मन मे अर्थ लगाते रहते हैं। ये खाली गिलास गए हैं उधर। यह तिपाई लाई गई है बीच के कमरे से। यह अन्दर की अलमारी से निकला है कुछ, यह बर्फ निकली है फ्रिज से, और दोनों चीजें साथ-साथ गई हैं। यह कोई उधर से उठा है और इस तरफ को आ रहा है।

गुसलखाने का रास्ता पापा के कमरे से होकर है, इसलिए जिस-किसीको बीच मे उधर आना पड जाता है। अगर आनेवाले की नजर उन पर पड जाए, तो पापा खखारकर उसका स्वागत करते हैं, 'आदाब अर्ज है।' लेकिन वह बिना उन्हें देखे गुसलखाने की तरफ बढ जाए, तो पापा खास-खासकर उसे अपने वहां होने की सूचना देन लगते है। उधर से पुराना फ्लश उसी अन्दाज में आवाज करता है– ढी-ढुच्, ढी-ढुच्, ढी-ढुच्। पापा बिस्तर पर सीधे बैठ जाते है। मुह मे झाग बनने लगता है। उधर फ्लश मे पानी छूटता है, इधर उनके मुह से शे'र फूटता है :

"कावे कावे
सख्तजानीहाए तनहाई
न पूछ।"

और ज्योंही गुसलखाने का दरवाजा खुलने की आवाज होती है, उनके अंग-प्रत्यंग में जैसे हारमोनियम बजने लगता है और तबले पर थाप दी जाने लगती है :

"कावे कावे
कावे कावे
कावे कावे
सख्तजानीहाए तनहाई न पूछ
हाए तनहाई न पूछ।
कि सुबह करना
सुबह करना
सुबह करना शाम का
लाना है जूए शीर का
लाना है जूए शीर का।

काबे काबे…।"

गुसलखाने से निकलकर आता व्यक्ति अगर ज़रा भी मुसकरा दे, तो चारपाई पर उसके लिए जगह छोड़ते हुए वे कहते हैं, "आइए-आइए ! तशरीफ रखिए। सेहत कैसी है ?" लेकिन अगर वह आंख बचाता निकल जाना चाहे, तो वे पीछे से आवाज़ दे लेते हैं, "क्यों साहब, जिता दिया न आखिर आपने इन्दिरा को ?" और उसके मुड़कर अपनी तरफ देखते ही वे चारपाई पर सरक जाते हैं। "आइए, बैठिए एक मिनट। तशरीफ रखिए। सेहत कैसी है ?"

एक नज़र खिड़की से बाहर डालकर कि शंकर वहीं तो नहीं खड़ा, वे पहले थोड़ी भूमिका बांधते हैं, 'हमारे साहबजादे तो वोट देने गए ही नहीं। बताइए, यह भी कोई बात हुई ? मेरी टांगें बेकार न होतीं, तो मैं तो ज़रूर जाता वोट देने। वोट न देने का क्या मतलब होता है ? कि जो हो रहा है, ठीक हो रहा है। मैं तो अब इन लोगों से बहस भी नहीं करता। कहता हूं ठीक है, मत जाओ वोट देने। तुम लोग मरद हो ही नहीं। जनखे हो। तुम्हारे लिए औरत का राज ही ठीक है।" लेकिन जल्दी ही वे अपनी असली बात पर आ जाते हैं, "आपको इसे समझाना चाहिए इस बार। कहीं इस तरह भी घर चला करते हैं ? कमाना बाद में और खर्च पहले कर देना। मैं कहता हूं सारे अरमान एक ही बार पूरे कर लोगे, तो बाकी उम्र काटने को बचेगा क्या ? अपने वक्त पर हमने भी काफी खर्च किया है। लेकिन अपनी औकात से बाहर जाकर नहीं। साथ अपनी ज़िम्मेदारियां भी निभाई हैं। बड़े-बुजुर्गों की आखिरी दिन तक सेवा की है। मगर इन लोगों की सेवा भी देख लीजिए। पेशाबघर के बाहर डाल रखा है मुझे। रोज़ मुझसे पूछ लीजिए कि कितनी बार फ्लश चला है दिन में। यही डायरी रखने के लिए लिटा रखा है मुझे यहां।"

बोलते-बोलते उनकी आंखों से आंसू बहने लगते हैं। लुंगी के सिरे से आंसू पोंछते हुए कई बार उन्हें ध्यान नहीं रहता कि कपड़ा कहां तक ऊंचा उठ गया है। तभी दहलीज़ के पास से शंकर की आवाज सुनाई दे जाती है, "क्या हो रहा है, पापा ?"

पापा जल्दी से लुंगी समेट लेते हैं, "आंखों में फिर से पानी आ रहा है। गुन्नू से कहना दवाई ला दे।"

शंकर कुछ पल खामोश रहकर उन्हें देखता रहता है। फिर यह कहता

सामने से हट जाता है, "दवाई तो आ जाएगी। मगर उसे डालने के लिए कौन राज़ी करेगा आपको?"

पापा के कमरे के सामने से दाईं तरफ को मुड़ते ही शंकर की स्टडी है। पढ़ने की मेज़ के पास दीवान पर बैठे हुए शंकर की उंगली अनायास टेबल लैम्प के बटन को दबाने लगती है। बार-बार बत्ती के जलने-बुझने से जापानी घर की शक्ल का टेबल लैम्प बिलकुल खिलौना-सा लगता है।

स्कूल से लौटकर वह अक्सर अपने को इस कमरे में बन्द कर लेता है। खिड़की समेत साढ़े तीन दीवारें और एक दरवाज़ा। तीलियों की भारी चिक से ढका। लाल पत्थर की पटियों का फर्श। ठंडा-ठंडा। एक चटाई, एक दीवान और एक संगमरमर टाप की मेज़। सिर्फ पैर से उतरी चप्पल किसी भी तरह कमरे की व्यवस्था में नहीं खप पाती। चमड़े पर पसीने से बने दो पैरों के निशान इतने अखरते हैं कि कई बार सोचते या बात करते हुए बीच में उठकर वह चप्पल की स्थिति बदल देता है।

डिंग-डांग-डिंग—काल-बेल की आवाज़ उसे अच्छी लगती है। मगर दरवाज़े की पुरानी कुंडी ज्यों खट् खुलती है, किवाड़ ईउंग-ईउंग करते अंदर को सिमटते हैं, तो कौन आया है, यह जानने से पहले ही उसके माथे पर हल्की त्यौरी पड़ जाती है। क्योंकि तब तक पापा के कमरे में उनकी चारपाई चरमरा उठती है।

गुन्नू की आवाज़ सुनकर ही उसे पता चल जाता है कि आनेवाला कौन हो सकता है। "वे अभी आए नहीं स्कूल से। आप काम बता दीजिए," का मतलब होता है विद्याव्रत या मदुवीर सहाय जैसा कोई आदमी। 'कुछ काम कर रहे हैं अंदर। कहा था चार बजे तक डिस्टर्ब मत करना," के माने होते हैं विश्वेश्वर, नामदेव, राठौ या रिज़ी में से कोई एक। "चले आइए। बैठे हैं," का अभिप्राय होता है राजेश्वर, मीना या माधवराव। पर "सो रहे हैं शायद। आप नाम बता दीजिए। अभी देखकर बताता हूं," का अर्थ निकलता है कि आनेवाला कोई ऐसा व्यक्ति है जिसे गुन्नू पहले से नहीं जानता। तब गुन्नू के अंदर आने तक धीरज न रखकर वह खुद ही आवाज़ दे देता है,
"

दिन-भर कोई न कोई उस कमरे में आया ही रहता है। राधा से जब उसने यह कमरा सेट कराया था, तो यही कहा था कि घर में कभी अकेला रह सकने के लिए उसे एक जगह चाहिए। मगर आध-पौन घंटा अकेला रह लेने के बाद उसे अपने अकेलेपन से उलझन होने लगती है। मन उन दिनों के वातावरण के लिए भटकने लगता है जब अपने कंवारेपन में एक अकेला कमरा उसके पास था। पता नहीं कितने लोग उस कमरे में सोते थे, कितने आते-जाते थे। अगर राधा आई होती थी, तो उन लोगों के लिए चाय बना दिया करती थी। उस कमरे में कभी वह अपने को इस तरह बंद महसूस नहीं करता था। न ही इतना खाली।

अगर और कोई उसके पास न बैठा हो, तो पड़ोस में चौदह नंबर से रवि शर्मा आकर अंदर झांक लेते हैं, "भाई साहब बिज़ी तो नहीं हैं?"

रवि शर्मा उसकी ज़रूरत को समझते हैं। लोगों को खुद पास बिठाकर भी शंकर उनके बैठ रहने से ऊबता है, यह जानने के कारण वे बैठते कम हैं, ज़्यादातर खड़े-खड़े ही बात करते हैं। बात करते हुए दोनों हाथों को आपस में मलते रहते हैं। इकहरा शरीर थोड़ा आगे को झुका रहता है। अपने आने के ठोस कारण के रूप में वे स्कूल या पास-पड़ोस का कोई न कोई स्कैंडल सुनाने लगते हैं। स्कूल के स्वयंसेवक अध्यापक ने मार्केट के एक दुकानदार पर छुरा चला दिया क्योंकि वह अपने लड़के को सुबह संघ की शाखा पर जाने से रोकता था। राठी की नौकरी चली जाएगी क्योंकि आज फिर उसने अपनी बीबी को पीट दिया है—केस वाइस प्रिंसिपल मनचंदा के पास है। शाम को इलेक्शन का रिज़ल्ट आने के साथ ही बाज़ार में नई कांग्रेस और पुरानी कांग्रेस वालों में मुठभेड़ हो गई—दोनों मिठाई की दुकानों पर पुलिस पहरा दे रही है।

रवि शर्मा को सबसे ज्यादा स्कूल के भविष्य की चिन्ता रहती है। "क्या सोचते हैं भाई साहब, प्रिंसिपल मेहरा के रिटायर होने के बाद यह स्कूल चलता रहेगा? मैं तो समझता हूं बड़ी सख्त धांय-धांय होने वाली है यहां। अभी से इतनी सख्त गुटबंदियां हो रही हैं। अगर मनचंदा प्रिंसिपल बन गया, तब तो आधे स्टाफ की खैर नहीं। मगर उसके भी खैरख्वाह कम नहीं हैं। कोशिश यही चल रही है कि मेहरा साहब के रिटायर होने से पहले

ही उसे रिटायर कर दिया जाए। तीन साल की सर्विस बाकी है उसकी, सो तीन साल की तनख्वाह दी जा सकती है उसे।"

ज्योंही बातचीत की स्कैंडल-वैल्यू कम होने लगती है, वे वहां से चलने की बात सोचने लगते हैं। "जाकर कॉफी भिजवाऊं आपके लिए।"

शंकर को 'हां' कहना ही अधिक सुविधाजनक लगता है। क्योंकि मना कर देने से दो मिनट बाद मिसेज़ शर्मा आकर पूछती हैं, "कॉफी नहीं ले रहे हैं ? हमारे हाथ की अच्छी नहीं लगती ?" मिसेज़ शर्मा का अनुरोध उससे टाला नहीं जाता, जिससे बाद में राधा की शिकायत सुननी पड़ती है। रवि शर्मा के सामने भी वह ओछा पड़ता है क्योंकि मिसेज़ शर्मा जाते-जाते कह जाती हैं, 'हमने कहा था इनसे कि आपने ठीक से पूछा ही नहीं होगा। नहीं तो भाई साहब कॉफी के लिए मना कर ही नहीं सकते।" उनकी आंखों की चमक और चेहरे पर की मुसकराहट रवि शर्मा के अलावा खुद उसे भी काफी छोटा कर जाती है।

मिसेज़ शर्मा जब भी वहां से होकर जाती हैं, शंकर को कमरे का खालीपन और भी खाली महसूस होता है। सिगरेट का धुआं, हर कश के साथ एक कुकुरमुत्ता मुंह से बाहर निकलता, खिड़की के चौखट तक जाकर हवा में हवा हो जाता। खिड़की के उस तरफ सिर्फ दीवार—उखड़ी-उखड़ी स्याह पड़ी ईंटें, उनमें चींटियों के सूराख, जोड़ों से झड़ता चूरा-चूरा पलस्तर। ऐश ट्रे में आधी मुट्ठी राख—लथपथ सिगरेट के टुकड़े, मुंह बाए सिगरेट की खाली डब्बी, एक बंद पैकेट। मेज़ के संगमरमर से नीचे को झूलता बिजली का तार—एक औंधी पड़ी किताब, खुला बाल पॉइंट, दो-तीन खुली चिट्ठियां। अकेला अपना-आप—बावजूद मलमल के कुरते के अपने पूरे वज़न का एहसास। हाथ में माचिस—एक तीली का घिसकर जलना और बुझ जाना, फिर दूसरी तीली का जलना और बुझ जाना। पापा का लगातार अपने कमरे में खांसना—आख् हुऊ आख् हुऊ आख् हुऊ हुऊ हुऊ हुऊ…।

मिसेज़ शर्मा कॉफी लेकर आएं, उससे पहले उनका लड़का बिन्नू पापा का संदेश लेकर आ जाता है, "पापा कह रहे हैं उधर आ जाइए। साथ पिएंगे कॉफी।" मिसेज़ शर्मा पीछे से आकर उसकी बात काटती हैं, "कॉफी यहीं आ रही है आपकी। इसके पापा को तो लगता है कि हर एक के पास गप करने की

उतनी ही फ़ुरसत है, जितनी उनके पास ।"

मिसेज़ शर्मा पेस्ट को बहुत देर फेंटकर कॉफी बनाती हैं। "हमारे लिए भी अच्छी कॉफी तभी बनती है जब आपको पीनी होती है," रवि शर्मा का यह मजाक केवल मजाक ही नहीं होता। वे प्याली पर इस तरह हाथ की ओट किए आती हैं, जैसे उसे किसीकी नज़र से बचाकर ला रही हों। राधा घर में जो चीज़ जिस तरह से बनाती है, उससे सवाई मेहनत से न बनाएं, तो उन्हें अपना प्रयत्न सार्थक नहीं लगता। और वे आधी झुकी आंखों से इसकी स्वीकृति भी ले लेती हैं। "ठीक बनी है, भाई साहब ?"

साड़ी से ढके ब्लाउज का उतार-चढ़ाव। सामने के व्यक्ति को अपनी ओर देखने के लिए विवश करती आंखों की चमक। दस साल के विवाहित जीवन के बाद भी चेहरे पर युवा होने का आत्मविश्वास। काफी फासला रखकर खड़ी होने पर भी पूरे व्यक्तित्व से झलकता निकटता का आभास। शंकर को अपने अन्दर कहीं यह कहने की मजबूरी लगती है, "रवि भाई को भी कॉफी दे दी या नहीं आपने ? वे इन्तजार ही तो नहीं कर रहे ?"

मिसेज़ शर्मा मुसकराकर बाहर निकल जाती हैं, "उन्हें भी दे रही हूं जाकर। वैसे उनके लिए तो यह बहाना ही होता है। उन्हें कॉफी पसन्द कहां आती है ?"

और जब बिलकुल कोई नहीं होता, तो शंकर दीवान से उतरकर फर्श पर औंधा लेट रहता है। ठंडी-ठंडी सख्त जमीन। जिस्म को ठंडक की इतनी जरूरत महसूस होती है कि कई बार वह कुरता भी उतार देता है। एक-एक रोयें में ठंडक को भर लेने की कोशिश करता है। इसके लिए बार-बार करवट बदलनी पड़ती है। जो जगह सामान से भरी नजर आती है, वह करवट लेने में रुकावट लगती है। अगर यह सारा सामान जमा न किया होता···।

एक तरफ से पापा के खांसने की आवाज आती है, दूसरी तरफ से पुन्नू के ट्रांज़िस्टर की। अगर खुद बिजनौर जाकर उसने पापा से न कहा होता कि वे उसके पास दिल्ली आ रहें ··अगर चाचा की बात मानकर उसने हामी न भरी होती, कि गुन्नू और पुन्नू उसके पास रह जाएं तो वह उनके लिए नौकरियां ढूंढने की कोशिश करेगा···पहले बड़े भाई नाथ को लेकर ही इतनी परेशानी थी, छोटे भाई मुकुंद की जमानत का सवाल सामने था, फिर और जिम्मे-

दारियों को खुद ही अगर बुलावा न दिया होता···यह सब एक बड़ा क्वार्टर मिलने की झोंक में वह कर गया था, अगर यह नौकरी ही उसने न की होती··· और नौकरी की बात भी शादी के बाद ही उसने सोची थी, अगर राधा की ज़िद मानकर वह शादी के लिए राज़ी न हुआ होता, पाछी का कहा मानकर उसके साथ बाहर चला गया होता···।

खिड़की से दो चिड़िया अन्दर कूद आती हैं। लाल पत्थर की पटियों पर एक-दूसरी का पीछा करती हैं। उसके कंधों के पास आकर चुनौती के स्वर में चहकती हैं, पर फड़फड़ाती हैं और बाहर उड़ जाती हैं। फुर्र एक। फुर्र दो।

वह बेबसी से उठकर बैठ जाता है। मेज से सिगरेट की डब्बी खींचकर सिगरेट सुलगा लेता है। पापा से पीछे के कमरे में टेलीफोन की घंटी बज उठती है। पहली या दूसरी घंटी पर ही गुन्नू की मरियल आवाज़ सुनाई देती है, "गुन्नू राजवंशी।" गुन्नू इतना धीमा कि सुनने वाले को शंकर राजवंशी का भ्रम हो। उसके बाद उसके दो निश्चित वाक्य, "आप कौन बोल रहे हैं? अभी देखकर बताता हूं।"

दालान के उस सिरे से इस सिरे तक गुन्नू की आवाज़ तीन बार सूचना को दोहराती है। 'फोन है। मिसेज़ लल्ला का फोन है। शंकर भाई, आपके लिए मिसेज़ लल्ला का फोन है।"

शंकर हड़बड़ी में कुरता पहनता है। चप्पल में पांव डालते हुए एड़ियां बाहर को फिसल जाती हैं। सिर की एक सीली कुरते की जेब में उलझकर उसे फाड़ने की कोशिश करती है। सामने पड़ने पर गुन्नू फिर एक बार वाक्य पूरा कर देता है, "शंकर भाई, ओह याग से आपके लिए मिसेज़ लल्ला का फोन है। मैंने बताया नहीं, आप घर पर हैं। इतना ही कहा है, देखकर बताता हूं।" और कृतज्ञता चाहती उसकी आधे होंठों की मुस्कराहट देर तक उसके छोटे-छोटे दांतों से चिपकी रहती है।

टेलीफोन वाला कमरा हर माने में बीच का कमरा है। एक [illegible], कई एक मोढ़े और चौकियां, फ्रिज, चारपाइयां और कपड़े टांगने की खूंटियां। बड़ी दीदी और मुन्नी दीदी जब किशनौर से आती हैं, तो उनका डेरा इसी कमरे में जमता है।

बड़ी दीदी से गरमी बरदाश्त नहीं होती। वे आते ही तख्तपोश पर लेट जाती हैं। "हाः ठंडा पानी।" मुन्नी दीदी भी, जिसका स्वभाव हर बात में बड़ी दीदी का अनुकरण करना है, धीरे से कह देती है, "हम भी लेंगे एक गिलास।"

बड़ी दीदी की आंखें कमरे के चारों दरवाज़ों को ताकती घर की एक-एक चीज का जायज़ा लेती हैं। तो मुकुंद वाला कमरा अब बेड-रूम हो गया है? पापा की ड्योढ़ी का दरवाज़ा फट्टी लगाकर बन्द कर दिया है? दालान के दरवाज़े के पास जो बेल थी, वह कटवा दी? ड्राइंग-रूम का रास्ता इधर से खोल दिया? श्शाह की तसवीर सामने की दीवार से हटाकर इस दीवार पर लगा दी? रोम वाली ऐश ट्रे की जगह यह नई ऐश ट्रे आ गई?

बड़ी दीदी को चार महीने पहले और आज के बीच किए गए परिवर्तन पसन्द नहीं आते। फ्रिज इधर क्यों रख दिया? बड़ी चौकी उधर क्यों हटा दी? परदे बदलकर क्यों लगा दिए? "पिछली बार कमरा कितना भरा-भरा लगता था। इस बार तो लग रहा है जैसे···।"

बड़ी दीदी का ध्यान इतनी चीज़ों की तरफ एक साथ जाता है कि मुन्नी दीदी को मन में बहुत हीनता महसूस होती है। वह भी पिछली बार की स्थितियों के साथ इस बार की स्थितियों का मिलान करती अपनी तरफ से कहने की कोई बात ढूंढती है। "टेलीफोन वाली तिपाई भी हमें तो तख्तपोश के पास ही अच्छी लगती थी। उस कोने में पता नहीं कैसी लग रही है।"

बड़ी दीदी हल्की झिड़की के साथ उसे चुप करा देती हैं। "तख्तपोश के पास कहां अच्छी लगती थी? उसके लिए तो मैं ही इनसे कहने वाली थी कि कोने में हटा दो, तो अच्छा है।" मुन्नी दीदी कुछ देर चुप रहकर वहां से उठ जाने का बहाना ढूंढ लेती है। "हम चाय बनाने जा रहे हैं। जिस-जिसको पीनी हो, हमें बता दो।"

बड़ी दीदी उन सब समस्याओं को एक साथ उठा लेती हैं, जिनका निपटारा करने की बात वे बिजनौर से सोचकर चली होती हैं। मुकुंद कितने दिन अपनी ससुराल में रहेगा? शादी से पहले उसके लिए यहां जगह थी, तो अब क्यों नहीं हो सकती? जब एक भाई के पास इतना बड़ा क्वार्टर है, तो दूसरे को अलग से जगह ढूंढकर किराया भरने की क्या जरूरत है? गुन्नू और पुन्नू की

नौकरियों का कुछ हुआ या नहीं ? अगर इतने बड़े शहर में भी उनके लिए कुछ नहीं हो सकता, तो चाचा को साफ क्यों नहीं लिख दिया जाता कि उन्हें वापस बुला लें ! नाथ बिजनौर चिट्ठियां क्यों लिख रहा है कि वापस बम्बई क्या जाना चाहता है ? बारह साल के तजरुबे के बाद भी अगर उसे स्कूल में तीन सौ की ही जगह मिल सकती है, तो उसे बम्बई से उखाड़कर यहां बुलाना ही नहीं चाहिए था।

राधा तख्तपोश से नीचे फर्श पर बैठी चुपचाप उनकी बातें सुनती है। फिर कह देती है, "यह सब तो यही बता सकते हैं, दीदी। इधर आएंगे, तो पूछ लेना।"

बड़ी दीदी भड़क जाती हैं। "पहले तो ऐसा नहीं था यह। अब जाने क्या हो गया है इसे।"

राधा भी तुनक जाती है, "इसका मतलब है कि मैंने इन्हें ऐसा कर दिया है ?"

बड़ी दीदी को अपना पक्ष जितना कमज़ोर लगता है, उतनी ही उनकी आवाज़ ऊंची उठती जाती है; जब और बस नहीं चलता, तो वे यह बात राधा के मुंह पर दे मारती हैं, "जिस घर की हो, उस घर जैसी ही तो बात करोगी। मैंने अच्छा ही किया था जो तुम लोगों के ब्याह में शामिल होने नहीं आई थी।"

राधा तिलमिलाकर वहां से उठ जाती है और अपने को बेड-रूम में बन्द कर लेती है। बेबी चाहे कितना रोती रहे, उसके दूध के लिए भी वह निकलकर रसोईघर में नहीं जाती। तब गुन्नू या पुन्नू में से कोई जाकर बेबी को उठा लाता है। या मिसेज़ शर्मा अपने क्वार्टर से आकर 'राधा कहां है ?' पूछती हुई अन्दर उसके पास चली जाती हैं और वहां से उसके लिए चाय और बेबी के लिए दूध मंगवा भेजती हैं। या फिर मुन्नी दीदी दरवाज़े पर दस्तक देने लगती हैं, "बेबी कब तक भूखी रहेगी, राधा ? पहले ही बीमार रहती है, उसे कुछ हो जाएगा, तो किसके सिर पर बात आएगी ? हमें तू कहे, तो हम रात की गाड़ी से वापस चली जाती हैं।"

बन्द दरवाज़े के उस तरफ से राधा का स्वर सुनाई देने लगता है :

खट खट

खट खट

वड़ी दीदी से गरमी बरदाश्त नहीं होती। वे आते ही तख्तपोश पर लेट जाती हैं। "हा: ठंडा पानी।" मुन्नी दीदी भी, जिसका स्वभाव हर बात में बड़ी दीदी का अनुकरण करना है, धीरे से कह देती है, "हम भी लेंगे एक गिलास।"

वड़ी दीदी की आंखें कमरे के चारों दरवाज़ों को ताकती घर की एक-एक चीज़ का जायज़ा लेती हैं। तो मुकुंद वाला कमरा अब बेड-रूम हो गया है? पापा की ड्योढ़ी का दरवाज़ा फट्टी लगाकर बन्द कर दिया है? दालान के दरवाज़े के पास जो वेल थी, वह कटवा दी? ड्राइंग-रूम का रास्ता इधर से खोल दिया? व्याह की तसवीर सामने की दीवार से हटाकर इस दीवार पर लगा दी? रोम वाली ऐश ट्रे की जगह यह नई ऐश ट्रे आ गई?

वड़ी दीदी को चार महीने पहले और आज के बीच किए गए परिवर्तन पसन्द नहीं आते। फ्रिज इधर क्यों रख दिया? वड़ी चौकी उधर क्यों हटा दी? परदे वदलकर क्यों लगा दिए? "पिछली बार कमरा कितना भरा-भरा लगता था। इस बार तो लग रहा है जैसे···।"

वड़ी दीदी का ध्यान इतनी चीज़ों की तरफ एक साथ जाता है कि मुन्नी दीदी को मन में बहुत हीनता महसूस होती है। वह भी पिछली बार की स्थितियों के साथ इस बार की स्थितियों का मिलान करती अपनी तरफ से कहने की कोई बात ढूंढती है। "टेलीफ़ोन वाली तिपाई भी हमें तो तख्तपोश के पास ही अच्छी लगती थी। उस कोने में पता नही कैसी लग रही है।"

वड़ी दीदी हल्की झिड़की के साथ उसे चुप करा देती हैं। "तख्तपोश के पास कहां अच्छी लगती थी? उसके लिए तो मैं ही इनसे कहने वाली थी कि कोने में हटा दो, तो अच्छा है।" मुन्नी दीदी कुछ देर चुप रहकर वहां से उठ जाने का वहाना ढूंढ लेती है। "हम चाय बनाने जा रहे हैं। जिस-जिसको पीनी हो, हमें बता दो।"

वड़ी दीदी उन सब समस्याओं को एक साथ उठा लेती हैं, जिनका निपटारा करने की बात वे विजनौर से सोचकर चली होती हैं। मुकुंद कितने दिन अपनी ससुराल में रहेगा? शादी से पहले उसके लिए यहां जगह थी, तो अब क्यों नहीं हो सकती? जब एक भाई के पास इतना बड़ा क्वार्टर है, तो दूसरे को अलग से जगह ढूंढकर किराया भरने की क्या जरूरत है? गुन्नू और पुन्नू की

नौकरियों का कुछ हुआ या नहीं ? अगर इतने बड़े शहर में भी उनके लिए कुछ नहीं हो सकता, तो चाचा को साफ क्यों नहीं लिख दिया जाता कि उन्हें वापस बुला लें ! नाथ बिजनौर चिट्ठियां क्यों लिख रहा है कि वापस बम्बई चला जाना चाहता है ? बारह साल के तजरुबे के बाद भी अगर उसे स्कूल में तीन सौ की ही जगह मिल सकती है, तो उसे बम्बई से उखाड़कर यहां बुलाना ही नहीं चाहिए था।

राधा तख्तपोश से नीचे फर्श पर बैठी चुपचाप उनकी बातें सुनती है। फिर कह देती है, "यह सब तो यही बता सकते है, दीदी। इधर आएंगे, तो पूछ लेना।"

बड़ी दीदी भड़क जाती हैं। "पहले तो ऐसा नहीं था यह। अब जाने क्या हो गया है इसे।"

राधा भी तुनुक जाती है, "इसका मतलब है कि मैंने इन्हें ऐसा कर दिया है ?"

बड़ी दीदी को अपना पक्ष जितना कमजोर लगता है,उतनी ही उनकी आवाज ऊंची उठती जाती है; जब और बस नहीं चलता, तो वे यह बात राधा के मुंह पर दे मारती हैं, "जिस घर की हो, उस घर जैसी ही तो बात करोगी। मैंने अच्छा ही किया था जो तुम लोगों के ब्याह मे शामिल होने नहीं आई थी।"

राधा तिलमिलाकर वहां से उठ जाती है और अपने को बेड-रूम में बन्द कर लेती है। बेबी चाहे कितना रोती रहे, उसके दूध के लिए भी वह निकलकर रसोईघर में नहीं जाती। तब गुन्नू या पुन्नू में से कोई जाकर बेबी को उठा लाता है। या मिसेज शर्मा अपने क्वार्टर से आकर 'राधा कहां है ?' पूछती हुई अन्दर उसके पास चली जाती हैं और वहां से उसके लिए चाय और बेबी के लिए दूध मंगवा भेजती हैं। या फिर मुन्नी दीदी दरवाजे पर दस्तक देने लगती है, "बेबी कब तक भूखी रहेगी, राधा ? पहले ही बीमार रहती है, उसे कुछ हो जाएगा, तो किसके सिर पर बात आएगी ? हमें तू कहे, तो हम रात की गाड़ी में वापस चली जाती हैं।"

बन्द दरवाजे के उस तरफ से पापा का राग सुनाई देने लगता है :

बंद दरू

बंद दरू

चंद इक
जो लाला-ओ-गुल में नुमायां हो गईं।
कि खाक में
खाक में
खाक में
क्या सूरतें होंगी कि पिनहा हो गईं।

साथ टेलीफोन की घंटी बज उठती है।

शंकर बड़े-बड़े कदम रखता बीच के कमरे में दाखिल होता है। बिना किसीकी ओर देखे सीधा टेलीफोन के पास चला जाता है। "हलो। हां, मैं हूं। बोल रहा हूं। नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। स्कूल से थका हुआ आया था, आकर ज़रा लेट गया था। सिरदर्द नहीं है, बस ऐसे ही कुछ। तुम कुल्लू से कब लौटीं? हां-हां, आओ जब भी मन हो। सिर्फ रिहर्सल है स्कूल में शाम को, वह मैं कल भी ले सकता हूं। वह यहीं है। चार पांच दिन में आगरा जाएगी बच्ची को लेकर। उसकी मां आएगी लेने। या शायद भाई आए उसका। मैं छोड़ आऊंगा तुम्हें। या हम दोनों छोड़ आएंगे चलकर। ऐसी बात बिलकुल नहीं। डू कम।"

रिसीवर रखने तक राधा बच्ची को बांहों में लिए पास खड़ी नजर आती है। "बाई को तार कर दोगे कि वह आज ही चल दे वहां से? सुबह तक भी पहुंच जाए, तो मैं कल की किसी गाड़ी से चली जाऊंगी उसके साथ।"

शंकर के कंधे झुक जाते हैं और ठोड़ी ऊंची उठ जाती है, "क्या कहा तुमने?"

राधा वाक्यों का क्रम बदलकर बात फिर से दोहरा देती है।

शंकर झटके से खड़ा हो जाता है। "कल क्या, आज ही चली जाओ तुम। मैं राठी नहीं हूं। मेरे यहां यह तमाशा बिलकुल नहीं चल सकता। तुम्हारा भाई भी नहीं हूं कि हर वक्त बीवी का मुंह जोहता रहूंगा। जिसे यहां रहना रास नहीं आता, वह जब चाहे जा सकता है यहां से। मुझे अपनी खातिर किसीके यहां रहने की जरूरत नहीं। जिसे खुद की खातिर रहना हो रहे, न रहना हो चला जाए।"

और उसके भारी कदमों की आवाज दालान पार करके क्वार्टर के बाहर

पहुंच जाती है। घंटे-भर बाद लौटकर आने तक वह एक चक्कर पनवाड़ी की दुकान का लगा लेता है, या राठी और नामदेव में से किसीके यहां दस्तक दे लेता है। राठी के यहां वही बात शुरू हो जाती है, "भाई साहब, इतना पूछिए इससे कि इसका चचेरा भाई मिलने आया था इससे, तो इसने कुंडी अंदर से क्यों बंद कर रखी थी ?" नामदेव के यहां क्वारे दिनों के उत्साह के साथ उसका स्वागत किया जाता है, "अह्‌हा ! हियर कम्ज़ ग्रेट राजवशी !"

शकर के चिल्लाकर निकल जाने के बाद बीच के कमरे का तनाव सहसा कम होने लगता है। बड़ी दीदी कीमे की गोलियां बटती हुई कहती है, "यह नहीं बदला बिलकुल भी। गुस्सा चढ जाता है, तो बिलकुल आगा-पीछा नहीं सूझता इसे।"

मुन्नी दीदी बात जोड़ती है। "हमने सोचा था शादी के बाद गुस्सा कम हो जाएगा। मगर रत्ती-भर भी तो फर्क नही पडा।"

बड़ी दीदी उसे टोक देती है, "काम कितना करना पड़ता है बेचारे को। अकेला इतने आदमियों का पेट भरता है। स्कूल से तो पाच सौ ही मिलते हैं। ऊपर से कहां-कहां की दौड़-धूप करता है, तो कहीं जाकर खर्चा पूरा हो पाता है।"

मुन्नी दीदी की आखो में आसू आ जाते हैं। 'एक ही भाई है जिसके यहां आकर रहने का ठौर-ठिकाना है। इसे कलपते देखकर कितना दुख होता है मेरे मन को।"

बाहर से लौटने पर शकर को बेबी से खेलती मुन्नी दीदी की आवाज़ सुनाई देती है, "छुक्‌ छुक्‌ हा, छुक्‌ छुक्‌ हा छुक्‌ छुक्‌।" साथ में पूरे वाल्यूम पर चलते मुन्ने के ट्रांज़िस्टर की आवाज़।

उड़ती चिड़िया
कि उड़ती चिड़िया पिंजरे में बंद कर ली
बंद कर ली···।

और दहलीज़ लांघने के साथ ही गुन्नू सूचनाएं देने लगता है, "तीन फोन आए थे। राजेश्वरजी का, डाक्टर मुकर्जी का और मिरांडा की किसी लड़की का, जिसने नाम नहीं बतलाया। ड्राइंग-रूम में विश्वेश्वर जी आए बैठे हैं। मैंने कहा भी कि शायद देर से लौटकर आएं, मगर बोले कि कोई बात

नहीं, हम इंतज़ार करके ही जाएंगे···।"

नाथ भाई पूरी दोपहर और आधी शाम ड्राइंग-रूम में अकेले लेटे रहते हैं। कुर्सियां, सोफासेट और दरी—इन पर घूमती हुई उनकी नज़र अपने पर आ पड़ती है। दुबला शरीर। मज़बूत हड्डी। बांहों पर सुनहले रोयें। सबसे पतले और नरम रोयें कुहनियों पर नज़र आते हैं। वे उन्हें सहलाते हैं। फिर दरी के रोयों को सहलाते हैं। ज़िन्दगी में कितना-कुछ मिलना चाहिए था उन्हें जो नहीं मिला। कितना कुछ कर सकते थे वे, जिसका कि मौका ही नहीं आया। आज भी अगर···।

बीच-बीच में वे किचन में जाकर अपने लिए चाय बना लाते हैं। "आदमी जब अपने हाथ से काम कर सकता है, तो किसी दूसरे का मोहताज क्यों हो?" खाने के लिए भी वे किसीको आवाज़ नहीं देते। कोई न कोई अपने-आप उनके पास पहुंचा जाता है। कभी देर हो जाती है तो उनकी त्योरियां गहरी होने लगती हैं। "फालतू आदमी समझते हैं मुझे। जब और सब खा चुकेंगे तो पहुंचा जाएंगे मेरा खाना।" वितृष्णा बहुत बढ़ जाने पर वे कुर्सी के सहारे बैठ जाते हैं। जेब से पानामा की मुचड़ी डब्बी निकालकर सिगरेट सुलगा लेते हैं। "मुंह से मैं कभी नहीं कहूंगा कि मेरा खाना दे जाओ। भले ही दिन-भर भूखा क्यों न रहना पड़े।" बार-बार बाकी सिगरेटों की वे गिनती कर लेते हैं। "दो घंटे में पांच सिगरेट पिए गए। अब अगले दो घंटे में तीन से ज़्यादा नहीं।"

घर के किसी भी आदमी की बातचीत उन्हें बर्दाश्त नहीं होती। "दो तरह के लोग हैं इस घर में। कुछ बेवकूफ। कुछ बदतमीज हैं।" गुन्नू और पुन्नू से तो उनका हां-ना का रिश्ता भी नहीं बनता। "बराबर वाले से तो बात कर भी ले आदमी, बच्चों से क्या बात करे?" जब बीच के कमरे से लड़ाई-झगड़े की आवाज़ें आने लगती हैं, तो अपने को अलग रखने के लिए वे किताब खोल लेते हैं। "जानवर हैं, सब के सब। सिवाय इसके उन्हें कोई काम ही नहीं है।"

स्कूल से होकर क्वार्टर में आने वाले लोग ड्राइंग-रूम के दरवाजे पर ही दस्तक देते हैं। नाथ भाई को मुश्किल से अपना गुस्सा दबाना पड़ता है। "घर है यह? तबेला है! जिसे और कहीं जाने को नहीं होता, यहां चला आता है।" लेकिन आने वाले का सामना वे काफी कोमलता के साथ करते हैं।

में हालात पहले से कुछ बेहतर हो गए होंगे। देखने में तो वे काफी पालिश्ड आदमी लगते हैं, फिर भी···।"

मिसेज़ लल्ला बटुए से सिग्रेट निकालकर नाथ भाई की तरफ देखती हैं। नाथ भाई झट-से उन्हें अपनी उदारता का विश्वास दिला देते हैं, "शौक से पीजिए। मेरे सामने तो आपको बिलकुल ही संकोच नहीं करना चाहिए। बंबई में जिस हलके में मेरा उठना-बैठना है, उसमें पचास फीसदी औरतें स्मोक करती हैं। मुझे तो बल्कि इसी वजह से चिढ़ है दिल्ली से कि यहां के लोग बहुत ही दकियानूसी ख्यालात के हैं।"

बातचीत थोड़ा आगे बढ़ती है, फिर रुक जाती है। शंकर की आंखें मिसेज लल्ला के चेहरे को भांपती हैं, उनकी सांसों का अर्थ ढूंढती हैं, सिगरेट दबाए उनके होंठों के भाव को पढ़ती हैं। फिर वह सामने की दीवार के पुरानेपन को देखता है, खिड़की में लगे परदे की छोटी लंबाई को, शेल्फ पर रखे टाइम-पीस के जंग-खाए कांच को और मुह में आई बात को रोककर कुर्सी पर थोड़ा फैल जाता है। "हूं।"

मिसेज़ लल्ला विषय बदलकर अपने काम-काज की बातों पर आ जाती हैं। "इधर काफी बिज़ी रहना पड़ता है मुझे। नया सैलून खोला है, अभी काम ज़्यादा आना शुरू नहीं हुआ, इसलिए काफी दौड़-धूप करनी पड़ती है। पब्लि-सिटी, एकाउंट्स सब काम खुद देखने पड़ते है। इसलिए इतनी फुरसत ही नहीं मिल पाती कि···।"

नाथ भाई सैलून के बारे में एक-एक बात पूछते हैं। इतने विस्तार से कि जैसे वैसा ही एक सैलून वे खुद भी खोलने वाले हों। "काम काफी अच्छा है यह," वे ईर्ष्या के साथ कहते है, "सिर्फ इन्वेस्टमेंट की बात है।"

मिसेज़ लल्ला अपनी मुसकराहट को रोकने के लिए होंठ सिकोड़ लेती हैं। शंकर को किसी भी स्थिति में बैठना असुविधाजनक लगता है। वह कुर्सी को थोड़ा आगे सरका लेता है। "अभी रुकोगी दो-एक दिन दिल्ली मे या···?"

"नही, कल चली जाऊंगी। पहले ही काम में पन्द्रह दिन का गैप पड़ गया है। इस वक्त निकलकर आने का कोई मौका ही नहीं था। लेकिन वहां रहकर दिमाग इस तरह ठस्स हो रहा था कि सोचा बिलकुल ही ब्रेकडाउन न कर जाऊं, इसलिए···।"

नाथ भाई अपने सुझाव सामने रखते हैं। "बहुत छोटे-छोटे उपायों से आदमी नर्वस ब्रेकडाउन से अपने को बचा सकता है। जैसे···।"

मिसेज लल्ला राधा के बारे में पूछती हैं, "बिटिया किसपर है? उस पर या तुमपर?"

शंकर चाय के लिए कहने के बहाने उठ जाता है, "राधा को भी बता दूं कि तुम आई हो। उसे पता नहीं चला होगा, नहीं तो अब तक खुद ही इधर आ जाती।"

नाथ भाई मिसेज लल्ला से उनका बंबई का पता पूछते हैं। "इस बार वहां पर जरूर मिलूंगा आपसे। अब तक तो जान-पहचान नहीं थी। अब जान-पहचान है, तो···।"

मिसेज लल्ला अपनी घड़ी देखती हैं, "जाने से पहले मुझे अभी शापिंग भी करनी है।"

नाथ भाई जानने की कोशिश करते हैं कि क्या शापिंग करनी है, कहां करनी है। "जो चीज कनाट प्लेस में दस रुपये में मिलती है, वही सदर बाजार में पांच रुपये में मिल जाती है। मैं तो इन लोगों से भी कहता रहता हूं कि···।"

मिसेज लल्ला फिर घड़ी देख लेती हैं। "शापिंग के बाद एक जगह खाना खाने भी जाना है।"

शंकर हड़बड़ी के साथ दाखिल होता है। "बस चाय आ रही है। राधा भी आ रही है अभी। बच्ची को फीड दे रही है, इसलिए···।"

चाय की ट्रे मिसेज शर्मा लेकर आती हैं। शंकर अटपटे ढंग से परिचय कराता है, 'ये हमारी भाभी हैं। मिसेज शर्मा। मिस्टर शर्मा मेरे कोलीग हैं। बिलकुल साथ का क्वार्टर इनका है। वैसे हम लोग एक ही घर की तरह रहते हैं। राधा को तो आजकल ये कोई काम करने ही नहीं देतीं···।"

मिसेज शर्मा मुसकराकर ट्रे रख देती हैं और चाय बनाने लगती हैं। शंकर बात करता जाता है, "ये मिसेज लल्ला हैं। मेरे साथ पढ़ती थीं। इसलिए मैं आज भी पुराने नाम से ही बुलाता हूं। सरोज। बहुत दिन विदेश में रहीं हैं। हस्बैंड डिप्लोमेटिक सर्विस में थे। आजकल बंबई में···।"

मिसेज शर्मा फिर मुसकरा देती हैं। मिसेज लल्ला उदासीन बनी रहती हैं। चाय की प्यालियां देकर मिसेज शर्मा चल देती हैं, "हम पकौड़ी निकालकर

भेज रहे हैं उधर से।"

मिसेज़ लल्ला तकल्लुफ के साथ घूंट भरती हैं। नाथ भाई के साथ शंकर के चेहरे का मिलान करके देखती हैं कि दोनों मे कहां और कितनी समानता है। शंकर के दस साल पहले के चेहरे के साथ भी उसके आज के चेहरे का मिलान करती हैं। उनकी आंखों में दूरी बढ़ने लगती है। चाय और सिगरेट दोनों चुप रहने में सहायता करते हैं।

शंकर हर दूसरे क्षण दरवाजे की तरफ देख लेता है। राधा को अब तक आना ही चाहिए था। कहीं फिर से ऐसा तो नहीं होगा कि···?

अन्तराल नाथ भाई की बातों से भरता है। "मैं इन्हें बता रहा था कि अगर कनाट प्लेस की जगह सदर बाज़ार जाया जाए, तो···।"

दरवाज़े पर राधा के दिखाई दे जाने से शंकर के अंदर का कसाव ढीला पड़ जाता है। "कहा था, बच्ची को लेकर आना।"

"वह सो गई है।" राधा मिसेज़ लल्ला की तरफ मुसकराती है और अतिरिक्त शिष्टता के साथ उनके साथ की कुर्सी पर बैठ जाती है। उन दोनों में बातचीत शुरू हो जाने से थोड़ी देर के लिए शंकर परिस्थिति से बाहर हो जाता है। "मुझे इन्होंने बताया ही नहीं कि टेलीफोन आया था आपका और कि आप आज ही मिलने आने वाली हैं। मैंने बल्कि शिकायत की थी इनसे कि कुल्लू जाते हुए मिलकर क्यों नहीं गईं। खत भी आपका बहुत दिनों में आया था इनके पास। मैं कहती रही इनसे कि जवाब लिख दो, लेकिन स्वभाव इनका तो जानती ही हैं आप। तीन-तीन महीने चिट्ठियां पड़ी रहती हैं और ये एक लफ्ज़ भी नहीं लिख पाते किसीको। कई बार तो इतनी-इतनी ज़रूरी चिट्ठियां लिखने से रह जाती हैं···।"

मिसेज़ लल्ला हैंड-बैग से चांदी का झुनझुना निकालती हैं, "और कोई चीज़ मुझे मिली ही नहीं जल्दी में। अगली बार आऊंगी, तो···।"

मिसेज़ शर्मा पकौड़ी की तश्तरी ले आती हैं, "ठीक से निकी ही नहीं जल्दी में!" वे मिसेज़ लल्ला के अतिरिक्त राधा को भी अनुरोध से खिलाती हैं। "अच्छी नहीं हैं, फिर भी दो-एक तो ले ही लो। गुन्नू से पान लाने के लिए कह दिया है मैंने।"

मिसेज़ लल्ला के सहसा चलने के लिए तैयार हो जाने पर शंकर उनसे

पहले कमरे से बाहर निकल आता है। "अंदर तो इतना घुटा-घुटा लगता है मुझे कि···" मिसेज़ लल्ला और राधा साथ-साथ अहाते की तरफ मुड़कर अपनी-अपनी दिशा में चली जाती हैं। नाथ भाई दहलीज तक आकर वहीं रुके रहते हैं। "आपका पता नोट कर लिया है मैंने। हफ्ता-दस दिन में अब मैं भी बस चलने ही वाला हूं यहां से।"

शंकर जानते हुए भी कि मिसेज़ लल्ला गाडी में आई होंगी और गाडी स्कूल के गेट के पास खडी होगी, एक बार पूछ लेता है, "गाडी में आई हो, या···?"

मिसेज़ लल्ला जानते हुए भी कि वह गेट तक साथ चलेगा, कह देती हैं, तुम बैठो अगर···।"

शंकर नाथ भाई को, और उनके माध्यम से जैसे घर के सभी कमरों को, सूचना देकर मिसेज़ लल्ला के साथ चल देता है, "मैं अभी आ रहा हूं इसे गेट तक पहुंचाकर।"

स्कूल के अन्दर की सड़क पर चलते हुए वह मिसेज़ लल्ला के और अपने कंधे के फर्क को देखता है। राधा के और उसके कद में कितना ज्यादा फर्क है। अगर राधा कुछ और ऊंची होती और दोनों में लगभग इतना ही फर्क होता···। अगर राधा भी इसी तरह तनकर मेडमफार्म के उभार के साथ चल सकती···।

मिसेज़ लल्ला उसके देखने को महसूस करती कहती हैं, "घर अच्छा है तुम्हारा।"

शंकर को बात ताने की तरह लगती है। दस साल पहले की बात याद आती है, जब बिजनौर में उसने कहा था, "मैं अपने लिए इस तरह का घर चाहती हूं जिसमें···।"

मिसेज़ लल्ला उसकी आंखों के अर्थ को भांपती कहती हैं, "सचमुच अच्छा है।"

शंकर उखडे-उखडे वाक्यों में बात करने लगता है। "मैंने तुम्हें जान-बूझकर नहीं रोका। ऐसे ही कुछ हो जाता है किसी-किसी दिन। सोचा था आओगी, तो खाना खाकर ही जाओगी। मैं समझ गया था तुम्हें क्यों उठने की जल्दी हो रही है। कुछ बातें होती हैं जो आदमी कोशिश करके भी नहीं समझ पाता

किसीको। पहले सोचा था तुमसे बाहर मिलने का ही तय करूं, जिससे···।

मिसेज़ लल्ला पूछ लेती हैं, "राधा के डिलीवरी नार्मल हुई है ? मुझे तो काफी अनेमिक दिख रही थी वह।"

स्कूल के कुछ लड़के पास आकर पूछ लेते हैं, "सर, कल तो आप रिहर्सल लेंगे न ?"

लड़कों के पास से आगे निकलते ही विश्वेश्वर जी दिख जाते हैं। "राठी के यहां चलोगे एक मिनट ? हम तुम्हारे यहां से उठकर उसके यहां गए, तो देखा कि वहां···।" और वहां से गेट तक विश्वेश्वर जी का साथ बना रहता है। 'तुम विदा कर लो इन्हें। बस लौटते हुए एक मिनट ज़रा···।"

राठी के यहां से लौटने में वह जान-बूझकर रात कर देता है। लौटकर दबे पैरों अपने कमरे की तरफ जाने लगता है, तो गुन्नू रास्ते में मिल जाता है। "भाभी को उलटियां हो रही हैं, मगर कह रही हैं, डाक्टर को नहीं बुलाना है। बड़ी दीदी कल सुबह की बस से जाना चाहती हैं, पूछ रही हैं कि सीटों का पता अड्डे पर जाकर करें या किसीको भेजकर पहले पुछवाया जा सकता है ?"

बेड-रूम का दरवाज़ा बंद कर लेने से बाहर की आवाज़ें रुक जाती हैं। उस दरवाज़े के सिवा कमरे में हवा या रोशनी के आने का कोई रास्ता नहीं है।

साथ-साथ लगे दो बिस्तर और एक बेबी-काट। इनके बाद मुश्किल से एकाध स्टूल के लिए ही जगह बचती है। अगर कभी कोई कुर्सी अन्दर ले आई जाए, तो उससे चलने-फिरने का रास्ता रुक जाता है।

उस कमरे में होने का मतलब होता है बिस्तर पर लेटे रहना। इसके अलावा वहां शरीर की कोई व्यवस्था बनती ही नहीं, जब तक कि चाय-आय के लिए उठकर बैठने का बहाना न हो।

राधा ज़्यादातर दरवाज़े की तरफ पीठ करके लेटती है। जिससे अचानक दरवाज़ा खुलने पर वह उस तरफ देखती न पाई जाए। बेबी-काट भी इसीलिए उसने उस तरफ रख रखी है। बेबी कुनमुनाने लगती है, तो वह लेटे-लेटे हाथ बढ़ाकर काट को हिला देती है।

बाहर से पैरों की आहट का पता नहीं चलता, फिर भी दरवाज़ा खुलने

के खटके से ही उसे अंदाजा हो जाता है कि आनेवाला कौन हो सकता है। मिसेज शर्मा आती है, तो दरवाजा आहिस्ता से बहुत हल्की महीन आवाज के साथ खुलता है। बात शुरू करने से पहले मिसेज शर्मा को थोड़ी देर रुकना पड़ता है। "मैं कहने आई थी कि थोड़ी-सी खिचड़ी तो खा लेती।"

राधा करवट बदलकर उधर देखती है। "अन्दर टिकेगी नहीं, क्या फायदा?"

"भूख से कमजोरी और बढ़ जाएगी।"

"क्या किया जा सकता है?"

"अगर डाक्टर को नहीं बुलाना है, तो कम-से-कम पिछली बार वाली दवाई ही...।"

बड़ी दीदी आती हैं, तो दरवाजा बड़े नाटकीय ढंग से सपाट खुल जाता है। "हम लोग जा रही हैं कल सुबह यहां से। मैंने सोचा, तुम्हें बता तो दूं ही।"

राधा फिर करवट बदल लेती है। "मैं भी चली जाऊंगी, कल या परसों। बल्कि कल ही किसी वक्त।"

"तुम्हारा जाना तुम पर है। बिजनौर में कुछ कहलवाना हो किसीसे, तो बता देना।"

"नहीं, कहलवाना कुछ नहीं है किसीसे।"

दरवाजा जिस तरह खुलता है, उसी तरह बंद हो जाता है।

शंकर के अंदर आने पर दरवाज़े से ज़्यादा दरवाज़े की कुंडी आवाज़ करती है और सिर्फ एक ही किवाड़ खुलता है। खुलने के साथ ही वह बंद भी हो जाता है और आगे पर्दा खींच दिया जाता है।

राधा करवट नहीं बदलती। बेबी को ताकती चुपचाप पड़ी रहती है।

शंकर पंखा तेज़ करता है। "इतनी गरमी में भी पता नहीं कैसे अन्दर पड़ी रहती हो तुम। हवा से भी कुछ नाराज़गी है क्या?"

"बेबी ठंड खा जाएगी," राधा एकदम से शुरू करती है। "पहले ही दिन-भर खांसती रही है।"

शंकर पंखे की स्पीड एक नम्बर कम कर देता है। "दिन-भर बंद कमरे में रहेगी, तो बीमार पड़ेगी ही। कितने दिनों से तुमसे कह रहा हूं कि अब चारपाइयां बाहर निकलवाकर सोना शुरू कर।"

राधा का सिर आहिस्ता से घूमता है। "मैंने कभी तुम्हें मना नहीं किया। तुम्हारे लिए एक चारपाई कब से निकलवा रखी है।"

"तो तुम्हारा ख्याल है मैं अकेला सोऊंगा बाहर?"

"क्यों, अकेले सोने में क्या है? मैं कल चली जाऊंगी, तब भी क्या अंदर सोते रहोगे?"

शंकर देर तक उसे एकटक देखता है। वह उससे आंख नहीं मिलाती। "तो तुम्हारा जाना बिलकुल तय समझूं न मैं?"

"तय अब नये सिरे से होना है क्या?"

शंकर की आधी सांस मुंह से आने लगती है। "ठीक है। लेकिन तुम्हारे वहां से लौटकर आने का कोई दिन तय नहीं है। यहां से तुम अपनी मर्जी से

आ सकती हो, वहां से अपनी मर्जी से नहीं आ सकती। यह कोई मुसाफिरखाना नहीं है कि जब चाहा सामान ले गए, जब चाहा ले आए।"

राधा उठकर बैठ जाती है। "जितने-जितने लोग आकर पड़े रहते हैं, उससे मुसाफिरखाने से कुछ कम भी नहीं लगता मुझे।"

शंकर का मन होता है कि एकदम चिल्लाकर कुछ कहे। लेकिन पीछे दर-वाजे की तरफ देखकर उसका स्वर उलटे काफी धीमा हो जाता है। "सब लोग जा रहे हैं कल यहां से। तुम्हारी इन्हीं बातों के मारे।"

"सब लोग यानी ?"

"सब लोग यानी सब लोग। बड़ी दीदी और मुन्नी दीदी तो जा ही रही हैं, मैं, गुन्नू और पुन्नू से भी कह दूंगा कि अपने बिस्तर बांध लें। नाथ को भी जाना ही है। दो दिन बाद सही, दो दिन पहले सही। बाकी रह गए पापा···।"

"इतना सब किसकी खातिर कर रहे हो तुम ?"

शंकर का स्वर थोड़ा हकला जाता है। "मतलब ?"

"मैं खुद जा रही हूं, तो मेरी खातिर तो भेज नहीं रहे हो। अगर मेरे पीछे से तुम्हें खाली घर चाहिए, तो अपने ही किसी मतलब से चाहिए होगा।"

शंकर बढ़कर उसे कंधे से पकड़ लेता है। "यहां मुझे किसी के साथ वह सब करना है न ?"

राधा झटके से कंधा छुड़ा लेती है। "हाथ परे रखना। यह सब अब मुझसे बरदाश्त नहीं होगा।"

"तुम नाम लो उसका, जिसकी खातिर मैं घर खाली करवा रहा हूं।"

"नाम लेने की भी जरूरत है क्या ? मेरे सामने बैठे हुए तुम्हारी आंखें ब्लाउज के अंदर घुसी रहती हैं।"

"तुम्हें बिल्कुल शर्म-हया नहीं है ?"

"मुझे नहीं है या उन्हें नहीं है? मरदों के बीच बैठने का यह तरीका है उनका कि जांघें आधी कुरसी से बाहर निकालकर हौले-हौले हिलाती रहें, किसी-की नजर अपनी नाभि पर पड़ती देखें, तो मुसकरा दें, पिछवाड़े के पास हर वक्त साड़ी के बल ठीक करती रहें और पसीना पोंछने के बहाने बार-बार छातियों के बीच उंगली से···।"

शंकर आंखें मूंदकर स्टूल पर बैठ जाता है। "तुम्हारा यहां से चली जाना

ही बेहतर है। हो सकता है कुछ दिन यहां से दूर रहने से···।"

"ठीक हो जाऊंगी या जो भी हो जाऊंगी, पर यहां पर तो आराम हो ही जाएगा सब लोगों को।"

शंकर की आंखें आहिस्ता से खुलती हैं। "देखो राधा···।"

राधा तकिये पर सिर गिरा लेती है। "धीमे बोलो, बच्ची उठ जाएगी। राधा ने बहुत कुछ देख लिया है पहले ही। और क्या देखना बाकी रहा है अब?"

बेड-लैम्प की सिमटी हुई रोशनी में बिना पढ़े किताब के दो-एक पन्ने पलट लेने के बाद शंकर उकताकर किताब को स्टूल पर रख देता है। अलमारी में भरी हुई कितनी ही किताबें थीं जो जब-तब उत्साह के साथ खरीदी थीं, मगर जिन्हें पढ़ पाने की नौबत ही नहीं आती थी कभी। इसी तरह कभी एक या दूसरी किताब को निकालना, पन्ने पलटना और रख देना।

अलमारी के सामने खड़े होकर उनके शीर्षकों को पढ़ना, बाहर निकालकर उनकी धूल झाड़ना और कल से पढ़ने का निश्चय करके आज के लिए खाली हो रहना···।

राधा की सांस से लगता है कि वह सो गई है। पंखा एक छोटे-से घेरे में जैसे सिर्फ अपने लिए ही हवा बिखेरता है। बेबी गरमी से बौखलाकर जाग जाती है, रोती है, हाथ-पैर पटकती है और फिर सो जाती है। शंकर लैम्प बुझाकर सोने की कोशिश करता है। बिलकुल अंधेरा हो जाने पर भी उसकी आंखें कमरे में सब कुछ देखती हैं। दोनों बिस्तरों की मुचड़ी चादरें, दरवाजे की बंद कुंडी, कोने की तिपाई पर दवाइयां और टाइमपीस। तकिया गरम लगता है, तो वह उसे उलटा लेता है। लेकिन चादर, पलंग और अपना-आप··?

वह लैम्प फिर जला लेता है। टाइमपीस में वक्त देखता है। कमरे की दीवारें उसे बहुत पास-पास लगती हैं। आहिस्ता से दरवाजे की कुंडी खोलकर वह बाहर निकल आता है।

तीन तरह के खर्राटे एक-साथ सुनाई देते हैं। बड़ी दीदी जैसे एक-एक सांस में हवा का एक-एक घूंट भरती हैं। पापा के गले में कोई लकड़ी अटक गई लगती है। नाथ भाई सबसे ऊंची और निश्चिन्त आवाज़ में अपनी धौंकनी चलाए जाते हैं।

फ्रिज से पानी की बोतल निकालकर वह एक ही बार में तीन-चौथाई खाली कर देता है। वही दीदी जाग जाती है। "कौन है ?"

"कोई नहीं है।" वह फ्रिज बंद करके ड्राइंग-रूम की तरफ बढ़ जाता है। पर वहां नाथ भाई सोफे और कुरसियों के बीच इस तरह लेटे नजर आते हैं कि बिना उनमें टकराए पास से निकलना असंभव लगता है। उधर से हटकर वह कुछ देर बीच के कमरे में रुका रहता है, इधर-उधर नजर दौड़ाता है और निकलकर बाहर अहाते में आ जाता है। वहां भी सामने बिछी चारपाई रास्ता रोकती है। एक त्रिभुज में टांगें फैलाए पुन्नू नींद में मुसकराता-सा लगता है। उसके पास से गुजरने तक एक छाया स्टडी से बाहर निकल आती है। गुन्नू। "शंकर भाई, आप अगर इधर सोएंगे, तो मैं आज शर्मा जी के यहां···।"

"क्यों, तूने अपनी चारपाई पापा के कमरे में नहीं बिछाई ?"

"मेरी चारपाई वहीं है, लेकिन मुकुंद भाई आ गए थे थोड़ी देर पहले। आप को पता न चले, इसलिए पीछे की तरफ से आए थे चुपचाप। मेरी चारपाई उन्होंने ले ली है। बोले सुबह तक बताना नहीं। कल शायद भाभी को भी ले आएंगे। ससुराल वालों से लड़ाई हो गई है उनकी।"

शंकर कुछ देर खामोश खड़ा रहता है। गुन्नू आंखें झपकता उसके उत्तर की प्रतीक्षा करता है। "तो मैं अपना तकिया लेकर···?"

"तू सोया रह जहां सोया है।" झिड़कने की तरह कहकर शंकर झटके-से दरवाजे की कुंडी खोलता है और क्वार्टर के बाहर पहुंच जाता है। पुन्नू की तरह टांगें फैलाकर सोई सड़क। हाई वॉल्टेज और लो वॉल्टेज के बीच लड़खड़ाती खंभों की रोशनी। मार्केट की सड़क पर मरियल चाल से चलता एक आदमी। सामने की तरफ एक नई खड़ी होती इमारत के गीखचे। ढेरों ईंटें, गारा और सीमेंट। वह दरवाजे से थोड़ा हटकर क्वार्टर की तरफ मुंह करके खड़ा हो जाता है और पाजामे का नाड़ा खोल लेता है।

मुद्रक : शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस, नवीन शाहदरा, दिल्ली
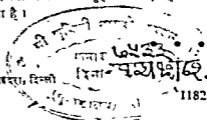
परिशिष्ट

प्रथम प्रकाशित संग्रह

इंसान के खंडहर [१९५०]

इंसान के खंडहर [खंडहर]
धुंधला दीप
मरुस्थल
उर्मिल जीवन
एक आलोचना
लक्ष्यहीन
सीमाएं
कंवल
दोराहा
वासना की छाया में
मिट्टी के रंग

नये बादल [१९५७]

नये बादल
मलबे का मालिक
अपरिचित
शिकार
एक पंख-युक्त ट्रेजेडी
उसकी रोटी
मंदी
हवा-मुर्ग
उलझते धागे
सौदा
फटा हुआ जूता
भूखे
छोटी-सी चीज़

जानवर और जानवर [१९५-]

काला रोजगार [रोजगार]
परमात्मा का कुत्ता
ग्वाली
आर्द्रा
आखिरी सामान
जानवर और जानवर
मिस्टर भाटिया
क्लेम

एक और ज़िंदगी [१९६१]

सुहागिनें
आदमी और दीवार
एक हलाल
गुनाह बेलज्ज़त
जीनियस
बस-स्टैंड की एक रात
मिस पाल
वारिस
एक और ज़िंदगी

फौलाद का आकाश [१९६६]

ग्लास टैंक
पांचवें माले का फ्लैट
सेफ्टी पिन
सोया हुआ शहर
फौलाद का आकाश
जख्म
जंगला
चौगान
एक ठहरा हुआ चाकू

• • •